पाठ २—आदर्श विद्यार्थी ।

एक भारतवासी सज्जन एक दिन अमेरिका के एक शहर में घूम रहे थे । उन्हें समाचार पत्र बेचने वाला एक छः वर्ष का बालक मिला । बालक बोला,—"आप समाचार पत्र खरीदेंगे ?" उन्होंने इन्कार कर दिया । बालक ने फिर आग्रह करके कहा, "महाशय, यह तो एक पैसे ही का है । इसमें अच्छी २ बातें हैं" । उसने प्रसन्न हो पत्र खरीद लिया और बालक से पूछा, "भाई, क्या तुम किसी ग़रीब पिता के पुत्र हो ?"

बालक—यह आप कैसे कहते हैं ?

सज्जन—तुम समाचार पत्र बेचते हो इससे ऐसा ख़याल हुआ ।

बालक—क्या समाचार पत्र बेचने वाले ग़रीब पिता के पुत्र होते हैं ?

सज्जन—भाई ! तुम्हारी आयु बहुत छोटी है कि इस समय भी तुमको यह काम क्यों करना पड़ता है ?

बालक गंभीरता से बोला, 'क्या आप यह चाहते हैं कि मैं अपने ख़र्चे के लिए दूसरों का मुँह ताकूँ । मैं किसी

ग़रीब पिता का पुत्र नहीं। फिर भी अपनी शिक्षा का सारा ख़र्चा अपने परिश्रम से चलाता हूँ। देखो, यह कोट भी मेरी ही कमाई का है। बैंक में भी मेरे डेढ सौ रुपये जमा हैं।' मैं अपने मा बाप पर भार होकर रहना नहीं चाहता।

उन्हें उस बालक के विचार जान कर बड़ा अचरज हुआ। वे मन में कहने लगे—'इस देश के छोटे २ बच्चे भी जब अपने पाँवों पर खड़े रहना चाहते हैं तो यहां उन्नति क्यों न हो? एक तो अमेरिका का यह छोटा बालक है और दूसरे हैं हमारे भारत के सयाने युवक जो मा बापों पर भार होकर रहते ही नहीं बल्कि वैसे रहने को आनन्द मानते हैं।'

प्यारे विद्यार्थियो! आप अपने पिता के धन को परमार्थ में लगाकर हुनर व पुरुषार्थ से अपना गुज़ारा करें। पशु पक्षी भी अपने अङ्ग की मेहनत से पेट भरते हैं। जो मनुष्य खुद मेहनत नहीं करता और दूसरों की कमाई से जीवन बिताता है, वह मनुष्य पशु पक्षी से भी खराब है। किसी प्रकार आलसी नहीं रहना चाहिये।

पाठ ३—आदर्श बन्धु ।

जिस समय महारानी केकयी अपनी इच्छा पूर्ण करने के लिए महाराजा दशरथ से यह कह रही थी कि 'राम को वनवास और भरत को राज्य देने से ही आप प्रतिज्ञा पालक कहे जायेंगे' । उन शब्दों को सुनकर राजा दशरथ मूर्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं । इतने में राम वहां आते हैं । पिता श्री को मूर्छित अवस्था में देखकर माता से पूछते हैं" हे माताजी ! क्यों आप भी उदास हैं और पिता जी भूमि पर अचेत पड़े हुए हैं ?

केकयी सिंहनी का रूप धारण किये हुए थी । लाल आँखें कर के बोली—क्या बात है ? बात क्या हो ? यही है कि तुम जैसे महाराज के पुत्र हो क्या वैसे ही भरत नहीं हैं ? जननी अलग २ है तो क्या ? पिता तो एक ही है ।

राम—हां, माताजी, आप सच कहती हैं ।

केकयी—तब तुम्हें राज्य मिले और मेरे पुत्र भरत नहीं !

राम—क्यों नहीं माताजी, अवश्य मिलना चाहिये ।

कैकयी—राम तुम मीठे बहुत बोलते हो पर अब मैं तुम्हारे फंदे में नहीं आने की।

राम—फंदे में नहीं आना चाहिए माताजी, आपका फरमाना ठीक है।

पिता श्री की तरफ़ घूमकर राम बोले—पिताजी! पिताजी!! आप वीर क्षत्रिय हैं, आपको माताजी के वचन सुनकर घबराना नहीं चाहिये। आप आनन्द से माता का वचन पूरा कीजिये, मुझे वन में कुछ भी दुःख नहीं उल्टा एकान्त में आनन्द मिलेगा।

कैकयी—राम! यदि मैं कुछ अन्याय से कहती होऊँ तो तुम ही बोलो।

राम—नहीं माताजी! आप महारानी! अन्याय से कैसे बोल सकती हैं? आप तो यह राज्य मेरे प्रिय भाई भरत के लिए मांगरही हैं न। न्याय के अनुसार किसी रास्ते चलने वाले के लिये मांगती तो भी अनुचित नहीं था; तो यह तो मेरे भाई के लिये भला कैसे अयोग्य हो सकता है?

राम वनवास को चले गये, क्या बुरा किया? संसार के लिए आदर्श खड़े हुए और लौटते समय लंका का राज्य अपने साथ लेते आये। इतने समय तक भरत ने

भी राम की पादुका को मुख्य रख गौणरूप से सप्रेम अपने भाई की सेवा समझ कर राज्य किया।

प्यारे बालको! आप भी राम के समान इस संसार में होना चाहते हो तो मनुष्य जाति में उत्पन्न हुए सब भाइयों से प्रेम करना सीखो।

पाठ ४—आज के बन्धु।

इस समय भ्रातृ-प्रेम कैसा है? आज भाई २ छोटी २ वस्तुओं और बातों के लिए सिर फोड़ते हैं, कचहरियों में मुकद्दमाबाजी होती है; गालियों में अपने जन्मदाता माता पिता को भी नहीं छोड़ते हैं। बम्बई शहर में दो भाईयों ने अपनी जायदाद के बराबर दो भाग कर लिए। परन्तु बड़े भाई का बोया हुआ एक सुपारी का वृक्ष छोटे भाई की जमीन के हिस्से में चला गया। बड़े भाई ने कहा— मैंने इस पेड़ को बोया है इसलिये इस पर मेरा अधिकार है। छोटे ने कहा, तुमने बोया तो क्या हुआ? मेरे भाग में है इसलिये एक वर्ष सुपारियें तुम लो और एक वर्ष हम लें। बड़े भाई ने यह बात नहीं मानी। अन्त में

कोर्ट में मुकद्दमा गया और लाखों रुपये बरबाद हुए। एक दिन जज साहब पूछताछ करने के लिए उस वृक्ष को देखने आये। वहां आकर कहा कि 'काट दो इस नाशकारी वृक्ष को जिसके कारण इतना कष्ट इन दोनों भाइयों को और मुझे उठाना पड़ा। आखिरकार वह पेड़ कटवाया तब शांति हुई।

विचारिये बालको! कितनी मूर्खता उन्होंने की, आधा आधा लेकर राजी नहीं हुए। अन्त में क्या हाथ आया? कुछ भी नहीं। प्यारे बन्धुओ! अपने सिर पर लगने वाले इस कलंक को हटाओ और आदर्श बन्धु बनो।

पाठ ५—निर्दयता का फल

विलायत में एक स्त्री थी। उसके रहने के लिए न मकान था, न खाने के लिए अन्न। धनवानों से उसने बहुत विनती की परन्तु किसी ने ध्यान नहीं दिया। भूख और प्यास से वह बेचारी बहुत दुखी हो गई। थोड़े दिनों में वह बीमार हो गई परन्तु किसी ने भी उसकी दवा न की। अन्त में वह मरगई और बहुत दिनों तक घर में

पड़ी रहने के कारण उसकी लाश में ज़हरीले कीड़े पड़गए जिससे गांव भर में रोग फैल गया और राजा प्रजा सभी बीमार हो गए तथा हज़ारों मनुष्य मौत के शिकार हो गए।

डाक्टरों ने इसका कारण ढूँढा तो मालूम हुआ कि गाँव में एक जगह एक निराधार स्त्री की लाश में ज़हरीले जन्तु पड़ गए हैं और उनके हवा में मिलने से वह जहरीली हो गई और गाँव वालों को इतना नुकसान उठाना पड़ा। उन्होंने गाँव वालों से कहा, तुम्हारे एक अनाथ अबला की रक्षा न करने का यह परिणाम है। अगर तुम लोग उस गरीब स्त्री को अपनी बहन समझते और उसकी रक्षा करते तो इतना कष्ट नहीं उठाना पड़ता।

प्यारे बालको! विश्व के सभी जीवों को अपना मित्र समझ कर उनकी सेवा करनी चाहिये। वैसा न करने से निर्दयता का बदला अवश्य भुगतना पड़ता है।

पाठ ९—आदर्श सेनापति।

सर फिलिप एक लड़ाई में घायल हो गये। उनके शरीर से लोहू की धारा बहने लगी। उस समय उन्हें

कड़ी प्यास लगी। सेना के पास पानी की एक बूंद भी नहीं बची थी, फिर भी सेनापति को प्यास से तड़फड़ाते और पानी मांगते हुए देखकर अनेक सैनिक इधर उधर भागे। बड़ी कठिनाई से उनके लिए पानी का एक प्याला मिल सका।

ज्योंही सर फिलिप ने प्याला मुँह से लगाया त्यों ही उनकी दृष्टि एक सिपाही पर पड़ी। वह भी पास ही घायल हुआ पड़ा था और सर फिलिप की ओर दुःख भरे नेत्रों से देख रहा था। ऐसा मालूम होता था कि वह भी बहुत ही प्यासा है और मारे प्यास के उसका जी निकल रहा है।

सर फिलिप ने सोचा इस विकट समय में इस बेचारे को कौन पानी देगा ? उन्होंने जल का प्याला सिपाही को दे दिया और उसकी रक्षा करली। कहना न होगा कि ऐसा करने से प्यास के कारण उनके प्राण पखेरू उड़ गए।

प्यारे वीर पुत्रो ! दूसरों को सुखी कर के जो प्रसन्न होता है वही सच्चा दयालु है। तुमको कष्ट सहकर के भी दूसरों का भला करना चाहिये।

पाठ ७—कसरत।

मन को मजबूत बनाने के लिए शरीर को निरोग और दृढ़ बनाने की आवश्यकता है। इस सिद्धान्त को तिलक बचपन ही से समझते थे। आप ब्राह्मण जाति में एक उच्च कुल में पैदा हुए थे। आप का विवाह बचपन ही में हो गया था। पति पत्नी में प्रेम बहुत था। आपकी पत्नी का शरीर मजबूत था और आपका दुर्बल। इसलिये आपने अपने शरीर को मजबूत बनाने का निश्चय किया। इस निमित्त आपने एक वर्ष तक तो कालेज का अभ्यास तक भी छोड़ दिया। एक वर्ष तक आप कसरत ही में लगे रहे और जैसा बनना चाहते थे वैसे मजबूत बनगए। इसी कसरत का फल है कि आप अन्त तक उत्साह पूर्वक देश सेवा करते रहे।

शरीर को मजबूत बनाने के लिए आप देशी कसरत को विशेष पसंद करते थे। आप अपनी सन्तान को भी देशी कसरत कराते थे। कसरत के लिए आपका बहुत लक्ष्य। आप जब जेल में थे तो वहां से भी घर पर पत्र ... पूछते कि बच्चे कसरत करते हैं कि नहीं। यह समाचार भेजना घर वालों के लिए अनिवार्य था।

प्यारे बालको ! आप को भी नित्य कसरत करना चाहिये। कसरत नहीं करने से शरीर बिगड़ जाता है। दूध दही और घी जितना फायदा करते उससे बहुत अधिक फायदा शरीर को कसरत करने से होता है।

शुद्ध हवा, जल, सादा भोजन और कसरत ये चार वस्तुएँ शरीर के लिए परम उपयोगी हैं।

पाठ ८—गोपाल कृष्ण गोखले।

श्री० गोखले जब पाठशाला में पढ़ते थे उस समय शिक्षक ने सब व्यक्तियों को कुछ हिसाब हल करने के लिए दिये। उन में से एक हिसाब गोखले को नहीं आता था। वह हिसाब उन्होंने अपने एक मित्र को पूछकर हल किया।

गोखले के सारे हिसाब सही निकले। इसलिये शिक्षक उन से प्रसन्न हुए और उन्हें पुरस्कार देने लगे। इस समय गोखले की आँखों से आंसुओं की धारा बह चली। शिक्षक ने आश्चर्य से पूछा—प्यारे विद्यार्थी, पुरस्कार लेते समय आँसू कैसे गिरा रहे हो ? गोखले ने उत्तर दिया—"गुरूजी मैं इस पुरस्कार के लायक नहीं हूँ। इन में से एक हिसाब मैंने अपने एक मित्र की सहायता से हल किया है और

मैंने आप से मिथ्या मान प्राप्त कर लिया। मैं तो इस दोष के लिए दण्ड का भागी हूँ। यह बात सुनकर शिक्षक विशेष प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—मैं यह पुरस्कार तुम्हें अपनी सत्यवादिता के लिए देता हूँ।

प्यारे विद्यार्थियो ! आप भी ऐसे ही सत्यवादी बनें। कितने ही विद्यार्थी एक दूसरे की चोरी कर के परीक्षा में पास हो जाते हैं। कभी २ वे पकड़े भी जाते हैं और दण्ड पाते हैं। चोरी कर के पास होने वालों की पढ़ाई बहुत कमजोर रहती है जिससे उन्हें आयु भर दुःख उठाना पड़ता है।

पाठ ६—नैपोलियन बोना पार्ट (भा० १)

नैपोलियन बोनापार्ट की माता लैटीशिया बहुत बुद्धि-शाली थी। उसे वीर पुरुषों के जीवन पढ़ने और सुनने का बहुत शौक था। जब उसे गर्भ रहा तभी उसने यह विचारा कि मेरा पुत्र यूरोप का बादशाह होना चाहिये। गर्भ काल में वह वीर पुरुषों के जीवन बहुत पढ़ती और अपने गर्भ को सुनाती थी। जहाँ युद्ध होता वहीं वह वीर पुरुषों को देखने चली जाती थी। उनके चित्र अपने पास

रखती थी। गर्भावस्था में पहिनने के लिए उसने एक विशेष प्रकार की साड़ी रख छोड़ी थी। उस पर रण संग्राम में लड़ते हुए वीर पुरुषों के चित्र थे। उसके सवा नौ महीने तक गर्भावस्था में रहने पर सन् १७६६ के अगस्त मास की पन्द्रह तारीख को नैपोलियन का जन्म हुआ। जन्म लेते ही नैपोलियन ने अपनी वीर माता की साड़ी पर चित्रित किए हुए वीर पुरुषों के चित्रों का दर्शन किया।

जब नैपोलियन गर्भ में था तब उसकी माता घोड़े पर सवार होकर घोर जङ्गल में घूमने जाती थी और जंगल के भयानक दिखाव देखकर न केवल खुद विशेष निर्भय बनती थी वरंच अपने गर्भ में रहे हुए पुत्र पर भी निर्भयता के संस्कार डालती थी।

नैपोलियन जब बातें सुनने और समझने लायक हुआ तब उसकी माता उसे वीर पुरुषों की कथाएँ सुनाती और वापिस उसके मुँह से सुनती थी। नैपोलियन के मुँह से वीर पुरुषों की कथाएं सुनकर माता बड़ी प्रसन्न होती और उसे पूछती—"बेटा क्या तू भी वीर बनेगा ?"। "हां मा, मैं वीर अवश्य बनूंगा !" नैपोलियन उत्तर देता। माता पूछती—'क्या तू यूरोप का बादशाह बनेगा ?' नैपोलियन

उत्तर देता–अवश्य! मैं अपने भुजबल से शत्रुओं को जीत कर सारे यूरोप पर राज्य करूंगा।

नैपोलियन एक ग़रीब का लड़का था परन्तु माता के संस्कार और अपनी उच्च भावना से वह लगभग सारे यूरोप का बादशाह बन गया। वीर पुत्रो! आप भी वीर बनने की भावना करोगे तो वीर बन सकोगे।

पाठ १०—नैपोलियन बोनापार्ट (भा० २)

नैपोलियन पांच वर्ष की अवस्था में पाठशाला में पढ़ने गया। वहां भाषा-ज्ञान प्राप्त कर के दश वर्ष की उम्र में सैनिक पाठशाला में भरती हो गया। वहां उसने गणित, विज्ञान और साहित्य में योग्यता प्राप्त की। वीर पुरुषों की जीवनियाँ नैपोलियन खूब पढ़ता था और राजाओं की हार जीत के कारण भी वह गहरे विचार के साथ सोचता था। पन्द्रह वर्ष की आयु में उसने युद्ध विद्यालय में प्रवेश किया। उस विद्यालय में राजकुमार भी पढ़ने को आते थे। उनकी सेवा के लिए नौकर भी रहते थे और नके भोजन में भी मेवा मिठाई आदि का उपयोग ज्यादा

होता था। उनका जीवन वहाँ एकान्त विलासी बनता जाता था और नैपोलियन विलासी जीवन का घोर विरोधी था। उसने विद्यालय के गवरनर को पत्र लिखा कि युद्ध-विद्यालय में पढ़ने वाले विद्यार्थियों के लिए नौकरों की आवश्यकता नहीं है। नौकर रखने से शिक्षा का आशय पूर्ण नहीं होता और ऐसा विलासी जीवन व्यतीत करने वाले युद्ध में कभी विजय नहीं पासकते। नैपोलियन की राय से गवरनर ने विद्यालय के नियमों में फेरफार कर दिया।

नैपोलियन की परीक्षा के लिए परीक्षक ने एक बहुत कठिन गणित का प्रश्न पूछा जिसको हल करने के लिए नैपोलियन ने बहत्तर घण्टे तक महनत की।

किसी ने नैपोलियन को गाने तान के लिए निमंत्रण दिया। निमंत्रण के उत्तर में नैपोलियन ने कहा—गान तान में तो मनुष्यत्व का भी समावेश नहीं है।

नैपोलियन जब १६ वर्ष की उम्र का हुआ तब उसके पिता की मृत्यु हो गई। उस समय नैपोलियन बहुत ग़रीब था। रोटी खाने के लिए उसके पास कौड़ी भी नहीं थी। अतः उसने सेना में नौकरी कर ली और उन्नति करते २ वह गवरनर हो गया और अन्त में उसकी वीरता देखकर

फ्रान्स वालों ने उसे अपना राजा बना दिया। उसने न्याय और नीति से अपनी प्रजा का पालन किया।

प्यारे वीर पुत्रो ! इस पाठ से आप समझ गए होंगे कि मनुष्य जैसा चाहे वैसा बन सकता है। आपको अपने को विश्व के एक महापुरुष बनाने की कोशिश करना चाहिये।



पाठ ११—एक रुपये में कन्या भवन।

एक शहर में एक परोपकारिणी स्त्री ने ग़रीब लड़कियों के पढ़ने के लिए एक पाठशाला खोली। इधर उधर भटकने वाली अनाथ तथा ग़रीब लड़कियों को वहां पढ़ना लिखना सिखाया जाता था। ये लड़कियाँ सुबह से शाम तक तो पाठशाला में पढ़ती थीं और छुट्टी होने पर इधर उधर भटकती थीं; क्योंकि उनके रहने के लिए कोई घर नहीं था। इनमें एक लड़की मेहनत से पढ़ती लिखती और ध्यान से उपदेश सुनती थी। उसके मन में विचार आया कि ये लड़कियाँ इधर उधर भटकती रहने से बिगड़ती हैं। इसलिए इनके रहने के लिए अगर कोई मकान बन जाय तो क्या ही अच्छा हो ? वह लड़की धुन की

बड़ी पक्की थी। उसने खूब मेहनत मजूरी करके एक रुपया बचाया और उसको एक कागज़ की पुड़िया में समेट कर अध्यापिकाजी को दे दिया। कागज पर लिखा हुआ था, "यह रुपया गरीब लड़कियाँ के रहने के लिए घर बनाने के वास्ते देती हूँ।" यह पुड़िया खोल कर तथा उसके कागज पर लिखा हुआ वाक्य पढ़कर अध्यापिकाजी को बड़ा आश्चर्य हुआ। फिर उन्होंने यह बात लोगों के सामने प्रकट की और कहा कि इस दयालु लड़की ने इस परोपकारी काम का आरम्भ किया है। अब सब लोगों को सहायता देकर गरीब लड़कियाँ के रहने के लिए घर बना देना चाहिये।" अध्यापिकाजी के इस उपदेश से बहुत सा धन इकट्ठा हो गया और गरीब लड़कियाँ के लिए एक बड़ा 'कन्या भवन' सुगमता से बन गया। उसके एक रुपया देने से लाखों रुपये इकट्ठे हो गए और इतना बड़ा काम हो गया। इसी तरह सच्ची लगन से काम किया जाय तो बड़ी २ सफलताएँ मिल सकती हैं।

पाठ १२—विलायती-विद्यार्थी।

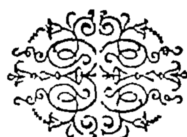
विलायत में सब लड़के आपस में प्रेम रखते हैं। कोई किसी से लड़ता झगड़ता नहीं है। कोई भी लड़का

प्रायः इतना आलसी नहीं है कि अपनी पढ़ने की पुस्तक, दवात, पेंसिल, स्लेट लाना भूल जाय। यदि कोई भूल जाता है तो दूसरा लड़का अपनी चीज़ उसको तुरंत दे देता है! वे लोग पढ़ते समय चुपचाप बैठे शिक्षा-गुरुओं से पाठ सीखते हैं। खाने की चीजें सब आपस में बांट २ कर खाते हैं। यदि कभी आपस में भूल से झगड़ा हो जाता है तो शिक्षा गुरु उनको यह शिक्षा देता है कि अपने बाइबल में (धर्म-शास्त्र में) लिखा है कि 'झगड़ा कभी करना नहीं। यदि भूल से हो जाय तो सूर्यास्त के पहले दूसरे के घर पर जाकर क्षमा मांगनी चाहिये। यदि कोई भूल से भी क्षमा न मांगे तो वह धर्म-भ्रष्ट समझा जाता है। कोई भी अच्छा मनुष्य उसका आदर नहीं करता है। उसको भी दूसरे दिन तो अवश्य क्षमा मांगनी पड़ती है, नहीं तो वह स्कूल में भर्ती नहीं हो सकता है।

प्यारे बालको! यह बात आपने विलायत की सुनी किन्तु अपने धर्म शास्त्रों में तो यहां तक लिखा हुआ है कि किसी से झगड़ा करना नहीं। यदि कभी हो जाय तो क्षमा मांगने के पहले मुँह का थूक भी पेट में उतारना नहीं। इसका अर्थ यह है कि एक मिनिट तक भी किसी पर क्रोध रखना नहीं। इस नियम को अच्छे मुनिराज व

श्रावकगण पाल रहे हैं और समस्त संसार से क्षमा मांगने के लिए ही देवसी, रायसी, पक्खी, चौमासी तथा संवत्सरी आदि धार्मिक महापर्व नियत किये गये हैं।

इन्हीं सु-संस्कारों से विलायत की आज इतनी उन्नति सुनते हैं। इसलिए प्यारे बच्चो! अपना एक भी मिनिट व्यर्थ मत खोओ। हमेशा पढ़ने में चित्त लगाओ।



स्वास्थ्य रक्षा



पाठ १३—भोजन

भोजन ऐसे स्थान पर करना चाहिये कि जहां मन प्रसन्न हो। मन चाही जगह भोजन करने से भोजन जल्द पच जाता है।

भोजन बहुत जल्दी २ नहीं करना चाहिये। बहुत जल्दी २ भोजन करने से भोजन की चिकनाई ऊपर को

चली जाती है, इसीलिये शरीर रूखा और शिथिल हो जाता है, भोजन अपनी जगह पर नहीं रहता, भोजन का असली लाभ उसे नहीं मिलता। इसलिये भोजन करने में बहुत जल्दी नहीं करना चाहिये।

बहुत धीरे २ भोजन करना भी ठीक नहीं। बहुत धीरे २ भोजन करने से एक तो तृप्ति नहीं होती। दूसरे प्रमाण से अधिक खाया जाता है। भोजन ठंडा हो जाता है और वह पचता भी जरा देरी से है। उसके पचने में विषमता आ जाती है।

बिना बोले, बिना हँसे तथा जी लगाकर ही भोजन करना चाहिये। भोजन करते समय बकबक करने, हँसने तथा और जगह मन चले जाने से वही उपद्रव होते हैं जो बहुत जल्दी भोजन करने में होते हैं। इसलिये भोजन करते समय, जहां तक हो बातें बंद रखनी चाहिये और हँसना भी बंद रखना चाहिये। मतलब यह है कि भोजन करते समय मन और जगह कहीं नहीं ले जाना चाहिये।

भोजन करते समय अपने शरीर को देख लेना चाहिये। यह देख लेना चाहिये कि भोजन में कोई ऐसी चीज नहीं है जो हमारे शरीर के विरुद्ध हो। जो वस्तु हानि-

कारक हो उसे नहीं खाना चाहिये हितकारी भोजन करने से शरीर हृष्ट पुष्ट रहता है।

भोजन के लिये उदर के तीन भाग करने चाहिये। एक कड़ी चीज़ों के लिये, दूसरा पतली चीज़ों के लिये और तीसरा वात, पित्त, कफ के लिये खाली। तात्पर्य यह है कि जितनी भूख हो उसका तिहाई ऐसा भोजन करना चाहिये जो कड़ा हो और एक तिहाई दूध, पानी आदि पतली चीज़ों से भर लेना चाहिये। और रहा एक तिहाई सो उसे खाली रखना। एक तिहाई खाली रखने से कई लाभ हैं। एक तो यह कि श्वास के आने जाने में सुभीता होगा, दूसरे भोजन के बाद पानी या दूध पीना पड़ा तो जगह खाली होने पर ही पिया जा सकता है। ऐसा करने से दो तिहाई भोजन करने से–शरीर में वे दोष नहीं पैदा होते जो अपरिमित भोजन करने वालों के शरीर में प्रायः हो जाया करते हैं।

भोजन के समय निम्न लिखित भावनाओं का अवश्य चिंतवन करो।

१—मैं अच्छे २ पदार्थ खाता हूं परन्तु भारत देश में लगभग चार करोड़ मनुष्य हमेशा भूखे रहते हैं। मैं

उनकी कुछ भी चिंता नहीं करता । यह मेरा स्वार्थीपन दूर हो ।

२—भोजन का कुछ हिस्सा त्यागी मुनि, ब्रह्मचारी, विद्यार्थी व निराधार को देकर जीवन सफल करूँ ।

३—भोजन के प्रत्येक कवल में से सात्विक परमाणु खींचकर दिव्य शक्ति प्राप्त करता हूँ और इस शक्ति से जगत में सत्य शील और संयम का प्रचार करूँगा ।

प्यारे बालको ! आज के पाठ को पढ़कर आप भूख से कम खाने का निश्चय करें ।

पाठ १४—रात्रि भोजन ।

रात्रि भोजन का निषेध जैन और जैनेतर सभी शास्त्रों में युक्ति पूर्वक किया गया है एवं शारीरिक नियम और नीति रीति के देखने से भी यही मालूम होता है कि रात्रि भोजन नहीं करना ही सर्वोत्तम है । तथापि मनुष्य रात्रि भोजन में जरा भी नहीं हिचकते । देखिये दिन की अपेक्षा के समय में जीव अधिक उड़ते हैं और दीपक के को देख कर के तो और भी अधिक आ जाते हैं ।

ये जीव जैसे रातको अपने शरीर पर बैठते हैं वैसे भोजन पर भी। अब उस भोजन पर बैठे हुए जीवों में से कितने जीव, रात्रि भोजन करने वालों के पेट में जाते होंगे, इसका विचारना कठिन नहीं। इस प्रकार के जीते जीवों के भक्षण करने वाले निर्दयी हैं, ऐसा किसी अपेक्षा से कहा जाय तो अनुचित न होगा। यह तो जीवों के भक्षण के विषय में बात हुई; परन्तु बहुत से रात्रि भोजन करने वाले रात्रि भोजन से अपने प्राणों को भी खो बैठते हैं। ऐसे अनेकों प्रसंग धोलेरा, खंभात और कलकत्ता वगैरह शहरों में बने हुए सुनने और देखने में भी आये हैं। ऐसे ही प्रसंग वर्तमान पत्रों में भी बहुत बार पढ़ने में आते हैं। इन्हीं कारणों से शास्त्रकारों ने रात्रि भोजन में जोर देकर पाप दिखलाया है। यहां तक कि, यद्यपि साधुओं के लिये पांच महाव्रत दिखलाए गए हैं; परन्तु जिस समय साधु दीक्षित होता है उस समय पांच महाव्रतों के साथ रात्रि भोजन को छठा व्रत गिनकर के उसका भी उच्चारण कराया जाता है। कहीं २ तो यहां तक कथन पाया जाता है कि—'रात्रि भोजन में इतने दोष हैं, जिनको केवली जान सकते हैं परन्तु कह नहीं सकते'। इस पर अगर सूक्ष्म दृष्टि से विचार किया जाय, तो यह सत्य ही मालूम

होगा। क्योंकि रात्रि भोजन में दोष अपरिमित हैं। आयुष्य परिमित है और इस में भी वचन वर्गणाएं यथाक्रम निकलती हैं। अब बतलाइये, छोटे आयुष्य में अपरिमित दोषों का सम्पूर्ण रीत्या स्पष्टीकरण कैसे हो सकता है?

मुसलमानों के रीति-रिवाजों के देखने से मालूम होता है कि वे हिन्दू और जैनों से भिन्न ही हैं। एक ही दृष्टान्त लीजिये। समस्त आर्य पूर्व और उत्तर दिशा को मानते हैं, तब मुसलमान पश्चिम दिशा को। इसी तरह आर्य, सूर्य साक्षी से भोजन करते हैं तब मुसलमान रोजे के दिनों में दिन को नहीं खाकर रात्रि में भोजन करते हैं। इस दृष्टांत से भी हम ऐसा मान सकते हैं कि हिन्दू और जैन समस्त आर्य प्रजा को रात्रि भोजन नहीं करना चाहिये।

मुसलमान भाइयों में रात्रि भोजन का व्यवहार धर्म के पक्षपाती नेताओं ने शुरू किया है।

प्रायः जहां धर्म के झगड़े होते हैं वहां एक दूसरे के प्रवृत्ति की जाती है, चाहे हित हो या अहित— नों को हिताहित सोचकर बुरी रीतियाँ (रूढ़ियाँ) दनी चाहिये।

भोजन में चींटी के आने से बुद्धि का नाश, जूं से जलोदर, मक्खी से वमन, मकड़ी से कुष्ट रोग और लकड़ी के टुकड़े से गले में व्यथा होती है। इसी तरह शाकादि में विच्छू आने से वह तालु को तोड़ कर प्राण का नाश करता है, एवं गले में बाल के आ जाने से स्वर का भंग होता है इत्यादि अनेकों प्रकार के भय रात्रि भोजन करने वाले मनुष्यों के सिर पर रहे हुए हैं।

प्यारे बालको! आप रात्रि के भोजन का त्याग कीजिएगा।

पाठ १५—सोना।

चरक में लिखा है कि सुख, दुःख, मोटापन, पतलापन, बलवान् होना, और निर्बल होना, ज्ञान और अज्ञान तथा जीवन और मरण सब निद्रा पर निर्भर हैं।

जब मन काम करते करते थक जाता है तब कर्मेन्द्रियाँ (काम करने वाली इन्द्रियाँ जैसे–हाथ, पाँव, मुँह आदि) भी थक जाती हैं। उसी समय निद्रा आती है। कु-समय के सोने, प्रमाण से अधिक सोने या बिल्कुल न सोने से

भी मनुष्य के सुख और आयु सब नष्ट हो जाते हैं। नींद ही के ठीक २ होने से मनुष्य को सुख मिल सकता है।

जो लोग गाने, बजाने, पढ़ने, नशा पीने, बोझ ढोने, मार्ग चलने, मेहनत के काम करने से थक गये हों उन्हें दिन में सोना, लाभदायक है। इनके सिवा जिनके पेट में बिमारी हो, जिनके शरीर में घाव हो, जो दुर्बल हों, तथा जो वृद्ध, बालक, दुर्बल और प्यासे हों, उनको भी दिन में सोना चाहिये। जो मनुष्य रात में अच्छी तरह न सो सका हो और शोक या भय से पीड़ित हो उसे भी दिन में सोने से लाभ ही होता है। ग्रीष्म ऋतु को छोड़ कर और किसी ऋतु में दिन में नहीं सोना चाहिये। जो बहुत मोटे हों, या जिन्हें कफ़ की बिमारी हो उन्हें दिन में सोने से हानि ही होती है। ऐसा मनुष्य यदि दिन में सो जाता है तो उसको कितनी ही बिमारियाँ घेर लेती हैं— जैसे सिर दर्द, देह में भारीपन, अंगों का टूटना, अग्नि का नाश, हृदय का भारीपन, कफ़ का बढ़ना, जुकाम, आधाशीशी, फुन्सी, खुजली, खाँसी, ज्वर, इन्द्रियाँ की निर्बलता इत्यादि। इसलिये दिन में उन्हीं लोगों को सोना चाहिये जिनका वर्णन ऊपर किया गया है। देह रचा के

लिये जिस तरह भोजन की आवश्यकता होती है उसी तरह निद्रा भी बड़ी उपयोगी है।

कितने ही लोगों को नींद नहीं आया करती। नींद न आने के कारण चरक में इस प्रकार लिखे हैं—अधिक दस्तों का आना, नाक के द्वारा छींक लेने से मलका अधिक निकल जाना, वमन, भय, चिंता, क्रोध, धूम्रपान, स्त्री संगम, चारपाई का खराब होना। ये सब काम नींद में अहितकर हैं अर्थात् इनसे आई हुई नींद भी नष्ट हो जाती है। और हां, सत्व गुण के बढ़ने और तमोगुण के घटने से नींद कम हो जाती है। बुढ़ापे में भी लोगों को नींद बहुत कम आती है।

सोने के पूर्व गत् दिवस के सब कामों का विचार करके बुरे कामों का पश्चाताप तथा अच्छे कार्यों की वृद्धि की भावना करनी चाहिये—

"मुझे विकारी कोई स्वप्न मत आओ, विषयवाञ्छा भय, चिंता सब दूर होओ, निद्रा से सब थकावट दूर होकर नव चैतन्य प्राप्त होओ, सुबह बराबर चार बजे प्रसन्नता पूर्वक निद्रा त्याग होओ," इस प्रकार कम से कम तीन

और शांति से विचार करके सो जाओ जिससे निश्चित समय पर जागृत हो जाओगे।

सोते समय बायीं बाजू नीचे रखना जिससे जीमणा स्वर (सूर्य स्वर) चल करके भोजन शीघ्र हजम हो जाय व वीर्य दोष न हो।

पाठ १६—वेगों के रोकने में उपद्रव।

वेग न रोकने का यहां अर्थ—शरीर के विषैले पदार्थ बाहर निकलने लगें तब उन्हें आलस्य प्रमाद या लोभ वश नहीं रोकना, यह है।

रोग भी विष के निकलने की क्रिया है। रोग के जहर का सर्वथा नाश करने का सर्वश्रेष्ठ उपाय लंघन (उपवास) है। जो शीघ्र दवा लेते हैं वे सदा रोगी रहते हैं।

मूत्र-निग्रह के रोग—मूत्र के रोकने से वस्ति और मूत्रेन्द्रिय में शूल पैदा हो जाता है। उसका मूत्र बड़े कष्ट से उतरता है। सिर में दर्द और पेट में दर्द हो जाता है। इसलिये मूत्र के वेग को कभी न रोकना चाहिये।

मल निग्रह के रोग—पायखाने की हाजत रोकने से पेट में दर्द, सिर में दर्द और गर्मी, अधोवायु और दस्त का रुक जाना पिंडलियों में हड़कल और अफारा आदि रोग हो जाते हैं इससे आयु भी घटता है। इसलिये दस्त का वेग कभी नहीं रोकना चाहिये।

अधोवायु-निग्रह के रोग—अधोवायु रोकने से वात, मूत्र और दस्त रुक जाते हैं, अफारा, सुस्ती, शूल और पेट में कितने ही रोग पैदा हो जाते हैं, वायु के दोष से और भी कितने ही दोष पैदा हो जाते हैं।

छींक रोकने के रोग—छींक के वेग को रोकने से गले की नसें जकड़ जाती है, सिर में दर्द, आधाशीशी और इन्द्रियों में दुर्बलता पैदा हो जाती है।

डकार रोकने के रोग—डकार के रोकने से हिचकी, खाँसी, अरुचि, कम्पन, हृदय में भारीपन आदि उपद्रव पैदा हो जाते हैं। इसलिये डकार के वेग को नहीं रोकना चाहिये।

जंभाई रोकने के रोग—जंभाई रोकने से देह झुक जाती है, हाथ पांव जकड़ जाते हैं, नसें सिकुड़ जाती हैं,

शरीर में कँप कँपी होने लगती है। इसलिये जंभाई के वेग को भी नहीं रोकना चाहिये।

प्यास रोकने के रोग—प्यास के रोकने से कण्ठ और मुंह से खुश्की हो जाती है, इससे बहरापन, थकावट, श्वास और हृदय में पीड़ा होने लगती है।

आंसुओं के रोकने का रोग—आंसुओं के रोकने से जुकाम, नेत्र रोग, हृदय के रोग अन्न में अरुचि हो जाती है। इसलिये आंसुओं के वेग को भी नहीं रोकना चाहिये। जो लोग रोते हुए बालक को एक दम चुप करना चाहते हैं और उसके रोने के वेग को एक दम चुप कर देते हैं सो भी अच्छा नहीं है।

नींद के रोकने के रोग—नींद के रोकने से जंभाई, हड़ फूटन, सिर के रोग, आखों में भारीपन, इत्यादि रोग पैदा हो जाते हैं। इसलिये नींद का रोकना हानिकारक है।

पाठ १७—अकर्तव्य कर्मों का वर्णन।

झूंठ, चोरी, पराई स्त्री को पाप की दृष्टि से देखना, दूसरे के धन पर लालच करना, वैर करना, निंदा करना, अधर्मी और देश द्रोही के साथ रहना, बुरी सवारियों पर

चढ़ना, ऊंची नीची जगह में आना जाना या उठना बैठना, छोटे ऊंचे नीचे और बिना तकिये के पलंग पर सोना, पहाड़ियों की विषम चोटियों पर घूमना, वृक्ष पर चढ़ना, जल की तेज धारा में नहाना, बेर के पेड़ के नीचे जाना, अग्नि के पास जाना, बहुत खिलखिला कर हँसना, बिना मुँह ढँके जंभाई, छींक लेना और हँसना; नाक का खुरचना, दाँतों को पीसना, नखों को तोड़ना, हड्डियों को पीटना, धरती पर लकीर खींचना, तिनकों का तोड़ना, मिट्टी के ढेलों का फोड़ना, पावों का हिलाना, देह का तोड़ना, चमकीले पदार्थ जैसे सूर्य, अति उज्वल दीपक आदि का देखना; सूने घर में अकेले सोना, पापी मित्र, स्त्री और सेवक का रखना; उत्तम मनुष्यों के साथ वैर करना, नीचों का संग करना, बुरे आदमी का विश्वास करना, अनार्य मनुष्य का सहारा पकड़ना, किसी को डराना, अति साहस करना, अति सोना, अति जागना, अति स्नान करना, अति पीना, अति भोजन करना, साँप आदि हिंसक जीवों के पास जाना, लड़ाई करना, भोजन करके बिना हाथ मुँह धोए कहीं जाना, बिना पसीना सूखे नहाना, नंगे होकर नहाना, गीली धोती का सिर पर लगाना, केशों को पकड़ कर खींचना, इत्यादि काम त्याज्य हैं—अकर्तव्य हैं।

अकर्तव्य काम कभी नहीं करने चाहिये। इनके न करने में ही सुख मिलता है।

सूर्योदय तक सोते रहना, दाँतों को साफ करने में आलस्य करना, भोजन में चरपरे-बहुत खट्टे मीठे व भारी पदार्थ खाना, बार २ खाना, अपना काम स्वयं न करके नौकरों से कराना, विना देखे खाना, अनजाने मनुष्य स्थान व भोजन का उपयोग करना, बोलने में तुच्छता लाना, गर्व करना, अपने गुण व अन्य के दोप बोलना, क्रोध करना, अपने पापों को छिपाना, चुगली, निन्दा, ईर्ष्या आदि करना, कलंक चढ़ाना, विना विचारे काम करना, अच्छा काम करते डरना, दु:ख में घबराना, आत्म घात व परघात करना, राग द्वेष व मोह करना, ज्ञान पढ़ते पढ़ाते आलस्य करना, अपनी शक्ति नहीं लगाना; ये सब बुरे काम हैं, अकर्त्तव्य हैं। इनको छोड़कर अच्छे काम करने चाहिये।

पाठ १८—नामा-बहीखाता।

१—व्यापारी को चाहिये कि वह रोज आय व्यय लिख कर बाकी रोकड़ संभाला करे।

२–ऊंट पर चढ़ कर झोंके खाने वाला और याद कर कर के बही खाता लिखने वाला गिरे बिना न रहेगा।

३–बही खाते को, (नामे को) रोज देखने भालने वाला फायदा ही उठाता है।

४–बही खाता सरस्वती है, लक्ष्मी है, व्यापारी का प्राण है। उसे सदा शुद्ध और स्वच्छ रखना चाहिये।

५–पैसा हाथ में आये विना जमा नहीं करना चाहिये और लिखे विना देना न चाहिये।

६–बही खाता महीने की अन्तिम मिती तक रोजाना साफ़ लिखते रहना चाहिये।

७–देना बहुत हो जाने से बही खाते देखते आलस्य आता है, झुंझलाहट होती है और ऐसा होना आखिरकार फजीहत कराता है। (दिवाला निकलने का कारण है)

८–अपने बहीखाते किसी को व्यर्थ न दिखलाने चाहिये और प्रसंग आ पड़ने पर वैसा करने से चूकना भी न चाहिये।

९–बहीखाते सदा अपने ही हाथ में रखने चाहियें।

१०—कहने का मतलब यह है कि, बही खातों को पवित्र रखने में सदा सावधान रहना चाहिये। आबाद बने रहने का यही एक उत्तम साधन है।

११—यदि हम नामा रखना या लिखना न जानते हों तो यह काम हमें अपने अत्यंत विश्वासपात्र मनुष्य से कराना चाहिये। ऐसे वैसे प्रत्येक मनुष्य से यह काम लेना ठीक नहीं।

पाठ ११—पदार्थ विज्ञान।

हरड़ के गुण—खाँसी, श्वास, कोढ़, सोजा, पेट के कीड़े, कंठ बैठना, दस्त के तमाम रोग, ज्वर, अफ़ार, वमन, तृषा, वार २ पिशाब आना आदि को मिटाती है।

गरम पानी के गुण—सुबह कुछ भी न खाने से पहले पेट भर गरम पानी पीने से आम, पित्त, दाह, कफ, खट्टी डकारें मिटती हैं और अग्नि बढ़ती है। गरम पानी गले के रोग, मन्दाग्नि, सरदी, जुकाम, अरुचि, संग्रहणी, रुधिर-विकार मिटाता है।

ज्यादा थूकने से चहरा छोटा तथा पीला पड़ जाता है।

जीभ के ऊपर बोझ रखने से बवासीर रोग मिटता है।

भोजन के बाद पिसाब करने से इन्द्रिय-जन्य बहुत से रोग मिटते हैं।

जंगल जाते समय बायें पैर पर जोर देने से अजीर्ण रोग मिटता है।

जंगल जाते समय दाँतों को दबाने से दंत रोग मिटते है।

हरडे मुँह में रखने से श्वास खांसी मिटती है।

बार २ पिसाब आने को रोकने के लिये गरम दूध में कुछ गुड़ मिलाकर पीना चाहिये।

पाठ २०—कुछ उपयोगी बातें।

(१) सोते समय पांव भीगे हुए नहीं होने चाहिए।

(२) बिना भोजन किये हुए कभी बाहर यात्रा न करनी चाहिए।

(३) गरम दूधादि पीकर तत्क्षण ही ठण्ड में न जाना चाहिए।

(४) शरीर स्वच्छ रखने से रोग कम होते हैं।

(५) व्यायाम करने या और कोई किसी प्रकार की महनत के बाद पानी कभी नहीं पीना चाहिए।

(६) गला बैठ जाने पर बातचीत कम कर देनी चाहिए, नहीं तो सदा के लिये गला बिगड़ जाने की सम्भावना है।

(७) प्रकाश को ठीक आँखों के सामने रख कर पढ़ने से हानि होती है। (पढ़ते समय आंखों पर अंधेरा रखो)

(८) रेल में यात्रा करते हुए हाथ बाहर निकाल कर बैठना या सिर निकाल कर झांकना जोखिम का काम है। इससे कई मनुष्य मर भी गये हैं।

(९) रात्रि के समय हवा को बिलकुल ही न रोक देना चाहिए। (शुद्ध हवा ही जीवन है)

(१०) खाना खाने के पश्चात् मञ्जन करने या अच्छी तरह मुँह धोने से दांत नहीं बिगड़ते।

(११) भोजन करने के थोड़ी देर बाद जल धीरे धीरे पीना चाहिए। यह अधिक लाभदायक है।

(१२) नशे की वस्तुओं से परहेज़ रखना चाहिये।

(१३) जहां तक हो सके, औषधियों का कम प्रयोग करना चाहिये। (ज्यादा औषध से ज्यादा रोग)

(१४) सदा ठीक समय पर काम करने की चेष्टा करनी चाहिए। (अनियमित काम "काम ही नहीं है")

(१५) और भूख से कुछ कम ही खाना चाहिए सादा भोजन ही अधिक लाभदायक है।

(१६) भोजन करते समय मानसिक अवस्था ठीक रखनी चाहिए, भोजन को खूब चबा चबा कर खाना चाहिये और किसी प्रकार की शीघ्रता या घबराहट नहीं करनी चाहिए।

(१७) रात्रि को भोजन नहीं करना चाहिए। जहां तक हो सके, हलका भोजन करना उचित है।

(१८) सोते समय गरम दूध या पानी पीना हानिकारक है।

(१९) देरी से सोना ठीक नहीं। पूरी नींद लेनी चाहिए और प्रातःकाल जल्दी उठने की चेष्टा करनी चाहिए।

(२०) अपवित्र विचार, आलस्य तथा अन्य दुर्व्यसनों को पास नहीं फटकने देना चाहिए।

चांद—मार्च १९२८

पाठ २१—चलना।

बालको ! चलना एक ऐसी अच्छी कसरत है जिसकी बराबरी दूसरी कोई भी कसरत नहीं कर सकती है। जो बालक प्रति दिन थोड़ा बहुत चलने का अभ्यास रखता है उसे कभी अजीर्ण नहीं होता है। उसके शरीर में रोगीली चर्बी भी नहीं बढ़ती, शरीर हलका फुर्तीला व निरोग रहता है। काम नहीं करने से, खुली हवा में नहीं चलने से शरीर रोगी, भारी, सुस्त और निकम्मा हो जाता है, कभी अधिक चलने और दौड़ने की आवश्यकता पड़े तो भी महनती लड़का सब से कम थकेगा। एक अमेरिका के डाक्टर इसीलिए लिखते हैं कि प्रत्येक बालक को अपनी शक्ति अनुसार १ से ३ माइल तक प्रति दिन चलना चाहिये। अंग्रेजी पत्र 'डेली मेल' में एक बिमार का दृष्टान्त लिखा था—वह हमेशा बिमार रहता था, सदा नई नई दवाइऐं खाता था। परन्तु किसी भी दवा से फायदा न होने के कारण वह निराश हो गया था। एक डाक्टर की सलाह से उसने यही चलने की कसरत थोड़ी २ शुरू की और थोड़े ही मास में वह निरोग हो [गया]। इस कसरत के वास्ते सब से उत्तम समय सुबह है।

प्यारे बच्चो ! इस पाठ से तुम भी हमेशा एक माइल से अधिक चलने की प्रतिज्ञा करो ।

पाठ २२—तमाखू

प्यारे बालको ! तामखू एक नशे वाली वस्तु है, इतना ही नहीं किन्तु शरीर को अन्दर से नष्ट करके खोखला बना देने वाला विष है। तुमने बहुत से तमाखू पीने, सूंघने तथा खाने वाले बुड्ढों को देखे ही होंगे कि उनको कितना दुःख होता है, साँस नहीं लिया जाता, दम भर जाता है, आँखों से कम दीखने लगता है। बच्चो ! ये सब इस तामखू के ही खेल हैं। तमाखू पीने वाले कमजोर हो जाते हैं, शरीर का रंग पीला पड़ जाता है। अजीर्ण, कब्जी आदि रोग इससे पैदा होते हैं।

डॉ० ट्वीचेल कहते हैं—तमाखू से फेंफड़े सड़ जाते हैं, हृदय जठर और स्नायु नरम हो जाते हैं, किसी किसी समय तो मूर्च्छित होने से मृत्यु भी आघेरती है।

डॉ० वलन कहते हैं कि—इसी तमाखू के कारण बुढ़ापा आने के पहिले ही जिनकी स्मर्ण-शक्ति नष्ट हो

जहरीला गिना जाता है । बच्चों का स्वभाव होने से वे उन खिलोनों को मुँह में डालते हैं, तब वह क्षार-अंश उनके पेट में जाता है जिससे बच्चों को लम्बोदरादि व्याधियें उत्पन्न होती हैं, उनके दांत खराब हो जाते हैं। जो माताएँ अपने बच्चों को रबर की 'धावणी' देती हैं, वे इससे शिक्षा लेंगी ? लकड़ी की 'धावणी' इससे सस्ती और लाभदायक होती है। प्यारे बच्चो ! यदि माता पिता ध्यान नहीं देवें तो तुम्हारा कर्त्तव्य है कि तुम अपने भाई बहनों को ऐसे रोगों से बचाने के लिए उनके हाथों में से रबर के खिलोने लेकर आग में जला डालो जिससे दूसरी बार उनके हाथों में न आवें और व्याधियों से उनका पिंड छूटे।

पाठ २४—शक्कर।

मि० फिनल नाम के अंग्रेज गृहस्थ लिखते हैं कि 'विलायती खांड जो भारतवर्ष में फैली है वह देखने में सफेद और कीमत में सस्ती पड़ती है, पर उसके कारण बहुत से रोग हिन्दुस्तान में फैल चुके हैं। यह खांड शरीर के रक्त को बिगाड़ती तथा शक्ति का नाश करती है। दूध आदि पदार्थों में अपन इसको डालते हैं, पर अपने को मानना चाहिये कि हम खांड नहीं पर जहर डाल रहे हैं।

इङ्गलैंड और भारतवर्ष के बड़े २ वैद्य और डाक्टरों ने स्पष्ट रूप से अपना मत दिया है कि यह खांड धर्म शास्त्र की रीति से तो खाना मना है ही, पर इससे प्लेग, महामारी आदि रोग होते हैं और बालकों तथा उम्र वाले मनुष्यों की मृत्यु संख्या बढ़ी है। इसलिये जो धर्म को न मानता हो उसे आरोग्य की दृष्टि से भी इसका खाना छोड़ देना चाहिये।

'हिन्दी बंगवासी' कलकत्ता ता० ३०-३-१९०३ के अंक में लिखता है कि सिर्फ हिन्दुस्तान से २८ लाख मन जानवरों की हड्डिएँ खांड वगैरह खाने के पदार्थ बनाने के लिए विलायत जाती हैं। स्वदेशी खांड कदाचित पर-देशी से मँहगी मिले तो भी उसमें पवित्रता और तन्दुरुस्ती है व[illegible] मिठास ज्यादा होता है, उसे ही खरीदनी चाहिये। जि[illegible] की शक्ति स्वदेशी खांड काम में लाने की नहीं है, उसे गुड़ काम में लाना चाहिये. इससे गौ-हत्या अटकेगी और दुधार पशुओं की वृद्धि होकर दूध दही घी वगैरह सस्ते होंगे।

देशी और विलायती शक्कर की परिक्षा।

कांच के गिलास में गरम पानी भर कर उसमें थोड़ी [illegible] मोरस शक्कर डालिए, गलते समय सूक्ष्मदर्शक यंत्र से देखेंगे [illegible] लोही के रजकण दिखाई देंगे।

पाठ २५—स्वास्थ्य और दवाइयाँ (१)।

जलने पर—खाने का चूना बारीक पीस कर अलसी के तैल में मिलाकर अग्नि या गरम जल अथवा गरम तेल से जले हुए स्थान पर लगाने से बहुत लाभ होता है, जलन तत्काल बन्द हो जाती है।

दूसरी दवा—इमली की छाल जलाकर और महीन पीसकर जले हुए स्थान पर अलसी या नारियल का तैल लगाकर दिन में दो-तीन बार बुरकाते रहना चाहिए, इससे बहुत जल्द आराम होगा।

घाव की बदबू—यदि घाव में बदबू हो, तो धुली हुई रुई को मिट्टी के तेल में भिगोकर घाव पर लगाने से गन्ध दूर हो जाती है और पीप नहीं पैदा होती।

कोढ़ की दवा—लजौनी (छुई मुई) जड़ी को पीस-कर कुष्ठ पर लगाने से शीघ्र आराम होगा।

बन्द पेशाब—नाभी पर गोपी चन्दन का लेप करने से बन्द पेशाव फिर शुरू हो जाता है।

दूसरी दवा—ककड़ी के बीज, सेंधा नमक, त्रिफला इन सब को समान भाग लेकर चूर्ण बना डाले। इसको गुनगुने पानी के साथ खाने से मूत्रावरोग दूर होता है।

पथरी—तिलों की कोंपल छाया में सुखाकर राख करले और तीन माशे लेकर शहद (या पुराना गुड़) में मिलाकर खाया करे।

दूसरी दवा—मूली के पत्तों का रस एक सप्ताह तक पीने से पथरी रोग को लाभ होता है।

आँव के दस्त—बीले का मुरब्बा खाने से आँव के दस्त बन्द हो जाते हैं।

दूसरी दवा—ईसरगुल की भूसी में दही मिलाकर खाएँ अथवा खाँड के शरबत के साथ फांक लें, तो आँव के दस्त अच्छे हो जाते हैं। बच्चों के लिए इसी का प्रयोग अच्छा होगा।

।—'घरेलू चिकित्सा'।

पाठ २६—स्वास्थ्य और दवाइयाँ (२)।

आँव के दस्त—छोटी हड़ को भूनकर चूर्ण करले, इसमें आवश्यकतानुसार काला नमक मिलाकर थोड़ा थोड़ा सेवन करने से आँव के दस्त बन्द हो जाते हैं।

साँप का काटा—तमाखू के गिट्ठक को पानी में घोट कर पिलाने से साँप का काटा आराम होगा।

दूसरी दवा—रीठे के भीतर से निकली हुई गोली के ऊपर के काले छिलके को कूटकर कपड़ छान कर ले। छः माशे पाव भर पानी में डाल कर जिसको साँप ने काटा हो, पिला दे। जब तक ज़हर दूर न हो; इसी तरह हर दो घण्टे के बाद पिलाता रहे। इससे किसी को कै और किसी को दस्त आकर ज़हर उतर जाता है।

तीसरी दवा—चौलाई की जड़ को चावलों के पानी (धोवन) में पीसकर पीएँ तो भयङ्कर साँप का काटा भी अच्छा हो जायगा, मामूली साँपों का तो कहना ही क्या है।

कुत्ते के काटने पर—मुर्गे की बीट पीसकर लेप करे, तो बावले कुत्ते का विष दूर हो जाता है।

दूसरी दवा—कुत्ते के काटने की जगह को दूध में घी मिलाकर धोए तथा पुराने घी का पान करे।

—'घरेलू चिकित्सा'।

जैन इतिहास

पाठ २७—*आदर्श-जैन।

जैन का स्वभाव क्षात्रिय अर्थात् रक्षा प्रेमी होता है। जैन का मगज़ शान्त और शरीर गर्म अर्थात् कार्यकुशल होता है।

जैन की जिह्वा में मिठास तो ऐसी होती है कि पत्थर भी पिघल जाय। वे बोलते थोड़ा लेकिन सत्य और मीठा। जैन का मुँह चन्द्रमा से अधिक शीतल और सूर्य से अधिक तेजस्वी होता है। कारण †क्रोध व लोभ रहित है।

जैन की आँखों से वीरता भरा हुआ अमी रस टपकता है और सुशीलता के भार से नीचे नम जाती है और पलक में भलमनसाहत की रेखा नजर पड़ती है।

जैन के हाथ दानी और पाँव परोपकारी होते हैं। जैन का चहरा अमृतभरा होता है। जैन का हृदय शत्रु के

* आदर्श सच्चा, जैसा चाहिये वैसा।

† क्रोध व लोभ से चहरा बिगड़ता है, क्रोध मे मान व लोभ में कपट प्राय. रहता है।

हथियार को शरमाने वाला होता है। जैन जगत् मात्र को अपना मानता है। सत्य को शोधता है। कोई भी बिना जीताये नहीं जाता वह तो सबको जीत लेता है। जैन पहाड़ जैसा स्थिर है, मृत्यु से नहीं डरता, अपने ध्येय का चिपट जाता है। जैन ऐसा गहरा और पूरा भरा होता है कि छलकता नहीं।

जहां जैन के पाँव पड़ते हैं, वहां कल्याण और शान्ति फैल जाती है। जैन के हृदय की गहराई में ज्ञान, क्षमा, प्रेम, धैर्य, श्रद्धा और भक्ति भरी पड़ी रहती है। जैन की तपस्या को इन्द्र का दण्ड भी नहीं तोड़ सक्ता। जैन सदा जागृत होता है। जैन सदा उदार दिल होता है।

अपन ऐसे आदर्श अर्थात् सच्चे गुणधारी जैन बन यही भावना। (श्री बन्शी)

पाठ २८—जैन धर्म और अजैन विद्वान्।

लेखक—कवि नन्हालाल दलपतराय एम० ए०।

(१) जैन धर्म प्रान्त धर्म है, देश धर्म है, और जगत् मात्र का धर्म है। अहिंसा का आदेश, गुजरात भारत और समस्त जगत् के लिये है!

(२) जैनाचार्य कृतकृत्य हो गये हैं।

(३) अहिंसा का आदेश जैनधर्म का गौरव है उपाश्रयों में से जगत् चौक में आओ, सारे जगत् को उपाश्रय बनाओ, प्रान्त के नहीं देश के नहीं जगत् भर के धर्माचार्य बनो।

(४) हिंसा से परिपूर्ण यूरोप, अमेरिका, अफ्रिका, और एशिया का बड़ा भाग क्या तुम्हारी राह नहीं देख रहा है? कि जैनधर्म आवे और "अहिंसा परमोधर्मः" का पाठ सिखाकर अहिंसक बनावे।

जैन संघ जगत् का है मात्र गुजरात का नहीं मात्र भारतवर्ष का नहीं।

श्रीमान् कविवर श्री० पं० रामचरितजी उपाध्याय गाज़ीपुर।

(१) जैनधर्म अत्यन्त प्राचीन धर्म है।

(२) जैनधर्म के अवतार श्री ऋषभदेव आदि अति प्राचीन समय में हो चुके है।

(३) जैन-अहिंसा दयामय होती हुई निःस्वार्थ की उज्ज्वल प्रतिमा है। वह स्वच्छ स्वच्छन्द है। और सर्व

सामयिक है, इसलिये जैनधर्म प्रतिपादित अहिंसा सर्वोत्कृष्ट है।

(४) जैसे सूर्य का प्रकाश या वायु का संचार अथवा आकाश का अस्तित्व सार्वभौमिक है, उसी प्रकार अहिंसा-धर्म भी सार्वभौमिक धर्म है।

(५) जैनधर्म की अहिंसा का पूर्ण रूप से प्रचार न होने के कारण ही जनता निर्बल निर्धन होती जा रही है और वह पराधीनता के बन्धन से जकड़ी जा रही है। कल्पना कीजिये कि यदि जैनधर्म की अहिंसा नीति का पालन समूचय संसार करने लग जाय तो क्या परिणाम होगा ? कोई भी किसी के स्वत्व का अपहरण नहीं करेगा। कहीं भी किसी के साथ किसी को युद्ध करने की आवश्यकता न रह जायगी। सर्वदा सर्वत्र सत्युग की स्थापना हो जायगी। सबके साथ सब किसी का सद्व्यवहार होने लगेगा। ईर्षा, द्रोह, कपट इत्यादि आत्म-नाशक दुर्गुणों की नामावली को कोश में रखने की आवश्यकता नहीं रह जायगी।

(६) जब तक अहिंसा का सूर्य पूर्ण रूप से भारत में उदित था; तब तक अनेक चक्रवर्ती भूपों ने अहिंसा का पालन करते हुए भी चिरकाल तक अखण्ड राज्य किया।

(७) यदि अहिंसा धर्म को देश मानता होता तो परस्पर द्वेषाग्नि न फैली होती, और न विदेशी विधर्मियों का यहां शासन ही जमता।

(८) इतिहासों के पढ़न से तो यही बात सिद्ध होती है कि जैन वीरों ने देश हित के लिये अनेक वार संग्राम किया है और शत्रुओं को पराजित किया है।

(९) जैन धर्म शास्त्रों में ऐसा विधान कहीं भी नहीं मिल सकता कि अपराधी को दण्ड न देकर पुरस्कार दिया जाय।

(१०) संसार में सच्चे अहिंसक केवल जैन हैं। बौद्ध भी जैनों की श्रेणी में नहीं आ सकते।

लेखक—एडवोकेट ए० सी० वोस देहली।

(१) जैन दर्शन प्राचीन है। इसकी आदि नहीं, जैसे इस जगत् की आदि नहीं है।

(२) हिन्दुओं के पुराने नेताओं ने बड़ी इज्जत से जैनाचार्यों का नाम लिया है।

(३) जैनियों ने जीवों के एकेन्द्रिय आदि भेद ऐसे किये हैं जहां वर्तमान सायंस भी नहीं पहुँचा है।

(४) जैन तत्व ज्ञान बड़ा जबरदस्त है।

(५) सम्यग् दर्शन, सम्यग् ज्ञान, सम्यग् चारित्र मोक्ष मार्ग है यही सत्य है।

(६) स्याद्वाद ऐसा बढ़िया सिद्धान्त है कि इसमें असत्य का पता नहीं चलता।

(७) अहिंसा का स्वरूप भी बहुत उचित है।

लेखक—सेठ केदारनाथ साहिब गोयनका।

(१) मैं अजैन हूं मगर जैनधर्म की श्रद्धा मुझे यहां लाई है।

(२) जैन धर्म की ज्योत अखण्ड है रत्नों से भरपूर है यदि आप अपने रत्नों के भण्डार (जैन शास्त्र) खोल दें तो संसार में रोशनी हो जायगी।

(३) मैं समझता हूं, कि जैनियों में वह ज्योति है कि जिससे हम अपने बन्धनों को काट सकें।

(४) जो जैनियों पर यह इलजाम (दोष) लगाते हैं कि उन्होंने अहिंसा धर्म फैला कर हमको कायर बना दिया है वे गलती पर है अहिंसा धर्म वही पाल सकता है जो वीर है। (सं० मोतीलालजी रांका ब्यावर)

पाठ २१—आदर्श गौ-सेवा (राजा करकण्डु)।

चम्पानगरी का राजा करकण्डु नीति और न्याय से राज्य चलाता था। राजा होते हुए भी उसे गौ की सेवा बहुत प्रिय थी। वह गौओं की आबादी से राज्य की

आवादी समझता था। उसने अपने राज्य में गौओं के लिए वहुत से गोकुल वना रखे थे जिससे राज्य भर में दूध, दही और घी की नदियाँ सी वहती थीं। आज गौ-रक्षा के अभाव में इनके वदले गौ के खून और चर्वी की नदियाँ वहाई जा रही है, प्रति दिन लाखों गौएँ कटती हैं।

महाराज करकण्डु प्रति दिन गोकुल में जाते और उनके खान पान, रहने के मकान आदि का निरीक्षण करते थे जिससे गौ आदि पशुओं को सर्व प्रकार का सुख रहता था। एक दिन उन्होंने एक छोटा सा वछड़ा देखा। उसका शरीर वहुत ही सफेद, सुकोमल और सुन्दर था। राजा ने ग्वाले को आज्ञा दी कि इस वछड़े को घास के स्थान में भी दूध ही दिया जाय। नित्य दूध ही दिया जाने लगा और इससे वह वछड़ा वड़ा हृष्ट पुष्ट हो गया। उसकी सुन्दरता भी खूब बढ़ने लगी। समय पाकर वह वछड़ा वृद्ध वृषभ भी हो गया। अब दिनोंदिन उसकी शोभा और वल घटने लगे। अन्त में वह विलकुल जीर्ण हो गया जिससे न तो उसमें क्रान्ति रही, न वल। यह देख कर करकण्डु ने विचारा 'अरे जैसी दशा इस वैल की हुई है वैसी ही मेरी होगी। धन्य गौ के पूत ! तूने मुझे अच्छा उपदेश दिया। मेरा शरीर भी दिन

प्रति दिन जीर्ण हो रहा है। इस शरीर से धर्म की आराधना करनी चाहिये।"

ऐसा शुभ विचार करने से उन्हें जाति-स्मरण ज्ञान हुआ। उन्होंने दीक्षा ले ली और संयम पाल कर मोक्ष में पधारे।

प्यारे वीर पुत्रो! पूर्व में राजाओं को भी गौएँ पालने का शौक था और वे गौओं की आबादी में राज्य की आबादी मानते थे। आपको गौओं की रक्षा करनी चाहिये। बाजारू दूध, दही और घी खाने से आज कल की प्रजा गौ-रक्षा में पिछड़ गई है। इससे भारत दिन प्रति दिन निर्धन बन रहा है। जब भारत में पुनः गौ-रक्षा होगी तभी भारत समृद्धिशाली और आबाद हो सकेगा।

पाठ ३०—सादगी से मोक्ष (भरत चक्रवर्ती)।

श्री ऋषभदेव स्वामी के बड़े पुत्र का नाम भरत था। आपकी राजधानी अयोध्या में थी। आप छः खण्ड के मालिक थे। आपके पास चौदह रत्न, नव निधान चौरासी लाख हाथी, चौरासी लाख घोड़े और छियानवे करोड़ ल सैनिक थे। आपकी आज्ञा में बत्तीस हजार राजा थे और छियानवें करोड़ गाँवों के मालिक थे।

एक समय प्रातः काल में स्नान करके एवं वस्त्राभूषण धारण करके महाराजा भरत आरिसा भवन में गए। वहां एक उँगली में से अंगूठी गिर गई। विना अंगूठी के उंगली भद्दी दिखने लगी। तब आपने विचार किया कि यह सब शोभा आभूषण की दिख रही है; ऐसे मिथ्या मोह में मुझे क्यों मुग्ध होना चाहिये। ऐसा सोच कर आपने दूसरी उंगलियों से अंगूठियां निकालना आरम्भ किया इससे हाथ विशेष भद्दा दीखने लगा। फिर आपने सब वस्त्र और आभूषण उतार दिए। इससे आपको ज्ञान हुआ कि सब शोभा वस्त्राभूषण की है। शरीर तो असार है। ऐसा विचार करते २ आप शरीर की अनित्यता का चिन्तवन करने लगे और शुक्ल ध्यान की श्रेणी तक चढ़ गए जिससे आपके घन घाती कर्म क्षय हो गए तथा आप केवलज्ञानी मुनि बन गए। आपके साथ दश हजार राजाओं ने भी दीक्षा ली और सबने आत्म कल्याण किया।

प्यारे विद्यार्थीगण! शरीर अनित्य है। इसमें हाड, मांस और लोहू भरे हैं। इससे धर्म आराधन करना चाहिये। बहुत से अज्ञानी मनुष्य शरीर को सजाने ही में अपना दिन पूर्ण करते हैं, वृद्धावस्था में दाँत गिर जाने पर वे पत्थर के टुकड़ों की बत्तीसी लगाते हैं और

बाल सफेद पड़ जाने पर काला खिजाब करते हैं। यह कितना अज्ञान है ? कुदरत के सिद्धान्तों का भी यह खून करके ये अपने शरीर की शोभा बढ़ाना चाहते हैं। ऐसे अज्ञानी मनुष्य अपनी आत्मा को अजर अमर मानते हैं और चटकीले मटकीले वस्त्राभूषण पहिन कर और अकस्मात् काल के ग्रास बनकर बेचारे दुर्गति में जाते हैं तथा वहां पर अपने पापों के लिए पश्चाताप करते हैं। सादगी ही सच्ची शोभा है कि जो आत्मा का भान कराती है। भरत महाराज यदि गिरी हुई अंगूठी को पीछी अंगुली में डाल देते तो उन्हें ऐसा ज्ञान कैसे हो सकता था। इसलिए सादगी ही परम कल्याणकारी है।

पाठ ३१—आप बीती (कपिल केवली)।

कौशंबी नगरी में कपिल नाम का एक ब्राह्मण का लड़का रहता था। उसके पिता का देहान्त हो गया था। उसकी माता ने उसे श्रावस्ति नगरी में पढ़ने के लिए भेज दिया वहाँ पढ़कर वह होशियार हो गया।

एक बार राजा को आशिर्वाद देने के निमित्त जाते हुए सिपाहियों ने उसे प्रातः काल बहुत जल्दी देखा। उन्होंने उसे चोर समझा और पकड़ लिया। राजा के पास ह चोर रूप में लाया गया। उसने राजा को सब बात

सच सच कहदी जिससे राजा उस पर बड़ा प्रसन्न हुआ और उसे जितना चाहे उतना धन माँग लेने को कहा।

कपिल बड़ा चतुर था। वह बगीचे में गया और विचारने लगा कि अधिक से अधिक क्या प्राप्त करना चाहिये। सौ, फिर हजार, फिर लाख, फिर करोड़ सोना मोहरें माँगने का विचार किया और आकांक्षा का अन्त न आते देखकर उसकी ज्ञानी आत्मा ने अन्त में विचारा— 'अरे इस लोभ का तो कोई पार ही नहीं। हाय ? लोभ बड़ी बुरी चीज है !। ऐसा विचारते विचारते उसे जाति-स्मरण ज्ञान हुआ जिससे उसने दीक्षा ले ली। मुनि कपिल ने उग्र तपश्चर्या की जिससे उन्हें केवल ज्ञान हुआ।

आप एक समय राज-गृहि नगरी की तरफ जा रहे थे। राह में १८ योजन का एक भयंकर जंगल आया। उसमें ५०० चोर रहते थे। उन्होंने आपको पकड़ लिया और आपको गाना सुनाने के लिए कहा। तब आपने अपनी आप बीती व उपदेश सुनाया जिससे उन चोरों को भी वैराग्य उत्पन्न हो गया और उन्होंने भी दीक्षा लेकर आत्म कल्याण किया।

प्यारे वीर बालको ! लोभ करना बहुत बुरा है। सब पापों का बाप लोभ ही है। लोभ ही के वश सब पाप

किए जाते हैं। निर्लोभी अर्थात् संतोषी ही सब पापों को छोड़ सकता है। लोभी मनुष्य खुद पाप में गिरता है और औरों को भी गिराता है। संतोषी मनुष्य आत्म कल्याण कर सकता है और उसकी वाणी में इतना असर होता है कि विश्व मात्र उसकी बात मानने लग जाता है। संतोषी मनुष्य विश्व में सर्व श्रेष्ठ और बादशाहों का बादशाह है। लोभी विश्व में तुच्छ, पामर है। वह गुलामों की तरह अपना जीवन व्यतीत करता है।

पाठ ३२—सादगी में शान्ति (श्री नमिराज)।

मिथिला नगरी में नमिराज राज्य करते थे। इनसे सब शत्रु नम चुके थे इसी से इनका नाम नमिराजजी पड़ा।

एक समय आपको दाह ज्वर हो गया। उस रोग से आपको अत्यन्त पीड़ा होती थी। वैद्यों ने बहुत सा प्रयत्न किया परन्तु आपको आराम न हुआ। अन्त में आप के शरीर पर चंदन का लेपन किया जाने लगा। चंदन घिसने का कार्य महारािणयाँ खुद करती थी। घिसते समय उनके कङ्कणों की जो आवाज होती उससे भी नमिराज को बहुत कष्ट होता था। यह जानकर पट्टरानी ने अपने हाथों से कङ्कण उतार दिए, सिर्फ एक २ चूड़ी रक्खी। दूसरी

रानियों ने भी ऐसा ही किया। इससे नमिराज को शान्ति हुई। अब आपने विचार किया कि आवाज बंध होने से मुझे नींद आ गई। ज्यादा कङ्कण पहिनने से आवाज होती है, एक से आवाज नहीं होती। वैसे ही ज्यादा मनुष्यों के समूह में रहने से भी दुःख होता है और एकान्त में आत्म-भाव रहता है। यह परम सुख है। अन्त में उन्होंने निश्चय किया कि यदि मैं रोग मुक्त हो जाऊँ तो दीक्षा ले लूं ऐसा विचार करने से उसी रात्रि में आपकी बिमारी मिट गई। कारण यह है कि शुभ भावना से रोग शोक भय आदि सकल दुःख नष्ट हो जाते हैं। रोग नष्ट होने पर आप धर्म चिन्तवन करने लगे। इससे आपको जाति स्मरण ज्ञान हुआ और आपने तुरन्त ही दीक्षा ले ली। आपके संयम की परीक्षा करन को स्वयं इन्द्र आए। इन्द्र ने आपसे अनुकूल प्रतिकूल बहुत से प्रश्न पूछे और आपने उनका यथार्थ उत्तर दिया, फिर भी आप अपने संयम में दृढ़ रहे। अन्त में नमस्कार व स्तुति कर इन्द्र स्वस्थान चले गए।

प्यारे वीर पुत्रो! आज के पाठ में सादगी की शिक्षा ठोंस ठोंस कर भरी हुई है। राज्य में दास दासियों की कमी नहीं थी तो भी पटरानियाँ चन्दन अपने हाथ से

घिसती थीं। हाथ से चन्दन घिसने में रानियों की सादगी और भक्ति झलक रही है। ज्यादा आभूषण पहिनने से कुछ लाभ तो होता ही नहीं है, उलटा हाथों में मैल जम जाता है और रोग होता है रोग होने के समय महाराज नमिराज ने और अनाथी महाराज ने दवाई लेना निरर्थक समझ कर धर्म पालन करने का संकल्प किया जिससे उनको आराम हो गया। आजकल तो अमेरिका के डाक्टरों का मत है कि जितने लोग दुष्काल में नहीं मरते हैं उनसे ज्यादा दवाइयों से मरते हैं। सब से बड़ा डाक्टर वही है जो रोगी को, दवाई न देकर उपवास करावे। आजकल लोग संकट आने पर भैरव भवानी आदि मिथ्या देवों की मानता करते हैं। पहिले के लोग ऐसा नहीं करते थे। वे धर्म की आराधना करने की प्रतिज्ञा लेते थे और उनका रोग नष्ट हो जाता था। —— ——

पाठ ३२—पूणिया श्रावकजी।

श्री महावीर प्रभु के समय में पूणिया नाम के एक श्रावक हो गए हैं। रूई की पूणियां बना कर कातने वालों को बहुत सस्ती बेचने से उनको सब लोग पूणिया श्रावक कहने लगे। उस जमाने में रूई कातकर खादी बनाई जाती थी और सब संसार खादी ही पहिनता था।

पूणिया श्रावक पहिले बड़े धनवान थे। जिस दिन महावीर प्रभु ने उपदेश दिया कि धन का मोह और ऐश आराम जीव के लिए दुःख वर्धक है उस दिन से सब सम्पात्ति विद्या प्रचार, समाज सुधार और धर्म प्रचार में देकर आपने अपने निर्वाह के लिए यह धंधा शुरू किया।

मनुष्य मात्र को स्वावलम्बी होना चाहिये, कारण पत्ती और पशु भी अपना चुग्गा चारा अपनी निजी महनत से प्राप्त करते हैं। जिस देश के मनुष्य दूसरों की बनावट की चीजें बापरते हैं वह देश दरिद्री हो जाता है। भारत की आज ठीक यही दशा है।

पूणिया श्रावकजी ने जो पूंजी रक्खी थी उसको न बढ़ाने का नियम ले रक्खा था और आ र नहीं बढ़ाते थे।

जैन धर्म के आनन्द, कामदेव आदि प्रायः सभी श्रावकों का नियम था कि जो धन उनके पास था उसके सिवाय जो बढ़ जाता उसको उत्तम कामों में खर्च कर देते परन्तु अपने पास नहीं रखते। यह बात धर्म शास्त्रों के देखने से मालूम होती है।

आज लोग धन बढ़ाने की तृष्णा से ही अन्याय, अनीति, झूठ, कपट आदि करते हैं इसी से दुःख बढ़ रहे हैं। सुखी होने के लिये मनुष्य को नीतिमय परिश्रमी,

सादा व संयमी जीवन विताना चाहिये। सुशिक्षा व सत्संग से मनुष्य सुधर सकता है।

पूणिया श्रावकजी बड़े उदार व तपस्वी थे। अपनी आय में से आधी रकम हमेशा सत्कार्य में लगाते थे दोनों पति पत्नी निरन्तर एकान्तर उपवास करके भी उत्तम श्रावक, विद्यार्थी या अन्य सुपात्र को भोजन दान, विद्या-दान या अन्य उत्तम सहायता के रूप में आधी आय कम से कम देकर पारणा करते थे।

वे बड़े सत्यवादी थे। सुबह सामायिक व ज्ञान ध्यान करके दुपहर को दूकान खोलते। लोग इनकी ईमानदारी तथा प्रिय और नम्र वचनों के कारण उसी समय पूणियां लेने को आते। चार आना मिलने पर वे उसी दम दूकान बंध कर देते। और सारा दिन उत्तम कामों में व्यतीत करते। यह बात बिलकुल सत्य है कि सत्यवादी ईमानदार व्यापारी के ही ग्राहक जमते हैं।

पूणिया श्रावकजी परम पवित्र श्रावक धर्म का पालन करके उत्तम देवगति में पधारे। वहां से मनुष्य होकर मोक्ष गति प्राप्त करेंगे।

प्यारे बालको ! आपको भी पूणिया श्रावक सरीखा पवित्र जीवन विताना चाहिये।

नव तत्त्व का सामान्य स्वरूप

पाठ ३३—जीव तत्त्व।

जीव के मुख्य दो भेद हैं-(१) संसारी, (२) सिद्ध। जो शरीरधारी हों, तथा राग, द्वेष, मोह से जन्म, मरणादि दुःख भोगें उन्हें संसारी कहते हैं। जिन्हें राग, द्वेष, मोह का नाश करके जन्म-मरणादि दुःखों का नाश किया है, तथा जो शरीर रहित हो गये हैं, उन्हें सिद्ध कहते हैं।

संसारी जीव के मुख्य दो भेद हैं-(१) त्रस जीव जो इच्छापूर्वक हलन चलन करसकता है। (२) स्थावर जीव जो इच्छानुसार हलन चलन क्रिया नहीं कर सकता है।

संसारी जीवों के विस्तार से चौदह भेद तथा ५६३ प्रभेद होते हैं।

चउदह भेद—

(१) सूक्ष्म एकेन्द्रिय, (२) बादुर एकेन्द्रिय, (३) बेन्द्रिय, (४) तेन्द्रिय, (५) चतुरिन्द्रिय, (६) असंज्ञि पंचेन्द्रिय, (७) संज्ञि पंचेन्द्रिय।

ये सात तरह के जीव पर्य्याप्त और अपर्य्याप्त होते हैं, इस लिये सात पर्य्याप्त और सात अपर्य्याप्त मिलकर चउदह हुए ।

नाना विध संसार में, सहते प्राणी कष्ट ।
बनो सिद्ध सब दुःख मिटे, सकल कर्म कर नष्ट ॥

पाठ ३४—अजीव तत्व ।

अजीव के मुख्य दो भेद हैं–(१) अरूपी अजीव, (२) रूपी अजीव । विस्तार से अजीव के चउदह भेद होते हैं तथा ५६० प्रभेद होते हैं ।

चउदह भेद–

(१) धर्मास्ति काय, (२) अधर्मास्ति काय, (३) आकाशास्ति काय, इन तीनों के स्कंध (सम्पूर्ण वस्तु), देश (छोटा हिस्सा) और प्रदेश (सब से छोटा हिस्सा) ये तीन भेद करने से नव हुए । (१०) काल द्रव्य । ये दश तो अरूपी अजीव के भेद हैं । रूपी अजीव 'पुद्गल' के चार भेद हैं–(१) स्कन्ध, (२) देश, (३) प्रदेश और (४) परमाणु पुद्गल (जिसके दो भाग नहीं होसकते ऐसा अणु) ये चार रूपी अजीव के हैं । ये कुल मिलकर चउदह हुए ।

चेतन रहित अजीव है, हम हैं चेतन प्राण[1] ।
इस अजीव के जाल से, करिये अपना त्राण[2] ॥

पाठ ३५—पुण्य तत्व ।

अच्छे काम जो सुख देने वाले हों उन्हें पुण्य कहते हैं, उसके नव भेद हैं—

(१) अन्न दान देने को अन्न पुण्य कहते हैं ।

(२) जल दान देने को पान पुण्य कहते हैं ।

(३) मकान दान देने को लयन पुण्य कहते हैं ।

(४) बिछौनादि दान देने को शयन पुण्य कहते हैं ।

(५) वस्त्र दान देने को वस्थ पुण्य कहते हैं ।

(६) किसी की भलाई के लिये मन से विचार करने को मन पुण्य कहते हैं ।

(७) मीठे हितकर वचन बोलने को वचन पुण्य कहते हैं ।

(८) सेवा भक्ति करना उसे काय पुण्य कहते हैं ।

(९) नमस्कार करना उसे नमस्कार पुण्य कहते हैं ।

विनय भक्ति मीठे वचन, तन मन धन का दान ।
पुण्य यही ससार मे, सुख का कारण जान ॥

---

१ चेतन प्राण वाले, निश्चय से ज्ञान दर्शन ही जीव के प्राण हैं ।

२ रक्षा ।

पाठ ३६—अठारह पाप व धर्म स्थानक।

(१) हिंसा–किसी का भी दिल दुखाना। अहिंसा–किसी का जी नहीं दुखाना।

(२) झूठ–असत्य, अप्रिय या अहितकारी बोलना। सत्य–सत्य, प्रिय और हितकारी बोलना।

(३) चोरी–अनीति से कोई भी चीज प्राप्त करना। ईमानदारी–नीति और न्याय से कोई भी आवश्यक वस्तु प्राप्त करना।

(४) मैथुन–गुप्त अंग से कुचेष्टा करना। ब्रह्मचर्य-गुप्त अंगों का संयम रखना।

(५) परिग्रह–किसी भी चीज पर मोह रखना। अपरिग्रह–किसी भी चीज पर मोह (ममत्व) न रखना।

(६) क्रोध–प्रतिकूलता में अरुचि। क्षमा–प्रतिकूलता में धैर्य्य।

(७) मान–खुद को बड़ा समझना। नम्रता–खुद को छोटा मानना।

(८) माया–भूल को छिपाना–कपट करना। सरलता–भूल को तत्काल मंजूर करना-साफ दिल रखना।

(९) लोभ–जरूरत से ज्यादा इच्छा करना। संतोष–जरूरत का भी घटाना।

(१०) राग–अनुकूल संयोगों में हर्ष आना। वैराग्य–अनुकूल वस्तू का भी त्याग करना।

(११) द्वेष–प्रतिकूलता में शोक करना। प्रेम–सब जीवों को अपना भाई समझना।

(१२) कलह–शांति का भंग करना। एकता–सब की शक्ति को एकत्रित करना।

(१३) अभ्याख्यान–बिना विचारे बोलना। किसी को दोषी कहना। विवेक वचन–विचार पूर्वक बोलना, दोषी को एकान्त में मीठे वचनों से समझाना।

(१४) पैशुन्य या चुगली–किसी को नुकसान पहुंचाने को उसके दोष कहना चुगली करना। सिफारिश–किसी का भला करने के लिये उसके गुण बोलना।

(१५) परपरिवाद–किसी के पीछे दुर्गुण बोलना निन्दा करना। गुणानुवाद--सद्गुण बोलना।

(१६) रति–इष्ट में खुशी, अरति–अनिष्ट में दुखी। उदासीनता–सुख दुख में समभाव।

(१७) माया मोसो–कपट सहित झूठ अर्थात् जान कर झूठ बोलना। शुद्ध सत्य-भय को छोड़ यथार्थ वर्तना।

(१८) मिथ्यात्व–परवस्तु, शरीर, धन, भोगादि को अपने मानना। समकित-सच्ची मान्यता, शरीरादि को भिन्न मानकर अविकारी अनन्त ज्ञानादि गुण युक्त शुद्ध आत्मा का अनुभव करना।

पाठ ३७—आश्रव तत्त्व ।

मिथ्यात्व, योग और कषाय के निमित्त से ज्ञानावरणादि कर्मों का आना आश्रव है, उसके नाना अपेक्षा से ५-२० तथा ४२ भेद प्रभेद होते हैं ।

(१) मिथ्यात्व-असत्य देव, गुरु और धर्म को सत्य मानना तथा यथार्थ तत्व का निश्चय (श्रद्धा) न होना ।

(२) अविरति-पांच इन्द्रिय और मन को वश में न रखना और छः काय के जीवों की हिंसा करना अविराति है। हिंसादिक पांच पापों को भी अविरति कहते हैं ।

(३) प्रमाद-धर्म कार्य में आलस्य करना ।

(४) कषाय-क्रोध, मान, माया और लोभ करना ।

(५) अशुभयोग-मन वचन काया से पाप कर्म करना।

सब दुःखों की जड़ यही, आश्रव नामक तत्त्व ।
सत्त्व[1] रहित इसने किये, जग के सारे सत्व[2] ॥

पाठ ३८—संवर तत्त्व ।

योग और कषाय का संयम कर के आते हुए कर्मों का रुकना यही संवर है, इसके ५-२० तथा ५७ भेद प्रभेद हैं।

---

१ नि:सार ।   २ प्राणी ।

(१) सम्यक्त्व—यथार्थ तत्त्व श्रद्धा का होना।

(२) व्रतपच्चक्खाण—सब पापों का त्याग होना।

(३) अप्रमाद—मद, विषय, कषाय, निद्रा और विकथा इन पांच प्रकार के प्रमादों का त्याग करना।

(४) अकषाय—कषाय रहित होना।

(५) योगसंवर—मन, वचन और काया को संयम में रखना।

आते हैं दल बांधकर, ये दुख दायी कर्म।
इन द्वारों को रोक दो, लेकर संवर धर्म॥

पाठ ३१—निर्जरातत्त्व (बारह तप)।

कुछ अंश से पाप कर्मों का नाश करे वह निर्जरा।

(१) अनशन—उपवास करने को कहते हैं।

(२) उणोदरी—भूख से कम खाने को कहते हैं।

(३) वृत्तिसंक्षेप—खाने की इच्छा को रोकने को कहते हैं।

(४) रसपरित्याग—स्वादिष्ट भोजन छोड़ने को कहते हैं।

(५) कायक्लेश—शारीरिक कष्टों के सहन करने को कहते हैं।

(६) प्रति संलीनता—इन्द्रियों के वश करने को कहते हैं।

(७) प्रायश्चित्—पाप (अपराधों) का दण्ड लेने को कहते हैं।

(८) विनय—नम्रता गुण धारण करने को कहते हैं।

(९) वैयावच्च—दूसरों की सेवा भक्ति को कहते हैं।
(१०) सज्झाय—पढ़ना पढ़ाना आदि को कहते हैं।
(११) ध्यान—सब तरफ से चित्त वृत्तियों को हटाकर एक तरफ मन को लगाने को कहते हैं।
(१२) कायोत्सर्ग—मन वचन और काया को स्थिर रखना है।

कहलाती है निर्जरा, आंशिक कर्म विकाश।
तप कर कर[1] गह[2] निर्जरा, टूटे यह दुख पाश[3]॥

पाठ ४०—बंध तत्त्व

जीव कर्म के एक मय हो जाने को बंध कहते हैं, उसके चार भेद हैं।

(१) प्रकृति बन्ध—कर्मों में आत्मा के गुणों के घातने का स्वभाव पड़जाना प्रकृति बंध है। जैसे जो कर्म जीव के ज्ञान गुण को ढाँके वह ज्ञाना वरण है। (मूल कर्म प्रकृति ८ विशेष १४८ तथा १५८ हैं)।

(२) स्थिति बंध—कर्मों में आत्मा के साथ रहने की अवधि (मियाद) पड़ना। अमुक काल तक आत्मा से बंधे रहना।

(१) हाथ। (२) ग्रहण कर। (३) बन्धन।

(३) अनुभाग बंध—फल देने की शक्ति की न्यूनाधिकता का होना ही अनुभाग बंध है।

(४) प्रदेश बन्ध—बँधनेवाले कर्मों की संख्या के निर्णय (प्रदेश के पुंज) को प्रदेश बंध कहते हैं। (कर्म पुंज समूह) प्रकृति और प्रदेश बंध, मन वचन और काया की प्रकृति से होता है। स्थिति तथा अनुभाग बंध राग द्वेषादि कषायासे होता है।

जीव विशुद्ध स्वतंत्र है, किया बंध ने रुद्ध।
बंध तोड़कर जीव को, करो स्वतंत्र विशुद्ध॥

पाठ ४१—मोक्ष तत्त्व।

सकल कर्मों के क्षय होने को मोक्ष कहते हैं। उसकी प्राप्ति के चार उपाय हैं।

(१) सम्यक् ज्ञान—नवतत्त्वों का अनुभव ज्ञान करके हिताहित का जानना।

(२) सम्यक् दर्शन—आत्मा के शुद्ध स्वरूप का निश्चय, यथार्थ तत्त्व श्रद्धा।

(३) सम्यक् चारित्र—ज्ञान पूर्वक आचरण अर्थात् क्रोधादि कषायों का रोकना।

(४) सम्यक् तप—निर्वांछिक बनना अर्थात् इच्छाओं का रोकना तप है। जिन क्रियाओं के करने से इच्छाएँ रुकती हैं उन्हें भी तप कहते हैं।

सम्यग्दर्शन ज्ञान तप, और विमल चारित्र।
करते कर्म विनाश हैं, होता जीव पवित्र॥

पाठ ४२—प्रमाद पाँच

(१) मद—जाति, कुल, बल, रूप, तप, शास्त्र, लाभ और ऐश्वर्य का गर्व करना।

(२) विषय—पांच इन्द्रियों के २३ विषयों में लीन होना।

(३) कषाय—क्रोध, मान, माया और लोभ करना।

(४) निद्रा—नींद।

(५) विकथा—पाप की बातें करना या फ़ज़ूल बातें करना।

दुर्लभ मानव तन मिला, करो न कभी प्रमाद।
जीवन यदि योंही गया, होगा परम विषाद॥

पाठ ४३—कषाय सोलह

४ अनन्तानुबन्धी—क्रोध, मान, माया और लोभ आधिक मरण तक रहे।

४ अप्रत्याख्यानी—क्रोध, मान, माया और लोभ बारहमास तक रहे ।

४ प्रत्याख्यानी— क्रोध, मान, माया और लोभ चार मास तक रहे ।

४ संज्वलन—क्रोध, मान, माया और लोभ अधिक से अधिक १५ दिन तक रहे ।

निज परिणति निर्मल करो, करो न कभी कषाय ।
छोड़ो लम्बी वासना, जो दुर्गति लेजाय ॥

पाठ २४—नो कषाय ।

(१) हास्य—मजाक करना ।

(२) रति—खुश होना ।

(३) अरति—नाराज होना ।

(४) भय—डर लगना ।

(५) शोक—संयोग वियोग में दिलगीर होना ।

(६) जुगुप्सा—अरुचिकर वस्तु को देखकर तिरस्कार घृणा करना ।

(७) स्त्रीवेद—पुरुष के समागम की इच्छा [illegible]

(८) पुरुषवेद—स्त्री के समागम की इच्छा

(६) नपुंसकवेद—स्त्री और पुरुष दोनों के समागम की इच्छा करना * व हस्त दोष, शिशु-मैथुनादि करना।

हास्य अरति रति शोक भय, और जुगुप्सा वेद।
यों तो पाप सभी मगर, वेद नरक का भेद॥

पाठ ४५—कौनसा कषाय चोक किसको होवे।

(१) धन भोगादि को ही अपनी वस्तु माने उसे अनन्तानु बन्धी मिथ्यात्व।

(२) धन भोगादि को झूठे जानता हुआ त्याग न कर सके उसको अप्रत्याख्यानी समदृष्टि।

(३) धन भोगादि का बहुत त्यागकर अल्प भी पश्चाताप युक्त रखे वह प्रत्याख्यानी (श्रावक)

(४) धन भोगादि सर्वथा छोड़े, जिसको केवल धर्म राग हो वह संज्वलन कषायी (साधु)

(५) सर्वथा राग द्वेष कषाय का नाश किया हो वे अकषायी अर्थात् अरिहंतदेव।

---

* शिक्षकवर्ग इससे होने वाले शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक सभी भयंकर हानियों को निःसंकोच छात्रों को समझावें, यदि बन सके 'विद्यार्थी व युवकों से' इसी कार्यालय की पुस्तके पढ़कर सुनावें।

पाठ ४६—कषाय से गति।

(१) अनन्तानुबन्धी से प्रायः नरक गति मिलती है।

(२) आत्मबोध (निश्चय समकित) बिना अप्रत्याख्यानी से प्रायःतिर्यंच गति मिलती है।

(३) प्रत्याख्यानी से प्रायः मनुष्य गति मिलती है।

(४) संज्वलन से प्रायः देवगति प्राप्त होती है।

(५) अकषाय से मोक्ष प्राप्त होता है।

सारः—

इस प्रकार कषाय का स्वरूप व फल का ज्ञान करके क्रोध, मान, कपट, लोभ, राग द्वेष रूप कषाय को अनन्त अपार दुःखदाता जानकर त्याग करना चाहिये।

पाठ ४७—कषायों के नाश के उपाय।

(१) क्षमा से क्रोध का नाश होता है।

(२) विनय से मान का नाश होता है।

(३) सरलता से कपट नष्ट होता है।

(४) संतोष व त्याग से (दान से) लोभ का नाश होता है।

(५) समभाव से राग द्वेष नष्ट होते हैं।

(क्रोधादि का नाश करके क्षमादि प्रकट होने की भावना का चिंतवन करना चाहिये)

क्षमा विनय ऋजुता[1] तथा, पात्रादिक को दान।
समता से होता तथा, क्रोधादिक अवसान[2] ॥

पाठ ४८—चार गति में जाने के कारण।

नरक गति मे जाने के मुख्य चार कारण हैं।

(१) बहुत पाप करना (२) धनादि पर बहुत ममता रखना (३) मनुष्य, पशु आदि को बहुत दुःख देना (४) मद, शराब, मांस आदि को काम में लाना।

तिर्यंच गति में जाने के मुख्य चार कारण।

(१) कषाय-क्रोध, मान, माया और लोभ बहुत करना। (२) बहुत कपट करना। (३) बहुत झूठ बोलना। (४) खोटा तोल माप और खोटे हिसाब में लेन देन करना।

मनुष्य गति में जाने के मुख्य चार कारण।

(१) क्रोध मान माया और लोभ कम करना। (२) स्वभाव से ही विनयी होना। (३) दयालु हृदय होना। (४) ईर्ष्या, द्वेष करके रहित होना।

---

१ सरलता। २ अन्त।

देवगति में जाने के मुख्य चार कारण हैं।

(१) साधुजी के पंच महाव्रत शुद्ध पालने से बहुत बड़ा देव होवे। (२) श्रावक के बारह व्रत शुद्ध पाले तो बड़ा देव होवे। (३) समकित के बिना ही पापों को घटा कर खूब तप करना। (४) अनिच्छा से बहुत दुःख भोगे तो छोटा देव होवे।

मिलते अशुभ कषाय से, पशु नारक दुःख भोग।
मन्दकषाय व्रतादि से, सुर नर गति सुख भोग॥

पाठ ४१—सुनो सब महावीर सन्देश।

मनुज मात्र को तुम अपनाओ, हर सब के दुख क्लेश।
असद्भाव रक्खो न किसी से, हो अरि क्यों न विशेष॥
यही है महावीर सन्देश॥ १॥

वैरी का उद्धार श्रेष्ठ है, कीजे सविधि विशेष।
वैर छुटे, उपजे मति जिससे, वही यत्न यत्नेश॥
यही है महावीर सन्देश॥ २॥

घृणा पाप से हो पापी से, नहीं कभी लवलेश।
भूल सुझाकर प्रेम मार्ग से, करो उसे पुण्येश
यही है महावीर सन्देश॥ ३॥

तज एकान्त–कदाग्रह दुर्गण, बनो उदार विशेष।
रह प्रसन्नचित्त सदा करो, तुम मनन तत्व–उपदेश॥
यही है महावीर सन्देश॥ ४॥
जीतो राग–द्वेष–भय–इन्द्रिय, मोह कषाय अशेष।
धरो धैर्य, सम चित्त रहो औ', सुख–दुख में सविशेष॥
यही है महावीर सन्देश॥ ५॥
'वीर' उपाशक बनो सत्य के, तज मिथ्याऽभिनिवेष।
विपदाओं से मत घबराओ, धरो न कोपावेष॥
यही है महावीर सन्देश॥ ६॥
संज्ञानी–संदृष्टि बनो औ', तजो भाव संक्लेश।
सदाचार पालो दृढ़ होकर, रहे प्रमाद न लेश॥
यही है महावीर सन्देश॥ ७॥
सादा रहन-सहन-भोजन हो, सादा भूषा वेष॥
विश्व, प्रेम जागृत कर उर में, करो कर्म निःशेष॥
यही है महावीर सन्देश॥ ८॥
हो सबका कल्याण भावना, ऐसी रहे हमेश।
दया-लोक सेवा-रत चित हो, और न कुछ आदेश॥
यही है महावीर सन्देश। धन्य यह महावीर सन्देश॥९॥

(वीर)

॥ इति शुभम्॥

ॐ अर्हं

जैन शिक्षा

(पहला भाग-प्रथम खण्ड)

वर्ण परिचय

स्वर

अ आ इ ई उ ऊ

ऋ ए ऐ ओ औ

अं अः

स्वरों की पहचान—

अ, अः, उ, ओ, ऐ, औ, आ,

ई, ऊ, अं, इ, ए, ऋ ।

स्वरों का जोड़ना—

आई, आए, आओ ।



व्यञ्जन—

क ख ग घ ङ

च छ ज झ ञ

ट ठ ड ढ ण

त थ द ध न

प फ ब भ म

य र ल व

स्वरों की पहचान—

अ, अः, उ, ओ, ऐ, औ, आ,

ई, ऊ, अ, इ, ए, ऋ ।

स्वरों का जोड़ना—

आई, आए, आओ ।



व्यञ्जन—

क ख ग घ ङ

च छ ज झ ञ

ट ठ ड ढ ण

त थ द ध न

प फ ब भ म

य र ल व

श ष स ह ।

क्ष त्र ज्ञ

नोटः—(१)—अ की जगह 'अ' झ की जगह 'झ' और ण की जगह 'ण' भी लिखा जाता है ।

(२)—क़ ख़ ग़ ड़ ढ़ ज़ फ़, इस तरह नीचे बिन्दी लगा देने से इनका उच्चारण बदल जाता है । इन्हें फ़ारसी अक्षर कहते हैं ।

(३)—क्ष, त्र, ज्ञ, ये संयुक्त अक्षर हैं, पर कोई कोई इन्हें अलग व्यंजनों में ही गिनते हैं ।

व्यञ्जनों की पहचान

ग, म, भ, झ, र, रण, स, न, त, ल,
व, ब, क, ख, च, प, ष, फ, ट, द, ठ,
ढ, ड, ङ, ड़, ह, घ, ध, छ, य, थ,
ज, ज्ञ, ञ, त्र, श, क्ष, फ़, ज़, ग़, ख़।

स्वरों में व्यञ्जनों का मिलना—

जब स्वरों में व्यञ्जन मिलते हैं तब उनका आकार इस प्रकार होता है—

क् + अ = क
क् + (आ की जगह) ा = का
क् + (इ की जगह) ि = कि
क् + (ई की जगह) ी = की
क् + (उ की जगह) ु = कु
क् + (ऊ की जगह) ू = कू
क् + (ए की जगह) े = के
क् + (ऐ की जगह) ै = कै
क् + (ओ की जगह) ो = को
क् + (औ की जगह) ौ = कौ
क् + (अं की जगह) ं = कं
क् + (अः की जगह) ः = कः

(इसी तरह शिक्षक सब व्यञ्जनों की बारह अक्षरी समझा

ऋ, जब किसी व्यञ्जन के साथ मिलता है तब उसका रूप ृ हो जाता है। जैसेः—कृ। जब र् के साथ उ या ऊ मिलता है तब उसका रूप ऐसा होता है :—

रु रू

अभ्यास (४)

जल। कल। जय। हम। झट। घर। कम। भरत। वटन। नमक। बतक। सबक। सरल। गणधर। झटपट। पनघट। अनपढ़। खटमल। बरतन। कसरत। शरबत।

जप कर। मत लड़। मन वश कर। ऋण मत कर। झट चल। पर धन मत हर। कम मत पढ़। नमन कर। सबक पढ़। सरल बन। समझ कर कह। गरम मत बन। खबर रख। मखमल मत पहन। गणधर भज। झटपट सबक रट। खटपट कर। पनघट पर घट रख।

अभ्यास (२) आ

क् + आ (ा) = का

आम । दाम । काम । दास । पास । खास । दाना । खाना । गाना । चाचा । बाबा । बाजा । मामा । काका । आकाश । दावात । पाताल । तालाब । समता । हजार । बाजार । अज्ञान । पागल । कमला । सागर । लालच । पाठशाला । महाशय । दानशाला । उपकार । नवकार । सामायक । महाराज । भगवान । उपवास ।

दान कर । क्षमा रख । आम चख । काम कर । दास मत बन । दया पाल । तालाब पर जा । चरखा चला । समता धर । बाजार जा । अज्ञान तज । पागल मत बन । खराब जल तज । सामायक कर । पाठशाला जा । नवकार जप । उपकार कर । भगवान का भजन कर । मा बाप का कहना मान ।

अभ्यास (३) इ, ई

क् + इ (ि) = कि

क् + ई (ी) = की

शिक्षा । पिता । हित । सीता । हाथी । काकी । वीर । खीर । भाई । लाठी । जीभ । पीठ । कबाई विहार । किताब । चारित्र । कीमत । जीब । जीवन । मटकी । रविवार । नमिनाथ । समकिती । दीपावली । महावीर ।

पिताजी । खादी पहिन । सादगी रख । विनय कर । धीरज धर । नीति सीख । पानी छानकर पी । चार गति जान । मिठाई कम खा । ग़रीब का आदर कर । जीजी की सीख मान । अविनीत मत बन । महावीर की जय । बड़ी लाठी । ग़रीब आदमी । सादगी सदा भली । भयभीत जीव बचा । शीलवान बन । सदाचारी सदा भला । अभिमान तज ।

अभ्यास (४) उ, ऊ

क् + उ = कु।

क् + ऊ = कू।

गुण। मुनि। गुरु। शुभ। तुम। सुख। दूध। चूहा। पूड़ी। फूल। कछुआ। अंगुली। कुमार।



युवक। दयालु। सुधार। सपूत। ज़रूर। भूषण। मुनिराज। समुदाय। भरपूर। ज़रूरत। सुकुमार। सुमतिनाथ। राजपूत। सुबाहुकुमार। गजसुकुमाल।

शुभ गुण सीख। सुख का मूल दया। लूटना बुरा। सपूत बन। जीवन सुधार। धूल मत उड़ा। सूरज निकला। सुख दुःख समान समझ। गुरुजी का कहना मान। दुखी पर करुणा कर। भूत का डर मत मान। बुराई मत कर। गजसुकुमाल की तरह क्षमावान रह। मुनिराज की बात मान। मुलायम मत बन। डुगडुगी बजा। गुरुकुल जा। भरपूर मिहनत कर। सूरज उगा। अमरूद चख। कबूतर उड़ा।

अभ्यास (५) ए, ऐ

क् + ए (े) = के

क् + ऐ (ै) = कै

केला । पेड़ । खेत । मेरा । देश । केश । पेट । देख । कैसा । पैसा । भैया । पैर । बैर । है । जैन । गैया । केवली । कलेजा । चेतन । नेवला । जलेबी । वैभव । पैजना । तैरना । कैलाश । भैरव । उपदेश । परदेश । मेघरथ । रेलगाड़ी । खेलवाड़ । तेतालीस । पैदायश । जैनशाला । ऐरावत । बैलगाड़ी । नैयायिक ।

खेत साफ कर । मेरा देश भारत है । केश काला है । करे सेवा पावे मेवा । पेट मत फुला । पैसा कैसा है । मैला मत रह । देख कर पैर रख । जैन जीतता है । वैर भूल जा । केशर पीली है । सादे देशी कपड़े पहन । पैजनी मत बजा । पैदल चल । बहादुर सैनिक बन । दैनिक काम मत बिसर । जैनी सच कहता है । बिना पूछे किसी की चीज़ नहीं उठाता । मैला नहीं रहता । आगे देखकर चलता है । भूख से कम खाता है । बीमारी आने पर उपवास करता है ।

अभ्यास (६) ओ, औ

क्+ओ (ो)= को

क्+औ (ौ)= कौ

ढोल। पोल। घोड़ा। चोटी। मोर। कोठा। लोटा। कोट। कौआ। और। हौआ। ठौर। बैठी। गोचरी। कठोर। कटोरा। छोकरा। धोबिन। गोपाल। गौतम। गौरव। कौरव। कचौड़ी। पकौड़ी। कौतुक। सोमरथ। मनोहर दोहराना। बटोरना। कोतवाल। सिरमौर। पौराणिक। चौधराइन। चौरानवे।

सोते मत रहो। रोना बुरा है। गौतम गणधर थे। रोज भला काम करो। गौ का दूध पीओ। लोभ पाप का बाप है। किसी को न सताओ। दान देने से हाथ की शोभा होती है। कठोर वचन बोलकर जी न दुखाओ। मीठा और सच बोलो। घी की कचौड़ी और पकौड़ी खाओ। घोड़ा कैसा दौड़ता है। कौआ आसमान में उडता है।



अभ्यास (७) अं, अः

क+अं (ं)=कं

क्+अः (ः)=कः

(अर्धचन्द्र (ँ) अर्थात् आधा अनुस्वार । अनुस्वार, अर्धचन्द्र और विसर्ग किसी भी स्वर से मिले हुए व्यंजन या स्वर के साथ आ सकते हैं । शिक्षक उदाहरण देकर उच्चारण सहित समझा दें ।)

हंस । झंडा । संघ । तंग । गंगा । कंघा । पंखा । संख । चाँद । कहाँ । जहाँ । हँसी । पहुँचा । दुःख । पुनः । अतः । नमः । अंतःकरण । गंभीर । कंजूस । अहिंसा । हिंदी । पंडित । घमंड । बंदर । अड़ंगा । चंदनबाला ।

वंदे वीरं । संतोषी बनो । निंदा मत करो । आँखों में अंजन और दाँतों में मंजन लगाओ । कंकर मत फेंको । दुखियों के दुःख मिटाओ । कंजूस न बनो । पंडित बनकर अहिंसा को फैलाओ । चंदनबालाजी बड़ी सती थीं । बंदर के साथ कलंदर आया । गंदा पानी बुरा होता है । चंदन घिसा जाता है ।

अभ्यास (८)

क् + ऋ (ृ) = कृ

कृपा। ऋण। घृणा। वृथा। तृषा। पितृ। मातृ। जागृति। कृपालु। सृजन। मृणाल। वृषभ। विकृति। आकृति। नृपति। वृंदावन। कृपानिधान। ऋषभनाथ

हे भगवान्, कृपा कर। ऋण लेना बुरा है। किसी से घृणा मत करो। वृथा बकवाद करना छोड़ो। तृषा लगने पर पानी पीओ। देश और जाति को जागृत करो। नृपति रक्षा करता है। ऋषभदेव कृपानिधान हैं। सुन्दर आकृति देखो। वृंदावन मथुरा के पास है। विकृति छोड़ो। यह कैसी मनोहर कृति है।

अभ्यास (९)

मिले हुए अक्षर

अक्षर दो प्रकार के होते हैं—(१) पाई (।) वाले और (२) बिना पाई के।

पाई वाले अक्षर—ख, ग, घ, च, ज, ञ, ण, त, थ, ध, न, प, ब, भ, म, य, ल, व, श, ष, स, क्ष, त्र, ज्ञ।

बिना पाई के अक्षर—क, ङ, झ, ट, ठ, ड, ढ, द, फ, र, ह ।

पाई वाले अक्षर जब दूसरे अक्षर के साथ मिलते हैं तब उनकी पाई (।) मिट जाती है। जैसे:—

आत्मा, अच्छा, सज्जन, ठण्डा ।

बिना पाई के अक्षर जब दूसरे के साथ मिलते हैं तब प्रायः वैसे ही रहते हैं। जैसे—

ठट्ठा, मङ्गल, बुद्धि, मक्खन, वाक्य, वाह्य ।

'र' जब आगे के अक्षर से मिलता है तब वह उसके ऊपर ॅ रूप में लगता है। जैसे—

धर्म, कर्म, मर्म, अर्थ, कार्य ।

'र' जब पहले के अक्षर से मिलता है तब वह नीचे लगता है जैसे—

प्रभु, नम्र, उम्र, ट्रंक, ह्रस्व ।

'श' के साथ र, न, व, च आदि अक्षर मिलने से उसका रूप श्र हो जाता है। जैसे—

श्री, प्रश्न, विश्वास, निश्चय ।

———

जैन शिक्षा

(खण्ड दूसरा)

१—सवेरा।

सवेरा हो गया है। चिड़ियाँ बोलती हैं। बिछौना छोड़ दो। भगवान का नाम याद करो। टट्टी पेशाब मत रोको। टट्टी पेशाब रोकने से रोग होते हैं। साफ़ जगह में जाओ। मा बाप को नमन करो। नमन करने से बहुत लाभ होते हैं।



किताब उठाओ। पाठ बराबर समझो। समझ कर याद करो। केवल रटो मत। जो लोग पाठ समझने में आलस्य करते हैं, वे हानि उठाते हैं। समझने से पाठ तुरंत याद होता है। बिना समझे मेहनत करने पर भी बराबर याद नहीं होता।

२—पाठशाला

रामलाल ठीक समय किताब, पट्टी, पैंसिल, दावात, कलम, लेकर पाठशाला को जाता है। रास्ते में और लड़कों को बुलाता जाता है। वह सबसे हिल मिलकर रहता है। कभी लड़ाई नहीं करता है। किसी की चुगली नहीं खाता। उसे कोई चिढ़ाता है तो वह चुप रहता है। तब चिढ़ाने वाले आप ही चिढ़ाना छोड़ देते हैं। अज्ञानी लड़के ही चिढ़ाते हैं। तुम कभी किसी को मत चिढ़ाओ।

कभी किसी से मत लड़ो। लड़ना बुरी आदत है। किसी पर क्रोध मत करो। कभी रोओ मत। क्रोध से शरीर का लोहू सूखता है। बुद्धि बिगड़ती है और बहुत दुःख उठाने पड़ते हैं। सदाचारी लड़के सदा शांत रहते और उद्योग करते हैं।

३—सच बोलना

जिनदत्त सदा सच ही बोलता था। एक दिन उसके हाथ से गुरुजी की पोथी फट गई। उसने यह बात नहीं छुपाई। वह तुरंत ही गुरुजी के पास गया। पहले उनके सामने सिर झुकाया, और फिर सच बात कहकर माफ़ी माँगी। गुरुजी ने माफ़ी दे दी और सच बोलने के लिए उसकी बड़ाई की। बालको, सदा सच बोलो।

दोहा

सत्य बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप ॥
जाके हिरदे साँच है। ताके हिरदे आप ॥१॥

४—सफाई

रामू हमेशा साफ़ सुथरा रहता है। वह गन्दे हाथों से कभी भोजन नहीं करता। गन्दे हाथों से भोजन करने से मैल पेट में चला जाता है। फिर पेट दुखने लगता है। रामू नाक भी साफ रखता है। ग़लीच लड़कों की तरह वह नाक से फुर्र-फुर्र नहीं करता। वह दूर जाकर नाक साफ़ करता है।

रामू नहाता भी है। वह धीरे-धीरे अङ्गों को मसल कर साफ करता है। रामू कोरा पानी नहीं बहाता। वह साफ़ जगह में ही खेलता है। देखो, उसका शरीर और कपड़े कैसे साफ हैं। ना भाई, हम तो हमेशा साफ ही रहेंगे।



५—याद रखो

नित ही पढ़ना । गुण से बढ़ना
सीखो पाठ । सब है ठाठ
पाठ याद कर । समझ-समझ कर
मिहनत करना । कभी न डरना
सच-सच कहना । सुख से रहना
तजो लड़ाई । मिले बड़ाई
कभी न रोना । अच्छे होना
ऐसा ज्ञान । लो तुम मान

६—खेलना

ज्ञानचन्द्र और फत्तू खेलने गये । दोनों खूब गेंद खेले । खेलकर घर लौटे । घर लौटकर ज्ञानचंद्र ने अपनी पोथी उठाई और सबक याद करने लगा।

फत्तू खिलाड़ी था । वह घर आया और पतंग उड़ाने लगा ।

दूसरे दिन ज्ञानचंद्र और फत्तू पाठशाला गये। गुरुजी ने सबक पूछा । ज्ञानचंद्र ने सुना दिया । फत्तू कभी एँ-एँ-एँ करता कभी ऊँ-ऊँ-ऊँ करता। उसने कुछ नहीं सुनाया । गुरुजी ने उसके कान एंठे ।

घर आकर फत्तू ने पूछा—भाई ज्ञानचंद, तुम पाठ कैसे याद कर लेते हो ? मुझसे तो नहीं होता।

ज्ञानचन्द्र ने कहा—देखो, भाई फत्तू, मैं खेलने के समय जी लगाकर खेलता हूँ और पढ़ने के समय जी लगाकर पढ़ता हूँ। पढ़ने के समय कभी नहीं खेलता।

फत्तू ने भी ऐसा ही किया। दूसरे दिन फत्तू ने पाठ सुना दिया। गुरुजी खुश हुए।

७—बहुरूपिया की बात

तुम बहुरूपिया को जानते होगे। वह तरह-तरह के स्वाँग बनाता है। भेष बदल-बदल कर कभी बाबा बनता है, कभी सिपाही बनता है, कभी बुढ़िया बनता है। नकल करके सबको खुश करना उसका काम है।

एक बार किसी गाँव में बहुरूपिया आया। उसने कई स्वाँग बनाये। लोग खुश हुए। दूसरे दिन उसका पेट दुखने लगा। पेट ऐसा दुखा कि वह दर्द के मारे लोट-पोट होने लगा। कभी उठता, कभी बैठता, कभी पेट पकड़ कर पड़ रहता। उसकी चिल्लाहट सुनकर लोग उसके पास आये। उसने

कहा—मेरा पेट दुखता है। पर लोगों ने समझा कि यह किसी पेट दुखनेवाले की नकल करता है। किसी ने उसकी बात सच्ची न मानी, न उसे दवा दी।

अन्त में बहुरूपिया ने विचार किया—देखो, मैं झूँठ बोलता हूँ, इसी से लोग मेरी बात सच्ची नहीं मानते। अब मैं झूँठ न बोलूँगा। अनीति से धन नहीं जोडूँगा। नीति का पालन करूँगा। अनीति करने से बहुत दुःख उठाना पड़ता है।

फिर बहुरूपिया नीति का पालन करने लगा।

८—नीति

जो जीवन को सुधारे उसे नीति कहते हैं। वह कई तरह की है। जैसे—

१—सबका भला करना।
२—सच बोलना।
३—ईमानदारी रखना।
४—चालचलन अच्छा रखना।
५—संतोष रखना।
६—क्षमा रखना।

७—विनय करना।

८—सदा उद्योगी रहना।

९—एकता रखना।

१०—सबके गुण लेना।

पुराने ज़माने में जैनी लोग बड़े नीतिमान् थे। उन्हें सब लोग मानते थे। जब नीति का खूब पालन होता था तब लोग सुख चैन से रहते थे। अब नीति में कमी हुई। इससे आरोग्य, धन, कीर्ति, सुख आदि भी घट रहे हैं।

दोहा--

जहाँ नीति है सुख वहाँ, दुख न वहाँ पर होय।
जो सुख चाहो तुम सदा, नीति न त्यागो कोय॥

९--भला लड़का

रामा एक भला लड़का था। वह सदा सच ही बोलता था। सब से मेल रखता था। अपना पाठ समझ कर याद करता था। किसीकी चुगली नहीं खाता था। भोजन, कपड़ा या किसी दूसरी चीज़ के लिए नाराज़ नहीं होता था। जो मिलता,

उसी में आनन्द मानता था। मन लगाकर काम करता था। रोटी खूब चबा-चबा कर खाता था। मिर्च नहीं खाता था। इससे उसका शरीर बड़ा मज़बूत था। हम भी ऐसे ही गुण धारण कर सुखी बनेंगे।

१०—चंगे कैसे रहें?

साफ़ हवा में सोना चाहिए। सोते समय खिड़कियाँ खुली रखनी चाहिये। खिड़कियाँ खुली रहने से साफ़ हवा आती है। साफ़ हवा से बुद्धि बढ़ती है और रोग नहीं होते। मुँह ढाँक कर नहीं सोना चाहिए। मुँह के ढँके रहने से नाक से निकली हुई ज़हरीली हवा बाहर नहीं जाती। इससे शरीर बिगड़ता है। एक बिछौने पर एक से अधिक मनुष्य को नहीं सोना चाहिए।

११—गहने

सोमसेन के घर विवाह था। सुरेश ने रो-रोकर गहने पहने और बरात में आया। गहने क़ीमती थे।

अपने साथियों के साथ खेलता-खेलता वह गाँव के बाहर जा पहुँचा। सांझ का समय था

पढ़ने में आलस्य महान·
जो करते वे हैं नादान,
चुगली खाना भारी पाप
इससे बचते रहना आप।
गुरुओं का सेवा-सत्कार
करना भैया, बारम्बार,
मेरे प्यारे बोल न झूठ
बात-बात में कभी न रूठ।

१६—हित-शिक्षा

मुक्ति, द्रव्य, त्याग, न्याय, धान्य।
अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय॥
प्रतिक्रमण, प्रायश्चित्त, सत्यव्रत, तीर्थंकर।

जीवों की रक्षा करो। धर्म सार वस्तु है। आलस्य छोड़ कर विद्या पढ़ो। लक्ष्मी का दान दो। हम गुण पूजक हैं। हम आत्मा हैं। सबकी आत्मा समान है। उपाश्रय में जाओ। मुनि दर्शन करो। व्याख्यान सुनो। सब से प्यार करो। आरोग्यता के वास्ते कसरत करो तथा मेहनत का सब काम हाथों से करो। पुस्तक पढ़ो। स्वच्छता रक्खो। जयजिनेन्द्र कहो। जैनधर्म अच्छा है।

सच्चा प्रकाश ज्ञान है। तत्त्व नौ हैं-जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बंध, मोक्ष।

उत्तम काम करो। पुष्प मत तोड़ो। आत्मा ही परमात्मा बन सकता है। गुरु शिष्य को पढ़ाते हैं। श्रावक के बारह व्रत हैं।

१७---मा-बाप को प्रणाम

प्रश्न—बहिन, तू क्या करती है?

उत्तर—माँ को प्रणाम करती हूँ।

प्रश्न—किस लिए?

उत्तर—माँ बापको प्रणाम करना अपना कर्त्तव्य है।

प्रश्न—क्या मैं भी प्रणाम करूँ?

उत्तर—हाँ भाई, रोज प्रणाम किया करो।

प्रश्न—इससे क्या लाभ होता है?

उत्तर—अपने अपराधों की माफी मिलती है। उनकी प्रीति बढ़ती है। वे हरेक काम में अपने को ज्यादा मदद देते हैं। आशीष देते हैं।

प्रश्न--और किसे प्रणाम करना चाहिए?

उत्तर--साधुजी, गुरुजी और बड़ों को; ये सब हमे शिक्षा देते हैं, इसलिए हमारे उपकारी हैं।

१८—हाथ-पैर का उपयोग

हाथ दो होते हैं। हाथ से भोजन करते हैं, पानी पीते हैं। माता-पिता के पाँव दाबते और गरीबों को भोजन देते हैं। अपना सब काम हाथों से करो। अपने ही हाथ से काम अच्छा होता है। हाथों की शोभा अच्छे कामों से होती है, गहनों से नहीं। हाथों में फुर्ती रखो। भले कार्य करो। बिना पूछे किसी की चीज़ मत उठाओ।

हम पैरों से चलते हैं। सदा पैरों से चलो। बिना ख़ास काम गाड़ी में मत बैठो। पैदल चलने से बीमारी नहीं आती। सुबह शाम घूमने जाओ। पाठशाला जाने में चूक मत करो। साधु जी के दर्शन के लिए जाओ। नीचे देख कर चलो। गरीब की सहायता के लिए दौड़ो।

हाथ पाँव को परहित में नित,
मेरे मित्र काम लाओ।
दान और सेवा में दे चित,
यश बस खूब कमा जाओ॥

१६—जीभ, आँख, कान

करो जीभ से मीठी बात ।
और सत्य बोलो प्रिय भ्रात ॥
आँख तुम्हारी से प्रियवरो ।
साधु जनों के दर्शन करो ॥
पढ़ो पुस्तकें चलो देख कर ।
लगे न जिससे तुमको ठोकर ॥
कान तुम्हारे होते दो ।
उनसे पाठ सदा सुन लो ॥
सुनो साधुजी के उपदेश ।
बुरी बात को तजो हमेश ॥

२०—दुःख

माँ—रमण, क्यों रोता है भैया ?

रमण—मुझे लकड़ी की चोट लग गई है। बड़ी पीड़ा हो रही है।

माँ—आ बेटा, आ ! मैं ज़रा तेरी चोट पर तेल लगा दूँ। इससे पीड़ा जल्दी ठीक हो जायगी।

रमण—माँ, मुझे बड़ा ही दुःख हो रहा है।

माँ—हां बेटा, लगने से दुःख होता ही है। तुम

किसी को दुःख मत देना।

रमण—हाँ, माँ, मैं कभी किसी को दुःख नहीं पहुंचाऊँगा।

× × × ×

चचा—रसिक! मुँह उतारे क्यों बैठा है?

रसिक—काका, बहिन झूठ बोलती है।

चचा—क्या झूठ बोलती है, बेटा!

रसिक—वह मुझसे कहती है, तूने मेरी पुस्तक फाड़ डाली।

चचा—अच्छा बेटा, मैं बहिन को समझा दूँगा। उसने तुझे झूठा दोष लगा दिया। इससे जैसे तुझे दुःख हुआ वैसे दूसरों को भी होता है। इसलिए तू भी कभी झूठ मत बोलना।

× × × ×

माता—उदास क्यों है, बेटी शान्ति?

शांति—माताजी, किसी ने मेरी दावात चुराली?

माता—इससे क्या हो गया?

शांति—मुझे बड़ा दुःख हो रहा है। मैं कैसे लिखूँगी?

माता—देखो बेटी, दावात चुराये जाने से तुझे कितना दुःख हुआ? ऐसे ही औरों को भी होता है। इसलिए बेटी, बिना पूछे किसी की चीज़ मत छूना। ऐसा करना चोरी है।

शांति—हाँ माताजी, मैं तो ऐसा कभी नहीं करूँगी। सचमुच चोरी करना बड़ा पाप है।

२१—भावना—चौपाई

सच बोलें सच बात विचारें। भले काम कर जन्म सुधारें
देश जाति का मान बढ़ावें। ऐक्य करें सन्मान कमावें
छोटे बडे सभी मिल जावें। गिरे हुए को तुरत उठावें
बीते झगड़ों को बिसरावें। आगे के हित नेह जुटावें
भाई भाई को न सतावें। कड़ी बात से जी न दुखावें
दुखियोंका दुख दूर भगावें। सबको सुख देकर सुख पावें
विपत पड़े पर साथ न छोड़ें। बुरी बात से नित मुख मोड़ें
दया धर्म को खूब निभावें। अरिहंतों को सीस झुकावें

२

२२—पढ़ने के फ़ायदे

सीता पाठशाला को जाती थी। उसके छोटे भाई सोहन ने पूछा—बाई, पाठशाला को क्यों जाती हो ?

सीता ने उत्तर दिया—भाई, वहाँ अच्छी-अच्छी बातें सीखते हैं। महापुरुषों के उपदेश मालूम होते हैं। इससे हमारी बुद्धि निर्मल होती है। फिर हम भी उनके जैसे बन सकते हैं। हम भी लोगों को उपदेश देकर सुधार सकते हैं। भाई सोहन, दुनिया में ऐसा कोई काम नहीं जो पढ़ने लिखने से नहीं हो सके। विद्या सब गुणों की खान है।

२३—रेशम और खद्दर

मोहन को कपड़ों का बड़ा शौक था। एक दिन उसने अपने पिताजी से रेशमी कोट बनवाने को कहा। पिताजी ने कहा—मोहन, रेशम पहिन कर काहे को पाप बढ़ाते हो।"

पाप! यह शब्द सुन कर मोहन को अचरज हुआ। उसने कहा—पिताजी, इसमें पाप किस बात का? हाँ, कीमत तो ज्यादा लगती है।

पिताजी ने कहा—बेटा, कीमत की बात नहीं है। तुम्हें मालूम है यह कैसे बनता है?

मोहन—यह तो मालूम नहीं। कपास की तरह रेशम भी उगता होगा और उससे कपड़ा बनता होगा।

पिताजी—अरे, तुझे यह भी मालूम नहीं। रेशम कीड़ों के मुँह की ताँत है। लाखों कीड़ों को मारने से यह तैयार होता है। इससे बड़ा पाप होता है?

मोहन—तो पिताजी, ऐसा कपड़ा कौनसा है जिसमें पाप न हो।

पिताजी—खद्दर का। इसमें चर्बी भी नहीं लगती है। मिल के कपड़ों में भी चर्बी का कलफ़ लगता है। इसके लिए लाखों गाय-भैंस आदि जानवर मारे जाते हैं। इसलिये खादी के कपड़े काम में लाना चाहिये।

मोहन—पिताजी! मैं आज से सदा पवित्र कपड़े ही पहनूँगा। मैंने अज्ञानता से रेशमी कोट माँगा। माफ करें।

२४—धर्म-सेवा

गुरु—तुम इतने सुखी और आनन्दी कैसे हो ?
विद्यार्थी—माता पिता की कृपा से ।
गुरु—तुम्हारे माता पिता सुखी कैसे हैं ?
विद्यार्थी—जैनधर्म के प्रताप से ।
गुरु—जैनधर्म क्या सिखाता है ?
विद्यार्थी—दया करना, सत्य बोलना, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य पालन करना, संतोष रखना ।
गुरु—इससे तुमको क्या लाभ होगा ?
विद्यार्थी—हमारे सब प्रेमी बनेंगे, वैरी कोई न होगा । सब लोग हमारा विश्वास करेंगे । हमारी बड़ाई होगी और धंधा भी खूब चलेगा । वैभव खूब मिलेगा तो उसे भी धर्म-सेवा में लगावेंगे । नये जैन बनावेंगे । सबको मदद पहुंचावेंगे ।
गुरु—जब तुम्हारे सब सुखों का मूल जैन-धर्म ही है, तो जैन धर्म को अधिकार है कि, वह तुम्हारी सब वस्तुओं का भोग जब चाहे तब माँग सके ?

विद्यार्थी--जी हाँ, सब वस्तुओं ही को क्या, धर्म के वास्ते हम अपनी देह को भी त्याग सकते हैं।

गुरु—धन्य हो, वीर पुत्रो! और तो क्या, धर्म के लिए प्राण की भी परवा न करना ही सच्चा आत्म-भोग है।

२५—वीर-शिक्षा

हे वीर बालक, तू वीर प्रभु का पुत्र है तो बहादुर बन। हिम्मत रख। सत्कार्य से पीछे न हट। हे प्यारे बालक, तू जैन है। इसलिए प्रफुल्लित बन। क्रोध और वैर को छोड़। सब से प्रेम कर और ज़ाहिर कर कि मैं जैन-समाज में जन्मा हूँ, अतः प्रत्येक जैन को सगा भाई समझूँगा। चाहे वह ब्राह्मण, राजपूत, ओसवाल या अछूत हो।

हे वीरपुत्र! चाहे तेरे पास कुछ भी न हो तो भी तू धर्म का विश्वास कर, न्याय नीति को मत छोड़ और आनन्द से बोल कि, मेरा जैन जीवन है। धर्म के पालन से कभी दुःख नहीं होता। जैन समाज ही मेरा पालना, विलास भूमि और यात्रा धाम है।

प्यारे महावीर-पुत्र ! जगत् को यही ज़ाहिर कर कि, वीतराग ही देव हैं; निर्ग्रंथ ही गुरु हैं: अहिंसामय जैन धर्म ही धर्म है। उसमें जाति-पांति का कोई भी भेद नहीं है। हरएक मनुष्य जैन धर्म का पालन करके आत्म कल्याण कर सकता है। खरा मर्द बन कर जैनी मृत्यु से भी नहीं डरता।

जैन इतिहास

२६—भगवान महावीर

प्रिय बालको ! क्या तुमने भगवान महावीर का नाम सुना है ? भगवान महावीर जैन धर्म के चौवीसवें उद्धारक हो गये हैं। धर्म के उद्धारक को तीर्थंकर कहते हैं

महावीर बालक-अवस्था से ही बड़े ज्ञानी, विनयी, क्षमावान और शूरवीर थे। एक समय अपने मित्रों के साथ बैठे हुए आप चन्द्रमा की चाँदनी में अच्छी-अच्छी कथाएँ कह रहे थे। उस समय वहाँ एक राक्षस आया। उसने सोचा, कि महावीर शब्द के पण्डित ही हैं या बलवान और गुणवान भी ? उसने इनकी परीक्षा करने की ठानी।

राक्षस—महावीर कुमार, आप क्या गप्पें मार रहे हैं ?

महावीर—गप्पें कैसी भाई ? हम तो उत्तम-उत्तम बातें कर रहे हैं ?

राक्षस—कुमार, आपने अपने शरीर बल से प को हरा दिया है परन्तु जब तक आपने मुझे

नहीं जीता तब तक आपका 'महावीर' अर्थात् "बड़ा शूरवीर" नाम रखना ठीक नहीं। यदि आप मुझ से युद्ध करके जीतें तो आपको सच्चा महावीर मानूँ।

सारे बालक महावीर के पराक्रम को जानते थे। वे बोले-"आप शीघ्र ही इसका गर्व उतारिये।"

महावीर बोले—भाई अपना युद्ध प्रेम का होता है, द्वेष का नहीं।

राक्षस—मैं भी परीक्षा ही के लिए युद्ध करना चाहता हूँ, न कि द्वेषवश।

दोनों में युद्ध शुरू हुआ। महावीर ने राक्षस को तत्काल ही नीचे गिरा दिया। वे उसके ऊपर बैठ गए, नीचे गिरते ही उसने राक्षसी शक्ति से बढ़ना शुरू किया। वह एक दम पहाड़ जितना ऊँचा हो गया। सब लड़के भयभीत होने लगे, परन्तु महावीर तो उसके ऊपर निडर होकर डटे रहे। जब उन्होंने देखा कि लड़के बहुत घबरा रहे हैं, तो अपनी एक अँगुली से उसे दबाया। वह हवा से फूले हुए कपड़े की तरह नीचे दब गया। महावीर के बल, क्षमा, निर्भयता व शूरवीरता की सब ने प्रशंसा की।

प्यारे विद्यार्थियो ! आप भी उनकी ही संतान हैं तो वैसे ही बनो. विद्वान, वीर और धीर बनें।

२७—पार्श्र्वनाथ भगवान

बनारस नगरी में एक बाबा आया था । उस के लंबी दाढ़ी और लम्बे केश थे। वह चौरासी धूनी जला कर तप करता था। गाँव के सब लोग उसको वन्दना करने के लिए जाते थे। एक दिन पार्श्वनाथ कुमार खेलते-खेलते वहाँ चले गए। उन्होंने बाबा से कहा,-"अरे बाबाजी, यह क्या कर रहे हो ? धर्म कर रहे हो कि पाप ?"

बाबाजी-कुमार, तुम क्या कहते हो ?

कुमार-मैं सत्य बोल रहा हूँ। देखिये ! आपकी लकड़ी में साँप जल रहे हैं । आप सच्चे धर्म को समझते ही नहीं। धर्म वही है जिससे सब जीवों को सुख और शान्ति मिले। किसी को दुःख न हो। आप तो धर्म क्या कर रहे हैं, धर्म के नाम पर पाप बढ़ा रहे हैं।

कुमार पार्श्वनाथ का यह कहना ही थ कि बाबा का मुँह क्रोध से लाल हो गया।

ने कुल्हाड़ा उठाया और चट से लकड़ी पर दे मारा। कुल्हाड़ा लगते ही लकड़ी फट गई और भीतर से जलते हुए नाग और नागिन निकल पड़े। चारों ओर सन्नाटा-सा छा गया।

कुमार ने उन प्राणियों का इलाज किया और उन्हें धर्म का उपदेश सुनाया। इस उपदेश के प्रताप से वे मरकर देवलोक में देवता हुए। इनके नाम धरणेन्द्र और पद्मावती हैं।

प्यारे बालको, यह सदा याद रखो, धर्म वही है जिससे किसी को भी दुःख न हो। आप सदा दया धर्म का पालन करें और दुखियों का पालन करके उनको भली सीख दें।

२८—वीर बालक अयवंता कुमार.

एक बार अयवंता कुमार खेल-खेल में गुरु बनकर दूसरे सब लड़कों को हित-शिक्षा देने लगे। लड़कों की एक सुन्दर सभा जुड़ी हुई थी। इतने में श्री गौतम गणधर राह चलते दिखाई दिए। एक त्यागी मुनि को देखकर अयवंता कुमार बड़ी

नम्रता से उनके चरणों में जा गिरे और वन्दना की। सब लड़कों ने भी वन्दना की।

अयवंता कुमार गौतम देव को अपने घर ले आए। यह देखकर उनकी माता बड़ी प्रसन्न हुई। गौतम स्वामी को भक्ति-पूर्वक निर्दोष भोजन देकर वे उनके साथ प्रभु महावीर स्वामी के दर्शन के लिए गये। भगवान महावीर के उपदेश से ज्ञान प्राप्त कर उन्होंने संयम अङ्गीकार किया और मोक्ष पाया।

२६—वीरबाला चंदनबाला.

चन्दन बाला एक बड़ी बाल-ब्रह्मचारिणी सती हो गई है। यह चम्पा नगरी के दधिवाहन राजा की कन्या थी। शत्रु-सेना के साथ युद्ध करते-करते इसके पिता मारे गए। इस पर विपत्ति आई पर यह सत्य और शील पर दृढ़ रही। इसकी माता धारिणी सती ने शील रक्षा के लिए देह छोड़ दी। उन्होंने देवलोक प्राप्त किया।

चन्दन बाला हमेशा ज्ञान ध्यान करती थी। यह महापुरुषों के जीवन चरित्र पढ़ा करती थी और दुःख मे धीरज रखती थी।

एक वार भगवान महावीर खुद गोचरी पधारे। भगवान महावीर को इस समय छः मास के तप का अभिग्रह* था। द्वेषियों ने चन्दनबाला के बेड़ियाँ डाल रखी थी। उसे तेले× का तप था। जिस समय भगवान महावीर पधारे उस समय उसके पास उड़द के बाकुले थे। उसने इसका दान दिया। शुद्ध भाव से दान देने से चन्दनबाला के सब दुःख दूर हो गए। उसकी हथकड़ियां टूट गईं। उसके केश मुंडन किए हुए थे। उनकी जगह शोभायमान केश आ गए। साढ़े बारह करोड़ सोना-मोहरों की वृष्टि हुई।

चन्दनबाला को धन की इच्छा नहीं थी। उसने सब धन परोपकार में देकर दीक्षा ली। भगवान महावीर के छत्तीस हजार आर्याएँ हुईं। उन सब में आप श्रेष्ठ थीं।

---

*अभिग्रह = गुप्त पच्चखाण, तपका विशेष नियम। ×तेला = तीन दिन के एक साथ उपवास।

३०—आदर्श श्रावक-आणंदजी।

आणंदजी नाम के एक बड़े श्रावक होगए हैं। उन्होंने भगवान महावीर का उपदेश सुनकर अपने जीवन को पवित्र बनाया। वे बड़े धनवान सेठ थे। उनके पास बारह करोड़ का धन था। वे चालीस हज़ार गौओं का प्रतिपालन करते थे। धनी होने पर भी उन्होंने अपना जीवन सादगी से बिताना शुरू किया। उन्होंने बाजारू मिठाई की सौगन्द ली। केवल शुद्ध खादी के सिवाय दूसरे कपड़ों का त्याग किया। वे हर महीने छः उपवास पौषध करते थे। उन्हों ने अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, संतोष आदि बारह व्रत धारण किए। उन्हों ने प्रतिज्ञा की, कि मैं अपनी आय में से बहुत थोड़ा खर्च करूँगा। सादगी से जीवन बिताऊँगा। बचत का सब धन सुकृत्य में लगाऊँगा। उनका खूब यश फैला। उन्होंने दान, शील, तप और भाव का पालन किया। इससे वे सुधर्म देव-लोक के महान् प्रभावशाली देव हुए।

शिक्षा १—कम खर्च करके सब दान देना चाहिये।

२—अच्छे नियम लेने से बहुत सुख मिलता है।

प्रश्न १—आणंदजी श्रावक ने कैसे नियम लिए?

२—आणंदजी श्रावक ने कौन २ से व्रत लिए?

एक बार भगवान महावीर खुद गोचरी पधारे। भगवान महावीर को इस समय छः मास के तप का अभिग्रह* था। द्वेषियों ने चन्दनबाला के बेड़ियाँ डाल रखी थी। उसे तेले× का तप था। जिस समय भगवान महावीर पधारे उस समय उसके पास उड़द के बाकुले थे। उसने इसका दान दिया। शुद्ध भाव से दान देने से चन्दनबाला के सब दुःख दूर हो गए। उसकी हथकड़ियां टूट गईं। उसके केश मुंडन किए हुए थे। उनकी जगह शोभायमान केश आ गए। साढ़े बारह करोड़ सोना-मोहरों की वृष्टि हुई।

चन्दनबाला को धन की इच्छा नहीं थी। उसने सब धन परोपकार में देकर दीक्षा ली। भगवान महावीर के छत्तीस हज़ार आर्याएँ हुईं। उन सब में आप श्रेष्ठ थीं।

---

*अभिग्रह = गुप्त पच्चखाण, तपका विशेष नियम। ×तेला = तीन दिन के एक साथ उपवास।

३०—आदर्श श्रावक-आणंदजी ।

आणंदजी नाम के एक बड़े श्रावक होगए हैं। उन्होंने भगवान महावीर का उपदेश सुनकर अपने जीवन को पवित्र बनाया। वे बड़े धनवान सेठ थे। उनके पास बारह करोड़ का धन था। वे चालीस हज़ार गौओं का प्रतिपालन करते थे। धनी होने पर भी उन्होंने अपना जीवन सादगी से बिताना शुरू किया। उन्होंने बाजारू मिठाई की सौगन्द ली। केवल शुद्ध खादी के सिवाय दूसरे कपड़ों का त्याग किया। वे हर महीने छः उपवास पौषध करते थे। उन्हों ने अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, संतोष आदि बारह व्रत धारण किए। उन्हों ने प्रतिज्ञा की, कि मैं अपनी आय में से बहुत थोड़ा खर्च करूँगा। सादगी से जीवन बिताऊँगा। बचत का सब धन सुकृत्य में लगाऊँगा। उनका खूब यश फैला। उन्होंने दान, शील, तप और भाव का पालन किया। इससे वे सुधर्म देव-लोक के महान् प्रभावशाली देव हुए।

शिक्षा १—कम खर्च करके सब दान देना चाहिये।
२—अच्छे नियम लेने से बहुत सुख मिलता है।

प्रश्न १—आणंदजी श्रावक ने कैसे नियम लिए?
२—आणंदजी श्रावक ने कौन २ से व्रत लिए?

तत्व-विभाग

३१—नवकार मंत्र और उसका फल.

१—नमो अरिहंताणं—अरिहंत देव को नमस्कार करता हूँ।

२—नमो सिद्धाणं—सिद्ध भगवान को नमस्कार करता हूँ।

३—नमो आयरियाणं—आचार्य महाराज को नमस्कार करता हूँ।

४—नमो उवज्झायाणं—उपाध्याय मुनि को नमस्कार करता हूँ।

५—नमो लोए सव्व साहूणं—लोक में विराजमान सब साधु साध्वियों को नमस्कार करता हूँ।

एसो पंच णमुक्कारो—ये पंच पदों का किया हुआ नमस्कार,

सव्व-पाव-प्पणासणो—सब पापों का सर्वथा नाश करनेवाला है।

मंगलाणं च सव्वेसिं—सब मंगलों में,

पढमं हवई मंगलं—श्रेष्ठ मंगल है।

नवकार का अर्थ नमस्कार है और मंत्र का

अर्थ उत्तम वाक्य है। पंच परमेष्ठी प्रभु को रोज स्मरण करके उनके समान अनंत ज्ञानादि गुण अपने में भी प्रकट करने का चिंतवन करना चाहिए। इसे भावना कहते हैं।

उठते समय, सोते समय, और हरएक कार्य करते समय, नवकार मंत्र का अर्थ और भावना सहित चिंतवन करना चाहिये।

हम जैन हैं, इसलिये हम को हमेशा, मंगलाचरण में नवकार गिनकर रोज थोड़ा-सा समय जैन तत्त्व-ज्ञान की पुस्तक पढ़ने और विचारने में लगाना चाहिए।

जैसे शरीर का आधार भोजन है, इसी प्रकार जीव का आधार ज्ञान है। हम लोग जैसे रोज़ भोजन करते हैं, वैसे कुछ समय तक, रोज़ ज्ञान ध्यान का नियम भी रखना चाहिये।

३२—चोबीस तीर्थंकरों के नाम

१—श्री ऋषभदेव—स्वामी
२—श्री अजितनाथ-स्वामी
३—श्री संभवनाथ-स्वामी

४—श्री अभिनन्दन-स्वामी
५—श्री सुमतिनाथ-स्वामी
६—श्री पद्म प्रभु—स्वामी
७—श्री सुपार्श्वनाथ-स्वामी
८—श्री चन्द्रप्रभु—स्वामी
९—श्री सुविधिनाथ-स्वामी
१०—श्री शीतलनाथ—स्वामी
११—श्री श्रेयांसनाथ-स्वामी
१२—श्री वासुपूज्य—स्वामी
१३—श्री विमलनाथ-स्वामी
१४—श्री अनन्तनाथ-स्वामी
१५—श्री धर्मनाथ—स्वामी
१६—श्री शान्तिनाथ-स्वामी
१७—श्री कुन्थुनाथ—स्वामी
१८—श्री अरनाथ—स्वामी
१९—श्री मल्लिनाथ—स्वामी
२०—श्री मुनिसुव्रत—स्वामी
२१—श्री नमिनाथ—स्वामी
२२—श्री नेमिनाथ—स्वामी
२३—श्री पार्श्वनाथ—स्वामी
२४—श्री महावीर—स्वामी

३३—जीव और अजीव

जीव—उन्हें कहते हैं जिनको सुख दुःख होता हो, जिन में ज्ञान हो। जैसेः– आदमी, गाय, बकरी, घोड़ा, कुत्ता, कबूतर, चिड़िया, मछली, आदि।

अजीव–उन्हें कहते हैं जिनको सुख दुःख का भान न हो, जिनमें ज्ञान न हो। जैसेः–सूखी लकड़ी, ईंट, कुर्सी, टेबल, काग़ज़, पुस्तक, कर्ता, टोपी, रोटी आदि।

संसार में जीव दो प्रकार के हैं। त्रस और स्थावर।

१. त्रस जीव उसे कहते हैं, जो हलनचलन कर सके। जैसे कीड़े, चींटी, गाय, मनुष्य आदि।

२. स्थावर जीव स्वयं चल फिर नहीं सकते। एक ही जगह पड़े रहते हैं।

स्थावर जीवों को एक स्पर्श इन्द्रिय अर्थात् शरीर ही होता है। स्थावर के पाँच प्रकार हैं। जैसेः–

१. पृथ्वी काय—कच्ची मिट्टी, नमक, हीरे, खड़ी और सब खनिज पदार्थ।

२. अपकाय—कच्चा पानी (कुआ, नदी, तालाब, समुद्र आदि का)

३. तेउ काय—अग्नि के प्रकार, दीपक, बिजली, चूल्हे-भट्टी आदि की अग्नि।

४. वाउकाय--हवा-पवन के जीव, सब दिशाओं का पवन, गुञ्जवा, आंधी आदि।

५. वनस्पतिकाय-शाक, भाजी, हरे पेड़, अनाज, काई, कन्दमूल काँदा आदि।

दोहा-जीव भेद संसार में, त्रस अरु स्थावर दोय।
त्रस वे जो चल फिर सकें, स्थावर जो थिर होय॥
स्थावर इंद्रिय एक युत, भेद कहौं हौं पाँच।
पृथिवी जल अगनी तथा, वायु वनस्पति पांच॥

३४—त्रस काय।

त्रस जीवों के मुख्य चार प्रकार हैं। १ बेइन्द्रिय, २ तेइन्द्रिय, ३ चौरेन्द्रिय और ४ पंचेन्द्रिय।

१ बेइन्द्रिय—दो इन्द्रिय (शरीर और मुँह) वाले जीव जैसे कीड़े, जोंक, अलसिया, शंख, छीप आदि।

२ तेइन्द्रिय—तीनइन्द्रिय (शरीर, मुँह, और नाक) वाले जीव। जैसे, काड़ी, मकोड़ी, जूँ, खटमल आदि।

३ चौरेन्द्रिय—चार इन्द्रिय (शरीर, मुँह, नाक

और आँख) वाले जीव । जैसे-मक्खी, मच्छर, भौंरे, पतंग, टिड्डी आदि ।

३ पंचिन्द्रिय—पाँच इन्द्रिय (शरीर, मुँह, नाक, आँख, और कान) वाले जीव । जैसे-गाय, मगर, पक्षी आदि तिर्यंच, मनुष्य, देवता और नरक के जीव ।

चौपाई—हों जिनके शरीर मुख दो ही ।
बेइन्द्रिय कहलावे सो ही ॥
तन मुख और नाक जो पाते ।
वे त्रस तेइन्द्रिय कहलाते ॥
तन मुख नाक आँख जो राखे ।
चौ इन्द्रिय सब उन को भाखे ॥
तन मुख नाक आँख अरु काना ।
पंचेन्द्रिय त्रस जीव बखाना ॥

शिक्षा-इन जीवों को जान कर हमें किसी को दुःख नहीं देना चाहिये । दुःख देने से दुःख भोगने पड़ते हैं । कोई जीव दुःखी हो तो उसका दुःख दूर करने का उद्यम करना चाहिये । यह हमारा पवित्र काम है ।

३५—पांच इन्द्रियां

१ स्पर्श इन्द्रिय-ठंडा, गर्म, मुलायम, भारी आदि स्पर्श जानने वाला चमड़ा (शरीर)।

२ रस इन्द्रिय—मीठा, खट्टा, खारा आदि स्वाद जाननेवाली और बोलने के काम आनेवाली जीभ (मुँह)।

३ घ्राण इन्द्रिय—सुगंध, दुर्गंध आदि गंध जाननेवाली नासिका (नाक)।

४ चक्षु इन्द्रिय—लाल, काला, पीला आदि रूप को जाननेवाली आँख।

५ श्रोत्र इन्द्रिय—जीव और अजीव के शब्द आदि सुननेवाला कान।

॥ दोहा ॥

स्पर्श रस अरु घ्राण ये, चक्षु श्रोत्र मिल पाँच।
एक पाय एकेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय क्रम जाँच*॥१॥

---

* पाँच इन्द्रियों की प्राप्ति क्रम से इस प्रकार होती है, नीचे से ऊपर जो इंद्रियाँ हैं वे क्रम से बढ़ती है, जैसे सबसे पहिला शरीर है तो एकेंद्रिय को एक शरीर है, पश्चात मुख है तो बेइंद्रिय को शरीर और मुख हैं (हर कोई दो इंद्रियां बेइन्द्रिय को नहीं हो सकती सब को क्रम से ही होती हैं) पश्चात् नाक; आँख; कान क्रम से ऊपर आते हैं, इसी क्रम से जीवों में ये बढ़े है। शिक्षक महोदय विद्यार्थियों को विस्तार से समझाने की कृपा करें।

३९—चार गति।

संसारी जीवों को भटकने (गमन करने) के स्थान को गति कहते हैं। गति चार हैं—

१ नारकी—नीचे लोक में पापी जीवों को जाने की जगह। जहाँ अनंत दुःख हैं।

२ तिर्यंच—एकेन्द्रिय, पशु, पक्षी, कीड़े आदि के स्थान। इस लोक में हैं।

३ मनुष्य—स्त्री-पुरुष आदि जो इस लोक में हैं।

४ देवता—ऊँचे लोक में धर्मी, परोपकारी जीवों के उपजने के स्थान जहाँ बहुत सुख हैं।

सब गति से छूटनेवाले सिद्ध होते हैं। सिद्धों का स्थान सबसे ऊँचा है। वहाँ अनंत सुख है।

॥ दोहा ॥

नर्क, तिर्यंच अरु देवता, मनुष्य गति ये चार।
नीचे नर्क ऊँचे देव हैं, दो गति तिरछी धार ॥ १॥
हिंसादिक से नर्क हो, कपटी हो तिर्यंच।
सरल-भाव मानव बनै, व्रत तप देव न रंच ॥ २ ॥

३७—देवगुरु धर्म

देव।

नवकार (नमस्कार) मन्त्र[1] के पहिले दो पद देव के हैं। अर्थात् अरिहंत और सिद्ध देव हैं। देव सब कुछ जानते और देखते हैं। देव वीतराग अर्थात् पूर्ण समभावी होते हैं। देव को अनंत सुख होता है। देव अनंत शक्तिशाली होते हैं। देव सब विकार और दोषों से रहित होते हैं। उनके पास स्त्री आदि भोग सामग्री नहीं होतीं, क्योंकि वे राग रहित हैं। तथा धनुष, त्रिशूल, गदा, तलवार, भाला आदि शस्त्र नहीं रखने क्योंकि वे द्वेष रहित और निर्भय हैं।

गुरु।

पीछे के तीन पद गुरु के हैं-आचार्य जी, उपाध्याय जी और साधु जी के। वे पाँच महाव्रत पालते हैं। पाँच महाव्रत ये हैं:—

१—अहिंसा २-सत्य ३—अचौर्य ४-ब्रह्मचर्य और ५ अपरिग्रह (संतोष)। गुरु भांग, गाँजा, तमाखू आदि सब व्यसनों से रहित होते हैं। गुरु,

१ मन्त्र = हितकारी शब्द या वाक्य।

स्त्री धन और भोग के सर्वथा त्यागी होते हैं। गुरु दिन रात ज्ञान-ध्यान व तप-संयम से अपना और पर का कल्याण करते हैं।

धर्म—

पवित्र कर्तव्य को धर्म कहते हैं। धर्म से सच्चा सुख मिलता है। धर्म से सब दुःखों का नाश होता है। किसी जीव को दुख नहीं देना, सच बोलना चोरी नहीं करना, ब्रह्मचर्य पालन करना और संतोषी रहना धर्म है। क्षमा, विनय और उदारता धर्म है। दान, शील, तप और शुभ भावना धर्म है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप भी धर्म हैं।

३८—नौ-तत्त्व।

१, जीव—जो सुख दुःख को जाने, ज्ञान जिसका लक्षण है।
२, अजीव—जो सुख दुख को न जानें, ऐसे जड़ पदार्थ।
३, पुण्य—भले काम, जिनसे सुख हो।
४, पाप—बुरे काम, जिनसे दुःख मिले।
५, आश्रव—शुभाशुभ कर्मों का आना।

६, संवर—कर्म का रुकना।
७, निर्जरा—कुछ अंश से कर्म दूर होना।
८, बंध—जीव के साथ कर्मों का बँधना।
९, मोक्ष—सब कर्मों का छूट जाना और अनंत सुख की प्राप्ति होना।

३९—प्रश्नोत्तर

(१) प्रश्न–जैन किसको कहते हैं ?
उत्तर–जो क्रोध, मान, कपट और लोभ को जीतने का प्रयत्न करे, उसे जैन कहते हैं।
(२) प्रश्न - धर्म का मूल क्या है ?
उत्तर—विवेक पूर्ण अहिंसा और सत्य।
(३) प्रश्न—जैन कौन बन सकता है ?
उत्तर—उच्च नीतिमान मनुष्य ही जैन बन सकता है, चाहे वह किसी भी जाति का हो।

आत्मबोध (भाग दूसरा)

अनुक्रमणिका ।

श्री आत्म-बोध

दूसरा भाग

आदर्श दान ।

गंगा नदी जैसे सपाटे से बहने वाले हाथ ।
याचक (मांगने वाला) थक जाय, घबरा जाय ।
परन्तु विनीत भाव से आमंत्रण करता ही रहे ।
कुबेर के भण्डार को क्षण भर में खाली कर दे ।
अन्दर विश्वास जो ठहरा ।
हिमालय से तो नए २ झरने बहते ही रहते हैं ।
मैं वैसा न करूँ तो
मेरी लक्ष्मी गंगा त्रास उठेगी ।
इधर भ्रष्ट और उधर भी भ्रष्ट हो जाऊँगा ।
लोकों के कल्याण के लिए दान नहीं करे ।
दान करे अपने स्वार्थ के लिए ।

याचक का उपकार माने ।
आपका सदा का ऋणी ।
वायु के वेग को हँफाने वाले वेगयुक्त पाँवो से
कृपालु फिर ऋण से मुक्त करने के लिए वेग से पधारिए ।

+ + + +

शिर पर सत्य का मुकुट ।
ऊपर शील की कलंगी ।
ललाट पर पुरुषार्थ का सिन्दूर ।
यह सब धर्म के लिए अर्पित है ।
सब का वह मालिक है ।
खुद उसका सेवक है ।

पग।

स्वार्थ पर चलते दुख पावे, पसीजे ।
परमार्थ पर चलते रीझे ।
स्वार्थ मे अपंग परमार्थ मे महावीर ।

पुणिया श्रावक.

बाप दादा की सम्पत्ति वह तो समाज की ।
मुझे तो केवल बारह आने चाहिए ।
उसके लिए भी फिर समाज का ऋणी हूँ ।
प्रभो, उस ऋण से मुक्त कैसे होऊँ ?

अपनी आय से समाज सेवा करूँ।
नित्य प्रति एक स्वधर्मी को जिमाऊँ।
गृहलक्ष्मी की अनुमति लेकर उसे सहभागिनी बनाऊँ।
कृपालु देव, दो पेट पालने ही की सामग्री है।
सरल तथा सरस एक उपाय है।
मैं तपश्चर्या करूँ।
ना, मुझे भी तो लाभ लेने दो।
अपन दोनों बराबर दान करें।
नित्य एक बन्धु व बहिन को अन्न विद्या आदि आवश्यक दान दें।
समाज सेवा करें जो आत्म-सेवा है।
ऋण मुक्त होने को।

अरणक श्रावक

अपने खर्च से जिसकी इच्छा हो उसे।
समुद्र यात्रा कराता है।
मध्य समुद्र में जहाज पहुँचता है।
आकाश में अचानक गड़गड़ाहट
और विजली चमकती है।
जहाज आकाश पाताल को मुँह करता है।
सब जिन्दगी की आशा छोड़ देते हैं।
इष्ट देव की आराधना सच्चे हृदय से होती है।
देववाणी होती है।
अरणक अपना धर्म छोड़ो तो शान्ति हो।

प्राणो के जाते भी धर्म की टेक न छोड़ूं ।
हृदय मे धर्म टेक भले ही रख, जीभ से धर्म त्याग दे ।
धर्म छोड़ने का कहनेवाली जीभ इस देह को दरकार नहीं।
जीभ विना का जीवन श्रेयस्कर है ।
देव परीक्षा करके अपने स्थान को चला जाता है ।

प्रभव चोर

चोरी कहां करनी ?
अपार धन वाले धनी के यहां ।
जिससे उसका मन भी न दुखे ।
चोरी किस रीति से करनी ?
नगरवासियो को अपना परिचय देकर ।
निश्चिन्त करके ही ।
धन की गांठ बॉधते समय ।
जम्बु कुमार के उपदेश से ।
कर्म की गांठ को तोड़दी ।

माथा सँवारते महराजा

सारे बाल काले और–
हैं यह एक सुफेद क्यो ?
यह तो उपदेशक यमदूत ।
कालापन छोड़ और सफेदी धारण कर ।
संसार असार संयम धार ।

अमृत-वचन

जहां जरूरत हो वहीं टपकते हैं ।
अनमोल मोती गिरते हैं ।
कभी किसी को प्रहार मालूम नही पड़ता ।
सत्य, प्रिय रोचक और पाचक ।
विवेक पूर्वक विचार के स्व पर हितकारी वचन जैनी उच्चारण करे।

गुरु-वाणी

गाय ओगालती है ।
फेन के झाग से दूध बनाती है ।
बच्चे से बूढे तक को पिलाती है ।
मा के दुग्ध पान के समान पथ्य बनता है ।
धीरे २ रूपान्तर होकर दही और घी का रूप बने ।
खुद पुष्ट और संसार को पुष्ट बनावे ।

× × ×

जैन की तलवार दुधारी ।
जीतना जाने, साथ मे हारने की भी युक्ति जाने ।
मारना जाने, साथ में मार खाने की कला जाने ।
जीतने से भी अधिक तीक्ष्ण बुद्धि जीते जाने मे काम में लावे।
जैन तलवार जैसा तेज ।
साथ ही कमल जैसा नरम ।
गिरिराज जैसा बडा ।
साथ ही अणु जैसा सूक्ष्म ।
वज्र जैसा कठिन ।

साथ ही पानी जैसा नरम।
अग्नि जैसा उष्ण साथ ही बर्फ जैसा शीतल।
वायु जैसा स्फुरायमान साथ ही वृक्ष जैसा स्थिर।
सिंह जैसा निडर साथ ही हिरन जैसा डरपोक।
सूर्य जैसा प्रखर और चंद्र जैसा शीतल।

दो महावीर

भरत-बाहुबल-

मेरी आज्ञा मान।
प्रभु आज्ञा के सिवाय सर्वथा सदा स्वतंत्र।
मैं नरेन्द्र हूँ।
तू नर जड़ पिण्ड का तो मैं चैतन्य अहमेन्द्र हूँ।
देख मेरे आधिपत्य की सत्ता।
चक्र रत्न बिजली के पंखे के समान हवा करता है।
गर्विष्ठ पुतला, देख मेरी मुट्ठी।
अरे यह किस पर ?
हैं, क्या परिणाम होगा ?
अनर्थ!
मुट्ठी पीछी कैसे फिरे ?
क्षमा अमृत से विष का नाश।
मान विष का इस मुट्ठी से नाश करूँ।
लोच किया।
आकाश में देव दुंदुभी! जयनाद!

आदर्श जैन

विश्व के गिरिराज जैसा है।

तलेटी में शान्ति,

चोटी पर मुक्ति है।

इच्छा को दमकती तलवार समझता है।

मोक्ष-मार्ग का खेचर है।

इसके दो पाँखें हैं ज्ञान और क्रिया

उनसे मोक्ष को पहुँच सकता है।

पाप का फल देखे विना पुण्य करता है।

मोक्ष से भी मनुष्य जन्म को मँहगा समझता है।

जैन के दोनों बाजू प्रकाश है।

विषयी के आगे और पीछे दोनो ओर अंधकार है।

ज्ञान को मोक्ष की कुञ्जी या स्क्रू समझे।

दूसरे ईंट का जवाब पत्थर से देते हैं।

जैन सत्कार सन्मान से जवाब देता है।

दुःखादि को दुश्मन नहीं परन्तु अनुभव सिखाने वाले उपकारी गुरु समझता है।

समुद्र की भयंकर लहरें जैन गिरिराज को तोड़ नहीं सकतीं।

वासना मे शान्ति का अभाव समझता है।

अक्षरों की वर्णमाला के सदृश गुण का विकास करता है।

दूसरों को जीतने वाला नहीं परन्तु अपने को जीतने वाला वह जैन।

जैन का शत्रु जन्मा नहीं और अनन्त काल तक जन्मने का नही आज जैन परस्पर लड़ते हैं यह जैन रूप नहीं है।

जैन को देव बनना सुलभ ;

परन्तु देव को जैन बनना दुर्लभ।

जैन प्रत्येक वस्तु के चार भाग करता है :—

बीज, वृक्ष, पुष्प, फल। मनुष्य, हृदय, विचार, आचरण।

बाह्य अवस्था को अन्तर अवस्था की छाया समझता है।

जैन के लिए भला करते बुरा काम करना अपना नाम भूलने जैसा असम्भव है।

पढ़े लिखे से जैसे अशुद्ध 'क', 'ख' लिखे जाने मुश्किल हैं।

वैसे ही जैन के लिए खोटा कार्य अशक्य।

चोर के लिए चोरी सरल।

साहूकार के लिए महाकष्ट दायी।

जंगली पत्थर की मूर्ति बने तो प्रकृति को पलटते क्या देर ?

कषाय अंधकार है और वह उल्लू जैसे अधम को प्रिय है।

कषाय की चिनगारी को ज्वालामुखी से भयकर समझे।

जैनी कषाय को वश करता है।

इतर जगत् उसके वश होता है।

नारकी मे जाने वाला ही धन को जमीन में गाड़ता है।

जैन अपनी सम्पदा आकाश मे उड़ा देता है।

बड़े से बड़ा रोग कषाय को मानता है।

स्व-प्रशंसा को निरी मूर्खता समझता है।

दुनियाँ दूसरों को जीतने को तड़फती है।
जैन सर्वोपरि अपने को जीतता है।
अपने को जीतने से जगत् जीता जाता है।
अपने को सुधारने से जगत् सुधरता है।
ज्वलंत पापों को क्षण मे भस्म करता है।

शुभ भावना की पाँखें सदा फडकती ही रहती हैं।
विना त्याग की भावना वाला बड़े से बड़ा गुलाम है।
विचार के अनुसार ही वर्ताव रखता है।
सुख दु ख का मूल अपने ही को समझता है।
सूक्ष्म बीज मे से बड़ के वृक्ष जैसी श्रद्धा।
जमीन मे से साँठे के रस की आशा रखता है।

मार से छोटा बालक भी तो वश नहीं होता,
• प्रेम से केसरी सिंह को वश में करता है।

धन को स्वर्ग मे ढेर करें जहाँ कीड़ो और उदई का लेश न हो। (यह उत्कृष्ट दान से होता है)

कीचड़ से कनक को कनिष्ट समझे।
तुच्छाधिकार वही नरेश पद।
मोह को मृत्यु शय्या समझे।

(श्रीयुत वंसी कृत)

वीरो के खून से वना हुआ यह शरीर है।

शत्रु के बाणों को लज्जित करने वाला उसका अद्भुत हृदय है।

आध्यात्मिक जीवन का यह समुद्र है ।
मुख के ऊपर चंद्र की गहरी शीतलता है ।
सूर्य जैसा तेजस्वी जगमगाहट हो ।
आंखो मे वीरता का पानी झलक रहा हो ।
जीवन पर ब्रह्मचर्य का निशान फहरा रहा हो ।
चेहरे मे अमृत भरा हो ।
जिसको पी-पी कर जगत् विशेष प्यासा बने ।
मैत्री, प्रमोद, करुणा, और माध्यस्थ भावना की रेखा ओठों पर लहरे लेती हो ।
सुशीलता के भार से भवें नम रही हों ।
जीभ की मीठास से पत्थर भी पिघल जाय ।
जैन के जीवन मे अडिग धैर्य और अखण्ड शान्ति हो ।
स्नेहमय नेत्रों में से विश्वप्रेम की नदी वहे ।
जैन बोले थोड़ा किन्तु बहुत मीठा ।
जैसे मुँह में से अमृत गिरा रहा हो ।
श्रोता वचनामृत का प्यासा बना ही रहे ।
मधुर वचन से सब वश होवे ।
जैन गहरा ऊँडा है, कभी छलकता नहीं है ।
जैन के पैर गिरे वहां कल्याण छा जाय ।
शब्द गिरे वहां शान्ति छा जाय ।
जैन के सहवास से अजीब शांति मिलती है ।
जैन प्रेम करता है, मोह को समझता ही नहीं है ।
जैन के दम्पति धर्म में विलास की गंध नहीं है ।
जैन सदा जागृत है ।

कष्टों को हास्य करे वह जैन।

विजय मे खुश नहीं।

पराजय मे शोक नहीं।

जैन यौवन को संयम से वशीभूत करता है।

सत्ता मे सयानापन रखता है।

धन का आदर्श व्यय करता है।

ज्ञान के चक्षु से जगत् को ज्ञानी वनाता है।

खुद को कटा करके भी दया की ध्वजा फहराता है।

दुश्मन को प्रेम से भेंटकर जैनत्त्व की दिव्यता और उदारता का दर्शन कराता है।

जगत् की उकरड़ी के वीच अपना वगीचा वनाता है।

जैन हृदय से समझता है कि वन्ध और मोक्ष का सृष्टा मैं ही हूँ।

स्वर्ग का कोई भी देव मेरी सहाय करने में समर्थ नहीं है।

दृढ़ता और शान्ति ये दो युद्ध के पवित्र शस्त्र हैं।

विनय और शौर्य दो प्रचड भुजा।

जड़ता और निर्वलता उसकी कल्पना मे नहीं है।

ंकुचित दृष्टि और वहम उसके राज्य में नहीं है

लोक-कीर्ति के भूत को पैर से कुचलता है।

दुनिया की वाह-वाह उसके लिये वकवाद है।

सत्य और धर्म के लिये सर्वस्व को त्याग करता है।

मृत्यु से भी महान् दु:खों को हजम करना यह सीख रहा है।

दुष्ट भावना वाले को भी यह अच्छा वनाता है।

सव दुनिया 'ना' कहे और जैन वे-धड़क 'हा' कहता है।

जैन संसारी होते हुए भी असंसारी सरीखा रह सकता है।

गुस्से की आग को नम्रभाव हास्य के जल में शान्त करता है।

दूसरे के दोष भूल कर खुद के दोष ढूंढ़ता है।

जैन की गरीबी में सताप की छाया है।

उसकी श्रीमंताई मे गरीबो के हिस्से हैं।

सात्त्विकता की चांदनी मे जैन अहर्निश स्नान करता है।

चमकीली चीजें जैन मुफ्त मे भी नही लेता।

आत्म-सन्मान में मस्त रह कर मिथ्याभिमान को भस्म करता है।

जैन को देख कर दूसरो को वैसा बनने की इच्छा जागृत होती है।

श्री० वा० मो० शाह के वचनामृत

१—स्वधर्मी-वत्सल-वत्स अर्थात् पुत्र सरीखा प्रेम धर्म बन्धुओ से रखना और उनकी वैसी चिन्ता करना।

२—श्रीमंत मूंजी से दरिद्री श्रेष्ठ है।

३—कंजूस जोड़ और गुणाकार सीखता है, बाकी और भागाकार नहीं सीखता है।

४—कंजूस ने साधु जी से याचना की, महाराज आप हमको रोज प्रतिज्ञा देते हैं, आप भी आज दान देने का उपदेश न देने का प्रतिज्ञा कीजिएगा।

५—महमद गजनी मृत्यु के समय धन के ढेर पर सोकर बालक की तरह खूब रोया था, हाय; मेरे साथ इस में से कुछ नहीं चलता। (अन्याय नकरता तो रोना न पड़ता)

६—धन को खोदने का कुल्हाड़ा दान है।

७—दानी वही है जो सरोवर की माफक रात्रि दिन किसी को इन्कार नहीं करता।

८—तीर्थंकर भी मोक्ष जाने के पहिले ३८८८० लाख सोनैया का का दान देते हैं और जगत को दान देना सिखाजाते हैं।

९—दरिया का पानी और कुंजूस का धन दोनों बराबर है।

१०—सत्य और प्रेम का उपदेश देकर गुनाहों को रोकने वाली पोलीस वही साधु।

११—लोह की साकल को तोड़ना सहज है किन्तु तृष्णा का तोड़ना मुश्किल है।

१२—हीरा, मोती, मानक, रूप पत्थर को कीमती समझते हो परन्तु धर्म को नहीं।

१३—नागिन को वश करना सहज है किन्तु ममता को वश करना मुश्किल है।

१४—लाखो शत्रु मित्र बन सकते है किन्तु एक बुरा काम मित्र नहीं बन सकता है।

१५—रूठे हुए लाखों को समझाना सहज है किन्तु रूठे हुए हंस को समझाना दुष्कर है।

१६—तलवार और बन्दूक के घाव से वचन का घाव तेज है।

१७—दुश्मन से दाव पेच करते हो वैसा मोह से करो।

१८—७२ कला और १८०० भाषा का ज्ञान सरल है किन्तु एक आत्मा का ज्ञान होना मुश्किल है।

१९—दंभका बुगलों का, दया का, बाज का, हरामी का, टीड़ों

क्म और संप का उपदेश कावरन का, वैसे संप्रदाय, शिष्य और क्षेत्र का मोह छुटे बिना मुनि का उपदेश निस्सार है।

२०—मछली की घात पारधी से बड़ी मछलियाँ ज्यादा करती है। वैसे अन्य धर्मी से कलह प्रेमी साधु, और श्रावक जैन धर्म का ज्यादा नाश करते हैं।

२१—इस भव मे भूतकाल की खेती को लाट रहे हो और वर्तमान मे भविष्य के लिये बीज बो रहे हो।

२२—नाटककार राजमुगट पहिनने से राज्य लक्ष्मी का अधिकारी नहीं हैं। वैसे मुनिपने का नाम धरने वाके कल्याण के भागी नहीं हैं।

२३—ईसाईयों ने भारत मे धर्म प्रचार के लिये—१३७—मुक्ति फौज नाम की सस्थाएँ, १८७७६—पादरी धर्मगुरु, १५०० डॉक्टर्स, ४०० सफाखाने, ४३ छापाखाने, ९९ अखबार, ५० कोलेजे ६१० स्कुले, १७९ उद्योगशालाएँ, ४८०४४ विद्यार्थी ६१ अध्यापक विद्यालय, श्रीमंत जैनियों, आपने आपके धर्म प्रचार के लिए क्या कुछ किया है ?

२४—जैसे हिन्दू और मुसलमीनो ने आपस मे लड़कर स्वराज्य गुमाया वैसे श्वेताम्बर दिगम्बरो ने मूर्ति के लिए, और स्था० साधुओं ने सम्प्रदाय के लिये आज जैन धर्म को मुड़दल सा बना रक्खा है।

२५—जैसे कचहरी, कानून, और वकील की स्थापना शाति के लिए ई, आज उतनी ही ज्यादा अशान्ति और क्लेश वे फैला रहे हैं वैसे, सम्प्रदाय, कल्प, मर्यादा, और आचार्यादि क्लेश के निमित्त बन रहे हैं।

२६—कोर्ट मनुष्य विकाश के लिये विघ्न भूत है वैसे ही सम्प्रदाय धर्म-प्रेम मे विघ्न भूत।

२७—वर्तमान राज्य और धर्म संगठन का शिर नीचे और पेर ऊँचे हैं। कल्प और मर्यादा जैसे मामूली विषय के ऊपर विशेप लक्ष देते है। समकित और वात्सल्य भाव तथा व्रतादि के लिये कुछ परवा भी नहीं करते हैं और दूषण को भूषण रूप समझ रहे है।

२८—तामसी धर्म जनून सिखाता है, तब सात्विक धर्म गम खाना सिखाता है और जैन धर्म के आचार्यों ने भी जनून सिखाना शुरू किया है इसीसे धर्म के झगडे हो रहे है।

२९—दरियाई पानी उन्नति के शिखर पर चढ़ने वाला होता है, तब वराल रूप से भस्म होकर बादल रूप देह धारी बन कर मुसलधार बरसता है वैसे पुराने रीतिरिवाज नाश होकर नये जन्म धारण करते हैं। शिथिलाचारी यतियों के बाद लोंकाशाह का जन्म हुआ। अब नये वीर की अत्यन्त आवश्यकता है।

३०— कष्ट देनेवाले को कष्ट देकर खुश होने का यह जड़ जमाना है तब पूर्व में क्षमा देकर खुश होने का जमाना था।

३१—कष्ट देने वाले को कष्ट देने से अपने कष्ट मे कमी होती नहीं है, परन्तु सदा दुःखो की वृद्धि होती है।

३२—वैर लेने से नुकसान सिर्फ दो मनुष्यों को नहीं होता किन्तु समस्त जगत् को नुकसान होता है। यह समझ आज के जमाने में प्राय असभव सी है।

३३—धर्म मरजियात है। न कि फरजियात। गुरुभक्ति मरजियात नकि फरजियात।

३४—स्वामी श्रद्धानदजी की प्रतिज्ञा-गुरुकुल की स्थापना न होवे वहा तक घर मे पैर न रखना । है कोई जैन वीर ?

३५—दूसरे के दोष देखना यह खुद के दोष द्वार खुले करने के समान है ।

३६—बुद्धि यह चौधार खड़ग है ।

श्रीयुत अमृतलाल पाढीयार कृत

१—मन को हड़कवा, शरीर को क्षय, बुद्धि को कोलेरा, गरदन को प्लेग की गांठ हाथ और पैर मे लकवे की बीमारी आज के श्रीमतो को लगी है ।

२—एक रोटी का टुकड़ा खाने वाला भी जगत मात्र का ऋणी है ।

३—लीलोती के त्याग करने वाले ने क्या अनीति, असत्य, और कूड कपट के त्याग किये है ?

४—अष्टमी चतुर्दशी के उपवास करने वाले ने क्या बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, बेजोड़ विवाह, कन्याविक्रय, वर विक्रय और नुगते मे जीमने का त्याग किया है ?

५५—सवत्सरी से क्षमा के साथ क्या संतोष की याचना की है ?

५६—प्रभुस्तुति करनेवालो ने क्या विकथा निन्दा का त्याग किया है ?

अल्प आरम्भ व महा आरम्भ

१—हाथ मे अग्नि लेने वाले को कौनसा कर्म ? और हीरा लेने वाले को कौनसा कर्म ?

२—वेदनीय कर्म बडा व मोहनीय कर्म ?

३—वेदनीय कर्म के क्षय के लिये कोशिश करते हो या मोहनीय के लिए ?

४—वेदनीय से डरते हो उतने क्या मोहनीय से डरते हो ?

५—रेशम पहनने वाला दु खी या जलता वस्त्र पहने वाला ?

६—काटे पर सोने वाला दु.खी या रेशम की गद्दी पर सोने वाला दुखी ?

७—स्त्री से मोह करने वाला दु.खी या अग्नि मे गिरने वाला ?

८—मोती का हार पहनने वाला पापी या फूल का हार ?

९—मोती कैसे बनते हैं और फूल कैसे बनते हैं ?

१०—फूल सूघने वाला पापी या तम्बाकू सूघने वाला ?

११—अपने हाथ से खेती करके रूई निपजा के कपड़े तैयार करने वाला पापी या चर्बी के कपडे वाला ?

१२—हजार कोस बैल गाड़ी से यात्रा करने में अधिक पाप या एक मील भर मोटर या रेल से यात्रा करने में ?

१३—घर के सैंकडों दीपक जलाने वाला पापी या एक बिजली का दीपक जलाने वाला ?

१४—तीन सौ साठ दिन यतनापूर्वक रसोई बनाने में अधिक पाप या एक दिन अज्ञानी नौकर नौकरनी से ?

१५—हजारो वनस्पतियो से बनी हुई औषधि मे अधिक पाप या शराब, अण्डे, चरबी, वाली एक बूद या गोली मे ?

१६—फलाहार मे ज्यादा पाप या मिठाई मे ?

१७—लिलोती मे ज्यादा पाप या कस्तूरी मे ?

१८—पुष्प मे ज्यादा पाप या इत्र मे ?

१९—लाख मन गेहू के आटे मे ज्यादा पाप या परदेशी पाव भर मैदे मे ?

२०—तिल्ली के तेल मे ज्यादा पाप या मिट्टी के तेल मे ?

२१—हाथ के बुने हुवे सैकड़ो थान मे ज्यादा पाप या चरबी वाले एक तार मे ?

२२—सूत के लाख चंवर मे ज्यादा पाप या चवरी गाय के एक चंवर मे ज्यादा पाप ?

२३—सौ मन गुड का ज्यादा पाप या पाव भर परदेशी शक्कर मे ?

२४—घर पर हजारो मन पिसाने में ज्यादा पाप या मील की चक्की (Flour omills) मे एक कण पिसाने मे ?

२५—घर मे कुँआ रखने मे ज्यादा पाप या एक नल रखने में ?

२६—हजारों बार गोबर से लिपन करने मे ज्यादा पाप या एक बार फर्श जड़ाने मे ?

२७—गौ पालन करके नित्य दूध पीने मे ज्यादा पाप या सारी जिन्दगी में एक दफा एक चाय का प्याला पीने मे ?

२८—मण भर पानी पीने मे ज्यादा पाप या सोड़ावाटर एक शीशी पीने में ?

२९—सैकड़ों गायें पालने में ज्यादा पाप या एक वार वाजारू दही दूध घी खाने मे ?

३०—मण भर मिठाई यतनापूर्वक बनाने में ज्यादा पाप या पाव भर मोल लाने में ?

३१—न्याय उपार्जित लाखों की सम्पत्ति में ज्यादा पाप या अन्याय उपार्जित एक कौडी में ?

३२—लाखों नारियल की चूड़िया पहिनने वाली को अधिक पाप या एक हाथी दात की चूड़ी पहिनने में ?

३३—घर पर रसोई बनाकर जीमने वाला पापी या नुकते में जीमने वाला ?

३४—सौ विवाह मे घी जीमने वाला पापी या एक मोकाण मे घी खाने वाला ?

३५—कसाई को गौ बेचकर रुपये लेने वाला पापी या बेटी को बेचकर रुपये लेने वाला ?

३६—सौ बेटी को न पढ़ाने वाला मूर्ख वा एक बेटे को ?

३७—भयकर बीमारी मे संतान की रक्षा नहीं करने वाला शत्रु या सन्तान को विद्या नहीं देने वाला ?

३८—बेटी को लाख रुपये की बकशिस देनेवाला उत्तम कि शिक्षा देनेवाला उत्तम ?

३९—अछूत का अन्न खाने वाला अपराधी कि वृद्धलग्न या कन्याविक्रय लग्न मे जीमने वाला ?

४०—संतान के अंगोपांग काटने वाला पापी कि बाललग्न करने वाला ?

४१—पुत्र को कर्जदार बनाने वाला पापी कि अज्ञानी रखने वाला ?

४२—संतान को विलासी व विषयी बनाने वाले उसे मीठा जहर देते हैं।

४३—धर्म रक्षा के हेतु धर्म कलह करनेवाले धर्म वृक्ष की जड़ काटने वाले हैं। (आज ऐसे दोषी बहुत हैं कारण विज्ञान कम है)

४४—सब दु.ख और पापो का मूल कारण अज्ञान है ?

४५—सूर्योदय से सब अन्धकार दूर होता है इसी प्रकार सत्यज्ञान से सब दोष और दु:ख दूर होकर सकल सुखो की प्राप्ति होती है।

उपसंहार

पाप से जीव मात्र डरते हैं, कारण पाप का फल दु.ख है। जैनशास्त्र मे पाप दूसरा नाम है आरम्भ। अल्पारम्भ अर्थात थोड़ा पाप और और महारम्भ अर्थात् बहुत पाप। अल्प पाप और महापाप की व्याख्या ठीक न समझने से आज अनेक गृहस्थ व त्यागी लाभ की जगह हानिया उठा रहे हैं जैसे बिना परीक्षा सीखे जवाहिर खरीदनेवाला ठगा जाता है।

शास्त्र वचनो को समझने के लिए सद्गुरु की बड़ी भारी जरूरत वतलाई गई है। आज इसका पालन थोड़ा होने से पाप के निर्णय मे अन्धकार आ गया है। जैन जनता प्रत्यक्ष पाप अथवा स्वहस्त पाप को बुरा मानती है, परन्तु परोक्ष पाप को ाय भूल रही है। जैसे अल्पज्ञ जीव लगने वाली लकड़ी क

पत्थर को दु:ख का कारण मानता है, कि जब विवेकी मनुष्य उसके असली कारणों को ढूंढता है और उससे बचता है।

जैनो का ध्येय जीवदया होते हुए भी हिन्सा बढ रही है, जो थोडी विवेक दृष्टि लगाकर विचार करेंगे तो अनेक दोष स्पष्ट मालुम पड़ जायंगे। शास्त्रकारो ने हिन्सा के २७ प्रकार कहे हैं। मन, वचन, काया से पाप करना, कराना व अनुमोदन करना, भूत, वर्तमान् और भविष्य काल इन २७ प्रकारो से हिन्सा का पूर्ण त्याग वह अहिन्सा है।

देखो! श्री उपासक दसांग सूत्र मे सब श्रावको ने केवल सूत के दो वस्त्र रक्खे हैं। घर का घी और केवल एक जाति की घर में बनी हुई मिठाई रक्खी है। नाम खोल कर जीवन भर के लिए केवल दो चार शाक रक्खे हैं। अब मुनियो को देखो, सब छोटे बडे काम निज हाथो से ही करने की आज्ञा है किसी से कराने की मनाई क्यों है? कारण हाथो से, विवेक से अल्प पाप होता है व स्वावलम्बीपन रहता है। आज मशीनें और उतावलिए अविवेकी नौकरो से काम लेने मे हजारो गुना पाप बढ़ रहा है।

मोल की चीज़ लेकर जो दाम देते हो उसे उसके बन्धेवालो के हाथ पाप करने में मजबूत होते हैं। एक महापुरुप का कथन है कि "एक हड्डीका बटन लेने वाला हजारो गौवो को काटने वाले कसाइयो के हाथ मजबूत करता है।" इससे यह बात सिद्ध होती है कि अल्पपाप व महापाप का निर्णय विवेक दृष्टि से करना चाहिए। अज्ञान से दुःखवर्धक निमित्तों को भी आर्शीवाद रूप सुखदायी अपना मान बैठते हैं। इसलिए यह शिक्षा लेनी चाहिए कि जीवन की आवश्यकताएं घटाओ। इन्द्रियो को

दमन करो। तुलना बुद्धि विवेक प्राप्त करो और लाचारी से करने योग्य कामों मे भी जयणा (विवेक) का पालन करो इससे अल्पारम्भी, स्वाश्रयः, सुखी जीवन बनेगा।

पीनल कोड़ (सरकारी क़ानून-ताजीरात हिंद)

हिंसा जन्य अपराधो की सजाएँ

१—किसी को गाली देना, अपमान करना, दिल दुखाना आदि के लिए दो साल की सख्त कैद की सजा· कानून धा० ३५२।

२—हमला करना, इजा करना आदि के लिये दस साल की सख्त कैद की सजा कानून धा० ३२३।

३—किसी की गैर वाजबी रोक रखना आदि के लिये एक साल की सख्त कैद की सज़ा कानून धा० ३४१।

४—ख़ून करने वाले को मृत्यु की शिक्षा (फांसी) क़ानून धारा ३०२।

५—सब प्रकार की स्वतंत्रता को लूट कर किसी से गुलाम रूप से काम लेने वाले को सात साल की सख्त कैद की सजा कानून नं० ३७०।

६—भोजन में विष देनेवाले को फांसी की सजा कानून धारा० ३०२।

७—आश्रित को भोजन न देकर मृत्यु निपजाने वाले को फांसी की सजा कानून नं ३०२।

८—मकान मे आग लगाने वाले को सात साल की सख्त कैद की सजा कानून धारा ४३५।

९—एक लाठी की मार के पीछे एक साल की सख्त कैद की सजा कानून धारा ३२३।

१०—जाहिर रास्ते पर जानवर काटने वाले को रुपैया २००) का दण्ड कानून धारा २९०।

११—आत्मघात करने वाले को—एक साल की सख्त कैद की सजा कानून धारा० ३०९।

१२—गर्भपात करने व कराने वाले को तीन व सात साल की सख्त कैद की सजा कानून धा० ३१२।

१३—बारह वर्ष से छोटे बालक रखड़ते रखने से सात साल की सख्त कैद की सजा कानून धा० ३१७।

१४—मृत बालक को गुप्त गाडने मे—दो साल की सख्त कैद की सजा कानून धा० ३१८।

१५—जबर्दस्ती से बेगार कराने वाले को व शक्ति से ज्यादा काम लेने वाले को एक साल की सख्त कैद की सजा कानून धारा ३७४।

१६—किसी के पशु को दुःख देने वाले को तीन मास की सख्त कैद की सजा कानून न० ४२५

१७—पचास रुपये का नुकसान करने वाले को दो साल की सख्त कैद की सजा कानून धा० ४२७।

१८—किसी के खेत को नुकसान करने वाले को पांच साल की सख्त कैद की सजा कानून धा० ४३०।

१९—किसी को धमकी देने वाले को दो साल की सख्त कैदकी सजा–कानून–धा० ५०५।

२०—व्यभिचार का आरोप रखने वाले को सात साल की सख्त कैदकी सजा कानून–धा० ५०६ ।

झूठ के अपराधों की सजाएँ

१—खोटी सौगन्द खाने वाले को, छ मास की सख्त कैद की सजा और १०००) (हजार) रुपया दंड़का कानून धा० १७८ ।

२—किये काम के लिये दस्तखत न करने वाले को तीन मास की सरल कैद की सजा और ५००) रुपये दड़ का कानून धा० १८० ।

३—खोटी बात प्रतिज्ञा पूर्वक करने वाले को तीन साल की सख्त कैद की सजा कानून धा० १८१ ।

४—झूठा कलक देने वाले को—छ मासकी सरल कैदकी सजा और १०००) रुपैये दण्ड़ का कानून न० १८२ ।

५—खोटी गवाही भरने वाले को–सात साल की सख्त कैद की सजा कानून का० १९३ ।

६—झूठी खून की गवाही भरने वाले को फासी की सजा—कानून धा० १९४ ।

७—दूसरे की रक्षा के लिये झूठी गवाही भरने वाले को—सात साल की सख्त कैद की सजा कानून धा० २०१ ।

८—बनावटी अगुठा या सही करने वाले को सात साल की सख्त कैद की सजा कानून नं० ४७५ ।

९—झूठा नामा व हिसाब करने वाले को तथा उसको मदद करने वाले को—सात साल की सख्त कैद की सजा कानून धा० ४७७ ।

१०—झूठे खत दस्तावेज, रजिस्टर आदि के लिखने वाले को—सात साल की सख्त कैद की सजा—कानून धा० १९५।

चोरी के अपराधों की सजा

१—अच्छा माल बता कर बुरा माल देने वाले को-सात साल की सख्त कैद की सजा कानून धा० न० ४२०।

२—चोरी का माल लेने वाले को—छ मास की सख्त कैद की सजा और १०००) रुपैये दंड का कानून धा० १८८।

३—ताजा आटा, दाल आदि में पुराना माल मिलाने वाले को छ मासकी सख्त कैद की सजा और १०००) रुपये दंड का कानून—धा न०—२७२।

४—पानी पीने के स्थान मे कपडे धोने मे तीन मास की सख्त कैद की सजा कानून धा० २७७।

५—किसी का कुत्ता चोरने वाले को तीन साल की सख्त कैद की सजा कानून-धा न० ३७९।

६—सेठ की चोरी करने वाले नौकर को सात साल की सख्त कैद की सजा-कानून धा० ३७९।

७—दूसरे का भूला हुआ माल खर्च करने वाले को। दो साल की सख्त कैद की सजा कानून धा० ४०३।

८—मिली हुई वस्तु उस के मूल मालिक को न देने से व मालिक को न ढूंडने वाले को दो साल की सख्त कैद की सजा कानून धा० ४०३।

९ विश्वास घात करने वाले को दस साल की सख्त कैद की सजा कानून धा० ४०९।

१०—नमूने के माफिक माल न देने से, असली कीमत में नकली माल देने वाले को और नकली माल का दाम असली माल के बराबर लेने से एक साल की सख्त कैद की सजा कानून धा० न० ४१५।

११—रुपये उधार लेकर वापिस न देने से दो साल की सख्त कैद की सजा कानून धा० ४१५।

१२—तीसरे दरजे का टिकिट लेकर दूसरे दरजे में बैठने वाले को तीन साल की सख्त कैद की सजा कानून धा० ४१८।

१३—खोटा स्टाम्प चलाने वाले को तीन साल की सख्त कैद की सजा कानून धा० ४१९।

१४—किसी का माल छिपाने वाले को तीन साल की सख्त कैद की सजा कानून धा० ३७९।

जक़ात (दाण) चोरी।

१—महसूल पहिले दफे न चुकाने वाले का माल जब्त कर लिया जाता है पीछा नहीं मिलता।

२—दूसरी दफे महसूल न चुकाने वाले का माल जब्त करके और दड किया जाता है।

३—तीसरी दफे महसूल न चुकाने वाले का माल जब्त करके दंड करते हैं और सख्त कैद की शिक्षा देते हैं।

व्यभिचार के अपराधों में सजा

१—स्त्री की लज्जा लूटने वाले को दो साल की सख्त कैद की सजा कानून धा० ३५४।

२—स्त्री की इच्छा के विरुद्ध भोग भोगने वाले को दस साल की सख्त कैद की सजा कानून धा० ३७६।

३—छोटी उमर की स्वस्त्री के साथ भी भोग भोगने वाले को दस साल की सख्त कैद की सजा कानून धा० ३७६।

४—पुरुष, पुरुष के साथ स्त्री, स्त्री के साथ, या पशु, के साथ भोग भोगने वाले को दस साल की सख्त कैद की सजा कानून धा० नं० ३७७।

५—प्रथम लग्न गुप्त रखकर दूसरी शादी करे तो दस साल की सख्त कैद की सजा, कानून न० ४९५।

लालच के अपराधों में शिक्षा

१—रिश्वत लेने वाले और देने वाले दोनों गुनहगार हैं, जिनको तीन साल की सख्त कैद की सजा कानून—धा० १६१।

२—अच्छा काम करके इनाम लेने वाले को और देने वाले को तीन साल की सख्त कैद की सजा कानून नं० १६१।

३—खोटे सिक्के बनाने वाले को और चलाने वाले को दस साल की सख्त कैद की सजा कानून-धा० २३१।

४—खोटे सिक्के पास रखने वाले को तीन सालकी सख्त कैद की सजा कानून धा० २४२।

५—खोटे स्टाम्प बनाने वाले को दस साल की सख्त कैद की सजा, कानून धा० २५५।

६—खोटे तोले माप रखने वाले को। एक साल की सख्त कैद की सजा कानून धा० २६४।

७—बीमा उतरा कर पीछे से आग लगाने वाले को दो साल की सख्त कैद की सजा, कानून धा० ४२५ ।

७—बनावटी नोट बनाने वाले को दस साल की सख्त कैद की सजा कानून धा० ४८९ ।

९—सिपाई का खोटा ड्रेस पहिन ने वाले को तीन मास की सख्त कैद की सजा कानून धा० १४० ।

१०—जुआरी को मकान किराये देने वालों को दो सो रुपैये दण्ड कानून धा० २९० ।

गैर वर्त्ताव के अपराध की सजा ।

१—धर्म स्थान मे बीभित्स कार्य करने वाले को दो साल की सख्त कैद की सजा कानून धा० २९५ ।

२—किसी धर्म क्रिया मे हानि पहुँचाने वाले को एक साल की सख्त कैद की सजा कानून धा० २९६ ।

३—किसी को खोटा उपदेश देने वाले को एक साल की सख्त कैद की सजा कानून धा० १०८ ।

४—हवा बिगड़े ऐसा पदार्थ रास्ते मे डालने वाले को पांच सौ रुपये दण्ड, कानून धा० २७८ ।

५—आम रास्ते पर जुआ खेलने वाले को दो सौ रुपये दंड कानून धा० २९० ।

६—बीभित्स पुस्तक वेचने वाले को तीन मास की सख्त कैद की सजा कानून धा० २९२ ।

७—किसी की निन्दा करने वाले, छपाने वाले, व कलंक देने वाले को दो साल की सख्त कैद की सजा कानून धा० ४९९ ।

(छ काय सिद्धि भाग १)

(तर्क, अनुमान और वैज्ञानिक दृष्टिएँ)

सुमति—भाई जयत, छ काय क्या ।

जयत—सर्वज्ञ प्रभु ने ससारी जीवों को छ प्रकार मे पहिचाना है। उन देह धारी जीवो को छकाय कहते है। सिद्ध (मुक्त) जीवो के सिवाय सारे ससारी जीव छकाय मे आ जाते हैं।

सुमति—छकाय के नाम कहोगे भाई ?

जयत—मित्र सुमति सुनो, १ पृथ्वी काय (माटी पत्थर आदि मे रहने वाले जीव), २ अपकाय (जल के जीव), ३ तेउकाय (अग्नि के जाव), ४ वाउकाय (हवा के जीव) ५ वनस्पतिकाय (लीलोतरी, कदमूल, काई के जीव), और ६ त्रसकाय (हिलते डुलते जीव-बेइन्द्रिय से पञ्चेन्द्रिय तक),

सुमति—तो भाई क्या त्रसकाय के सिवाय दूसरे जीव हिलते डुलते नही।

जयत—ना, भाई, ! दूसरे सब जीव एक स्थान मे पड़े रहते हैं। इसीलिए इन जीवो को स्थावर (स्थिर रहने वाले) जीव कहते हैं। वे आपसे आप हिलडुल नहीं सकते।

सुमति—भाई जयत ! पृथ्वी आदि स्थावर (स्थिर रहने वालो) मे जीव है क्या ? उनकी प्रतीति कैसे हो ? वे दिखाई तो देते नही. फिर मानने मे कैसे आवे।

जयत—भाई, अपना ज्ञान ऐसा निर्मल नही कि जिमसे अपन सब जान सके। यूरोप और अमेरिका की हकीकत समाचार

पत्रो मे पढ़कर हम सच मानते हैं। वेडरो के कथन को भी सच मानते हैं। इसी पकार छ काय का स्वरूप तीर्थकर प्रभु जैसे सर्वज्ञ बतागए है और गणधरो ने यह स्वरूप शास्त्रो में गूँथा है। ऐसे महापुरुषो के वचनो पर अपने को विश्वास रखना चाहिये।

सुमति—मित्रवर माना कि अपन तो विश्वास (श्रद्धा) रक्खेगे लेकिन दूसरों के दिल मे यह बात कैसे जमाई जाय ? अभी तो विज्ञान का जमाना है। लोक प्रत्यक्ष प्रमाण मांगते हैं। उसका फिर क्या ?

जयंत—भाई, विश्वास रखे बिना तो काम ही नहीं चलता। बडो के वचन पर विश्वास न हो तो सच्चे मा बाप कौन है, यह भी मालूम न हो सकता। इसलिए अपने वीतराग देव के वचन पर श्रद्धा रखनी चाहिए। साथ यह भी जरूरी है कि इस बात को तर्क और प्रमाण से भी सिद्ध करने का भी प्रयत्न करे।

छ काय (भाग २)

सुमति—सुज्ञ बन्धु ! आपका कहना ठीक है। मुनि महाराज भी फरमाते हैं कि सच्चे (निर्दोष और निस्पृह) देव, गुरु धर्म पर श्रद्धा रखना ही समकित का लक्षण है, परन्तु भाई, अभी के जमाने मे केवल श्रद्धा ही से काम नहीं चलता। इसलिए बाहिर के प्रमाण से आप मुझे छ काय जीवो की सिद्धि करके बताओ, ऐसा मैं इच्छुक हूँ।

जयंत—जिज्ञासु भाई, सुन ! पृथ्वी काय में चैतन्य (जीव) हैं, इस बात की सिद्धि के लिए ये प्रमाण हैं .—

१—जैसे मनुष्य के शरीर का घाव भरता है वैसे ही खोदी हुई खानें आपसे आप भर जाती हैं।

२—जैसे मनुष्य के पाँव का तला घिसता और बढ़ता है वैसे ही जमीन (पृथ्वी) भी रोजाना घिसती और बढ़ती है।

३—जिस तरह बालक बढ़ता है वैसे पर्वत भी धीरे-धीरे बढ़ते मालूम होते हैं।

४—लोह चुम्बक लोह को खींचता है, यह बात उसकी चैतन्य शक्ति को प्रकट करती है। मनुष्य को तो लोह को लेने के लिए उसके पास जाना पड़ता है जब कि लोह चुम्बक तो लोह को आपसे आप खींच लेता है।

५—पथरी का रोग हो जाता है तो बताया जाता है कि मूत्राशय में सचेत कंकर बढ़ता है।

६—मच्छी के पेट में रहा हुआ मोती भी एक प्रकार का पत्थर होता है और वह भी बढ़ता है।

७—मनुष्य के शरीर में हड्डी होती है लेकिन उसमें जीव होता है उसी प्रकार पत्थर में भी होता है।

सुमति—ज्ञानीमित्र पृथ्वी काय में जीव है, यह साबित करने के लिए आपने तर्क अनुमान से ठीक प्रमाण बताए। अब अप-काय के लिए कोई प्रमाण बताने की कृपा करें।

जयंत—प्रिय मित्र सुन। अप (पानी) काय जीव की सिद्धि के लिए ये प्रमाण हैं

१—जिस तरह अंडे में रहे हुए प्रवाही पदार्थ में पञ्चेन्द्रिय पक्षी का पिण्ड होता है वैसे ही प्रवाही पानी भी जीवों का पिण्ड रूप है।

२—मनुष्य तथा तिर्यंच भी गर्भ अवस्था की शुरुआत मे प्रवाही (पानी) रूप होते हैं उसी तरह पानी मे भी जीव होता है ।

३—जैसे शीत काल मे मनुष्य के मुख मे से भाफ निकलती है वैसे ही कूए के पानी से भी गर्म भाफ निकलती है

४—जैसे शरदी मे मनुष्य का शरीर गर्म रहता है वैसे ही कूए का पानी भी गर्म रहता है ।

५—गरमी मे जैसे मनुष्य का शरीर शीतल रहता है वैसे ही कूए का जल भी शीतल रहता है ।

६—मनुष्य की प्रकृति मे जैसे शरदी या गरमी रही हुई है वैसे ही पानी मे भी, ऐसी ही प्रकृति है ।

७—जैसे गाय का दूध नित्य निकालने ही से स्वच्छ रहता है और नित्य न निकालने से बिगड़ता है वैसे ही कूए का पानी रोज निकालने से स्वच्छ और सुन्दर रहता है और न निकालने से बिगड़ जाता है ।

८—जैसे मनुष्य शरीर शरदी मे अकड़ जाता है वैसे ही शर्दी मे पानी ठण्डा होकर बर्फ जम जाता है ।

९—जैसे मनुष्य बाल, युवा और वृद्ध अवस्था में रूप बदलता है वैसे ही पानी की भाफ, बरसात और बर्फ के रूप में अवस्था पलटती है ।

१०—जैसे मनुष्य देह गर्भ मे रह कर पकता है वैसे ही पानी बादल के गर्भ मे छः मास रहकर पकता है । अपक्व अवस्था मे कच्चे गर्भ की तरह ओले (गड़े) गिरते हैं ।

छ काय (भाग ३)

सुमति—ज्ञानी बन्धु ! पृथ्वी और अपकाय मे जीव हैं, यह बात आपने ऐसी सरल रीति से समझा दी है कि यह मेरे दिल मे बहुत जल्दी उतर गई, परन्तु भाई ! मुझे माफ करना, अग्नि से तो अपन लोग जल मरते हैं ऐसे स्थान मे जीव कैसे हो सकते हैं ? अगर ऐसा है तो तेउकाय मे जीवो की सिद्धि करके बताने की कृपा करें।

जयत—हा भाई ! इस में शका की कोई बात नही। अग्नि भी फिर जीवो का पिण्ड है। अग्नि श्वासोश्वास विना नहीं जी सकती, उसके कारण सुन —

१—जैसे बुखार में गर्म हुए शरीर में जीव रह सकता है वैसे ही गर्म आग मे भी जीव रह सकते हैं।

२—जैसे मृत्यु होने पर प्राणी का शरीर ठडा पड जाता है वैसे ही अग्नि बुझने से (जीवो के मरने से) ठडी पड जाती है।

३—जैसे आगिए के शरीर में प्रकाश है वैसे ही अग्नि काय के जीवो मे प्रकाश होता है।

४—जैसे मनुष्य चलता है वैसे अग्नि भी चलती है (आग फैल कर आगे बढ़ती है)।

५—*जैसे प्राणी मार हवा से जीते हैं वैसे ही अग्नि

---

*धधकते हुए कण्डे यदि तुरत ढक दिए जायँ तो बुझ कर कोयला हो जाते हैं और उघाडे हों और हवा मिलती रहे तो कुछ समय तक जीव जीवित रह सकते हैं, अन्त में अग्नि के जीव मरने पर राख हो जाती है।

२—मनुष्य तथा तिर्यंच भी गर्भ अवस्था की शुरुआत मे प्रवाही (पानी) रूप होते हैं उसी तरह पानी मे भी जीव होता है ।

३—जैसे शीत काल मे मनुष्य के मुख मे से भाफ निकलती है वैसे ही कूए के पानी से भी गर्म भाफ निकलती है

४—जैसे शरदी मे मनुष्य का शरीर गर्म रहता है वैसे ही कूए का पानी भी गर्म रहता है ।

५—गरमी में जैसे मनुष्य का शरीर शीतल रहता है वैसे ही कूए का जल भी शीतल रहता है ।

६—मनुष्य की प्रकृति मे जैसे शरदी या गरमी रही हुई है वैसे ही पानी मे भी, ऐसी ही प्रकृति है ।

७—जैसे गाय का दूध नित्य निकालने ही से स्वच्छ रहता है और नित्य न निकालने से बिगड़ता है वैसे ही कूए का पानी रोज निकालने से स्वच्छ और सुन्दर रहता है और न निकालने से बिगड़ जाता है ।

८—जैसे मनुष्य शरीर शरदी मे अकड़ जाता है वैसे ही शर्दी मे पानी ठण्डा होकर बर्फ जम जाता है ।

९—जैसे मनुष्य बाल, युवा और वृद्ध अवस्था मे रूप बदलता है वैसे ही पानी की भाफ, बरसात और बर्फ के रूप में अवस्था पलटती है ।

१०—जैसे मनुष्य देह गर्भ मे रह कर पकता है वैसे ही पानी बादल के गर्भ मे छ. मास रहकर पकता है । अपक अवस्था में कच्चे गर्भ की तरह ओले (गड़े) गिरते हैं ।

छ काय (भाग ३)

सुमति—ज्ञानी बन्धु ! पृथ्वी और अपकाय मे जीव हैं, यह बात आपने ऐसी सरल रीति से समझा दी है कि यह मेरे दिल मे बहुत जल्दी उतर गई, परन्तु भाई ! मुझे माफ करना, अग्नि से तो अपन लोग जल मरते हैं ऐसे स्थान में जीव कैसे हो सकते हैं ? अगर ऐसा है तो तेउकाय में जीवों की सिद्धि करके बताने की कृपा करें।

जयत—हा भाई ! इस में शंका की कोई बात नही। अग्नि भी फिर जीवो का पिण्ड है। अग्नि श्वासोश्वास बिना नही जी सकती, उसके कारण सुन —

१—जैसे बुखार में गर्म हुए शरीर में जीव रह सकता है वैसे ही गर्म आग में भी जीव रह सकते हैं।

२—जैसे मृत्यु होने पर प्राणी का शरीर ठडा पड़ जाता है वैसे ही अग्नि बुझने से (जीवों के मरने से) ठंडी पड़ जाती है।

३—जैसे आगिए के शरीर में प्रकाश है वैसे ही अग्नि काय के जीवों में प्रकाश होता है।

४—जैसे मनुष्य चलता है वैसे अग्नि भी चलती है (आग फैल कर आगे बढ़ती है)।

५—*जैसे प्राणी मात्र हवा से जीते हैं वैसे ही अग्नि

*धधकते हुए लकडे यदि तुरत ढक दिए जायँ तो बुझ कर कोयला हो जाते हैं और उघाडे हों और हवा मिलती रहे तो कुछ समय तक जीव जीवित रह सकते हैं, अन्त में अग्नि के जीव मरने पर राख हो जाती है।

भी हवा से जीती है (विना हवा के जलती हुई आग अथवा दीपक बुझ जाता है ।)

६—जैसे मनुष्य आक्सिजन (प्राण वायु) लेता है और कार्बन (विष वायु) वाहिर निकालता है वैसे ही अग्नि भी अक्सिजन लेकर कार्वन वाहिर निकालती है ।

७—कोई जीव अग्नि की खुराक लेकर जीते हैं जैसे, भरतपुर के पास एक गाँव मे एक बछड़ा घास के वदले आग खाता है ।

मारवाड़ के रेगिस्तान मे विना पानी सख्त गर्मी मे लाखो चूहे जीते हैं ।

चूने की भट्टी के चूहे अग्नि ही में जीते है । फिनिक्स पक्षी को भी अग्नि मे पड़ने से नवजीवन मिलता है । आम्र, नीम आदि वृक्ष ग्रीष्म ऋतु मे) सख्त ताप मे ही फलते-फूलते हैं ।

जिस प्रकार दूसरे जीव गर्मी के वढ़ने पर तथा गर्मी मे रह सकते हैं उसी प्रकार अग्नि काय के जीव अग्नि मे रह सकते हैं ।

सुमति—ठीक है भाई । अब वायुकाय मे जीव है उनकी सिद्धि कृपा कर बतानी चाहिये ।

जयंत—वाउकाय (हवा पवन) भी जीवो का पिण्ड रूप है और यह बात प्रत्यक्ष सिद्ध है ।

१—हवा हजारो कोस चल सकती है और वह एरोप्लेन (हवाई जहाज–विमान) को चलने की गति दे सकती है ।

२—हवा दशो दिशाओ मे स्वतंत्र वेग से पहुँच सकती है और बड़े वृक्ष, महलातो को उखाड़ गिरा सकती है ।

३—हवा अपना रूप छोटे से बड़ा और बड़े से छोटा कर सकती है।

४—हवा मे प्रत्येक स्थान में असंख्य उड़ते हुए जीव हैं, यह विज्ञान ने सिद्ध कर दिया है। सूई के अग्र भाग जितनी हवा मे लाखों जीव बैठ सकते हैं। उन्हें थेक्सस कहते हैं। भगवान ने तो पहिले वायुकाय में जीव बताए है और उन जीवों की दया पालने ही के लिए साधु लोग मुँह पर मुँहपत्ति रखते हैं और इस प्रकार वायुकाय की रक्षा करते हैं। श्रावकों के लिए भी सामायिक, पोषध आदि धार्मिक क्रिया करते समय तथा उसी प्रकार साधुओं के साथ बात चीत करते वक्त भी मुँहपत्ति रखने की आज्ञा है।

छ काय (भाग ४)

सुमति—प्रेमी बन्धु! आपने अपार कृपा करके पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु काय में रहे हुए जीवों की सिद्धि कर दिखाई। अब कृपा करके वनस्पति में रहे हुए जीवों की सिद्धि कर बतावें तो मैं आभारी होऊँगा।

जयंत—ज्ञान प्रेमी भाई, पृथ्वी आदि स्थावर जीवों आदि के सम्बन्ध की सारी दलीलें आप समझ गए हैं तो वनस्पति के जीवो की सिद्धि समझने में देर नहीं लगेगी, क्यो कि आज विज्ञान में निपुण सर जगदीशचंद्र बोस जैसों ने अनेक सभाएँ कर के यह आम तौर पर सिद्ध कर दिया है कि वनस्पति भी जीवों का पिण्ड है।

सुन—१—मनुष्य जिस तरह माता के गर्भ में पैदा होता है

और अमुक समय तक गर्भ मे रहने के बाद बाहर आता है (जन्म लेता है)। उसी प्रकार वनस्पति भी पृथ्वी माता के गर्भ मे बीज को अमुक समय तक रखने पर ही अंकुर रूप से बाहिर आती है।

२—मनुष्य जैसे छोटी उमर से धीरे २ बढ़ता है वैसे ही वनस्पति भी बढती है।

३—मनुष्य जैसे बाल, युवा और वृद्ध अवस्था पाता है वैसे ही वनस्पति भी तीनो अवस्था पाती है।

४—जैसे शरीर से किसी अग के जुदा होने पर वह निर्जीव हो जाता है वैसे ही वनस्पति डाली, पत्ते आदि के निज से जुदा होने से निर्जीव हो जाती है।

५—जैसे मनुष्य के शरीर मे छेद होने से लोहू निकलता है वैसे ही वनस्पति मे छेद होने से प्रवाही रक्त निकलता है।

६—जैसे खुराक न मिलने से मनुष्य सूख जाता है और खुराक से पुष्ट बनता वैसे ही वनस्पति खुराक मिलने से चौमासे मे विकसित होती तथा खुराक कम मिलने पर सूख जाती है।

७—जैसे मनुष्यादि श्वासोश्वास लेते हैं वैसे ही वनस्पति भी श्वासोश्वास लेती है (दिन मे कार्बन ले कर आक्सीजन निकालती है तथा रात मे आक्सीजन लेकर कार्बन निकालती है)

८—अनार्य मनुष्य जैसे मासाहारी होते हैं वैसे ही कई वनस्पति मक्खी, पतंगिए आदि खाती हैं। (जन्तुओ के पत्तो पर बैठते ही प[illegible] वध हो जाते हैं।)

९—चन्द्रमुखी कमल चन्द्रमा के तथा सूर्यमुखी सूर्य के उगने से खिलते तथा अस्त होने पर बंध होते हैं ।

१०—डाक्टर जगदीशचन्द्र बोस ने प्रत्यक्ष रीति से सिद्ध कर रखा है कि:—

"वनस्पति सुन्दर राग के मीठे शब्दों से खिलती है"

"अनिष्ट राग और उलहने से दुखी होती है"

"लजालु आदि वृक्ष छूते ही संकुचित होते हैं"

"मूल मे खुराक और पत्तों मे हवा लेकर जीते हैं" ऐसे कारणों से विज्ञान ने सिद्ध किया है कि वनस्पति काय मे जीव है।

त्रस काय में दो, तीन, चार और पाँच इन्द्रिय वाले जीवों का समावेश होता है । इसमें जीव हैं, यह विश्वविख्यात है ।

कीडे, लट, जोंक, शंख, सीप को दो इन्द्रियों, जू, लीख कीडे, मकोड़ों को तीन, मक्खी, मच्छर, बिच्छू आदि को चार तथा मनुष्य, पशु, पक्षियों को पाँच इन्द्रियाँ होती हैं ।

उपवास और अमेरिकन डॉक्टर्स

(उपवास चिकित्सा में से)

(१) पेट पूर्ण होने से भोजन से स्वयं अरुचि होती है, फिर भी अज्ञानी लोक आचार चटनी और मसाला के निमित्त से ज्यादा भोजन करके दाट लगाते हैं । वह विष समान हानि करता है ।

(२) शरीर खुद खराब वस्तुको स्थान नही देता है, मल मूत्र सेडा पसीना आदि को उत्पन्न होते ही फेंक देता है ।

(३) बारी बारणे, बंध करके सोने के बाद बारी खोलने से शरदी लगती है किन्तु हवा मे सोने से शरदी नही लगती है। ज्यादा भोजन करने से मज्ज सडने से दिमाग मे दर्द व शनेखम आदि होते हैं।

(४) शरीर के लिये हवा, बहुत कीमती पदार्थ है हवा से शरीर को कभी नुकसान नही होता है।

(५) शरीर मे अन्न जलादि के सिवाय सर्व वस्तु विप का काम करती हैं।

(६) शरीर अपने भीतर रात्रि दिन झाडु देकर रोग को बाहिर निकालता है।

(७) उपवास (लंघन) करने से जठराग्नि रोग को भस्म करती है।

(८) बुखार आने के पहिले बुखार की दवा लेना यह निकलते विष को शरीर मे बढाने के समान है।

(९) ऐसा एक भी रोग नहीं है जो उपवास (लंघन) से न मिट सके।

(१०) स्वाभाविक मृत्यु से दवाई से ज्यादा मृत्यु होती है।

(११) एक दवाई शरीर मे नये बीस रोग पैदा करती है।

(१२) अनुभवी। डाक्टरो को दवाई का विश्वास नहीं है।

(१३) बिना अनुभव वाले डाक्टर दवाई का विश्वास करते है।

(१४) दुनिया को निरोगी बनाने का बड़े बड़े डाक्टरों ने एक इलाज ढूंढा है। वह यह है कि दवाइओं को जमीन में गाड़ दो।

(१५) उपवास करने से मस्तिष्क (मगज) शक्ति घटती नहीं है।

(१६) मनुष्य का खान पान पशु संसार से भी बिगड़ा हुआ है।

(१७) ज्यादा खाने से शरीर में विष और रोग बढता है।

(१८) दुष्काल की मृत्यु संख्या से ज्यादा खाने वाले की मृत्यु संख्या विशेष होती है।

(१९) ज्यादा खाना अन्न को विष और रोग रूप बनाने के समान है।

(२०) कचरे से मच्छर पैदा होते है और उसको दूर करना परम जरूरी है। उसी तरह ज्यादा खाने से रोग रूप मच्छर पैदा होते हैं और उनको भी दूर करना परम आवश्यक है। दूर करने का एक सरल उपाय उपवास (लंघन) है।

(२१) ज्यों ज्यों अनुभव बढ़ता है त्यो त्यों डाक्टरों को दवाई के अवगुण (नुकसान) प्रत्यक्ष रूप से मालूम होते जाते हैं।

(२२) बड़े बड़े डाक्टरों का कहना है कि रोग को पहिचानने में हम सर्वथा असमर्थ हैं। केवल अन्दाज से काम लेते हैं।

(२३) रोग उपकारक है। वह चेताता है कि अब नया कचरा शरीर में मत डालो, उपवास से पुराने को जला डालो।

(२४) शरीर को सुधारने वाला डाक्टर शरीर ही है। दवाई को सर्वथा छोड़ विवेक पूर्वक उपवास करने से सौ रोगी में निव्वे रोगी सुधरते हैं वही दवाई लेवें तो निव्वे रोगी ज्यादा बिगड़ते हैं।

(२५) जैसे शरीर मे घाव स्वयं भर जाता है वैसे सब रोग विना दवाई के मिट जाते हैं।

(२६) शरीर मे उत्पन्न हुए विष को फेंकने वाला रोग है। घर के मेले व कचरे को।ढांकने तुल्य दवाई है जो थोड़े समय अच्छा दिखाव करके भविष्य मे भयंकर रोग फूट निकलते हैं जब कि शुद्ध उपवासो से रोग के तत्त्व नष्ट होते हैं। यह मेले कचरे को फेंकने के तुल्य है। कचरा फेंकने मे प्रथम थोड़ा कष्ट पीछे बहुत सुख इसी प्रकार तपश्चर्या मे थोड़ा कष्ट पड़ता है। कचरा ढांकने मे पहिले थोड़ा आराम पीछे से बहुत दुःख। इसी प्रकार दवाइयों से रोग ढांकने मे प्रथम लाभ पीछे से बहुत दु ख निरन्तर भोगने पड़ते हैं।

(२७) ज्यो दवाई बढ़ती जाती है त्यों रोग भी बढ़ते जाते हैं। मनुष्य दवाइयों की आतुरता व मोह छोड़कर कुदरत के नियम पालेगे तब ही सुखी होवेंगे।

(२८) दवाई से रोग नष्ट होता है; यह समझ शरीर का नाश करने वाली है। आज इसी से जनता रोगो से सड रही है।

(२९) सरदी लगने पर तम्बाकू आदि दवाई लेना विष को भीतर रखना है।

(३०) एडवर्ड सातवें बादशाह का डाक्टर कह गया है कि डाक्टर लोग रोगी के दुश्मन हैं।

(३१) अज्ञान के जमाने मे दवाई का रिवाज शुरू हुआ था।

(३२) दवाइएँ विप की वनती हैं और वे शरीर में विष वढ़ाती हैं।

(३३) शरीर मे विष डालकर सुखी कौन हो सकता है।

(३४) जुल्लाब लेने से रोग भीतर रह जाता है किन्तु उपवास से रोग जड़ मूल से नष्ट होकर आराम होता है।

(३५) उपवास करने वाले रोगी को मुँह मे और जीभ पर उत्तम स्वाद का अनुभव होवे तब रोग का नष्ट होना समझना चाहिए।

(३६) शरीर मे जो रोग कार्य करता है वही काम दवाई करती है।

(३७) अनुभवी डाक्टर कहते हैं कि दवाई से रोगी ज्यादा बिगड़ते हैं।

(३८) दवाई न देनी यह रोगी पर महान् उपकार करने के समान है। केवल कुदरती पथ्य हवा-भावना आदि परम उपकारक हैं।

(३९) ज्यो-ज्यों डाक्टर्स बढ़ते हैं त्यो-त्यो रोग और रोगी बढ़ते जाते हैं।

(४०) डाक्टर घट जायँ तो रोग और रोगी भी घट जायँ।

(४१) रोगी के पेट मे अन्न न डालने से रोग विचारा आप ही स्वय नष्ट हो जाता है।

(४२) दवाई को निकम्मी समझे वही सच्चा डाक्टर है।

(४३) हाथ, पैर आँख को आराम देते हो वैसे उपवास करना यह जठर-पेट को आराम देना है।

(४४) अमेरिका में डाक्टर लोग रोगी को उपवास कराके

रात्रि को देखते रहते हैं कि शायद यह गुप्त रीति से खाना खा न ले।

(४५) तीन दिन के बाद उपवास मे कठिनाई मालूम नही पड़ती है।

(४६) टूटी हड्डी का जुड़ना और बन्दूक की गोली की मार का भी उपवास से आराम पहुँचता है।

(४७) पशु पत्ती भी रोगी होने के बाद तुरत आराम न न हो वहाँ तक खाना पीना छोड़ देते हैं।

(४८) कफ, पित्त और वायु मे बधघट होने से रोग होता है।

(४९) वायु का सात दिन मे, पित्त का दश दिन मे, कफ का रोग बारह दिन में अन्न न लेने से (उपवास करने से) आराम होता है और रोग नाश हो जाता है।

(५०) दवाई से थककर अमेरिकन डॉक्टरो ने उपवास की अनादि सिद्ध दवाई शुरू की है।

(५१) जो दवाई नही करता है वह सब रोगियो से ज्यादा सुखी है।

(५२) भूख न लगना रोग नहीं है किन्तु जठराग्नि की नोटिस है कि पेट में माल भरा हुआ है। नये माल के लिए स्थान नहीं है। एकाध उपवास कीजिएगा।

(५३) उपवास करने से शरीर दुखता है, चक्कर आते है। मुँह का स्वाद बिगड़ता है। इसका प्रयोजन यह है कि शरीर में से रोग निकल रहा है।

(५४) लकवे सरीखे भयंकर रोग भी उपवास से मिट जाते हैं।

(५५) गरमी में तीन उपवास से तो रोग नष्ट होता है वही रोग शीत ऋतु मे दो उपवास से नष्ट होता है।

मनुष्यत्व प्रकट करने की शिक्षा

(१) गरीबों से ज्यादा ब्याज लेकर धर्म ध्यान करने वाले पचेंद्रिय की हिंसा करके स्थावर जीवों की दया पालने वाले के समान हैं। ऐसे धन से ऐश आराम करने वाले पंचेन्द्रिय के खून को पीकर आनद मानने वाले के समान हैं।

बाणया थारी बांण, कोई नर जाणे नही।
पाणी पीवे छांण, अण छाणयो लोहू पिए ॥ १ ॥

(२) घर पर गाय रखने के आरंभ से डरना और बाजारू दूध दही घी खाना यह व्याह के आरंभ से डरकर वेश्या गमन करने के समान है।

(३) कीमती अन्न वस्त्र यात्रा और मकान का उपयोग करने से 'निकाचीत' कर्म बंधते क्योंकि ऐसी वस्तु में तीव्र आसक्ति रहती है, और किसी आत्मा के सुपात्र को दान देते हुए भी हाथ धूजते हैं।

(४) स्त्री को पैर की जूती मानने वाले तुम्हारा जन्म कहाँ से हुआ ?

(५) भगी नीच ? कि उससे वैसा काम लेकर अपमान करने वाला ?

(६) दुष्काल का मुख्य कारण श्रीमन्तो की फिजूल खर्ची है (व्याह के और नुगते के जीमण, मुख्य कारण हैं) ।

(७) देशावर जाते समय पुत्र के पीछे रोना अमंगल, वैसे मृत्यु के वाद रोना भी महा अमंगल है ।

(८) मृत्यु समय पश्चाताप करना होगा कि मैने ठोस ठोस कर खाया, तिजोरी मे जमा किया । किन्तु दुखी, दरिद्री और गरीब को न खिलाया । सुमार्ग मे दान न दिया ।

(९) हाथ से काम करने मे कष्ट मानने वाली सेठानियो ' यह कष्ट क्या प्रसूति समय से भी ज्यादा है ? हाथों से काम करना बन्द करने ही से प्रसूति की वेदना होती है यह काम कंकरी की मार से बच कर गोली की मार मजूर करने तुल्य है ।

(१०) एक बैल गाड़ी बनाने की क्रिया, और रेल के डिब्बे को बनाने की क्रिया का क्या विचार भी किया है ?

(११) खादी मे रेटिये की क्रिया और मिल मे बनते हुए कपड़े में सर्व मिल की क्रिया लगती है ।

(१२) भिखारी श्रीमंत या गराब ?

(१३) भिखारी सूखी रोटी के टुकड़े के लिये भीख माँगता है जब कि श्रीमान सीरे पूड़ी के लिए । भीखारी मॉग कर लेता है जब कि आज श्रीमंत प्रायः झूठ कपट चोरी से जगत् का धन हरते हैं और कुमार्ग भोग में लगाते है ।

(१४) लुटेरे से शाहूकार का त्रास जगत में बढ़ गया है । इसी से सुख सम्पत्ति और शान्ति घट रही है ।

(१५) कचहरी मे लूटेरों से शाहूकारो के केस ज्यादा चलते हैं ।

(१६) गर्भ बाहिरआने के बाद बालक को दूध न पाने वाली माँ पापिन कि शिक्षा न देने वाली ?

(१७) नीति का धन दूध के समान और अनीति का धन खून के समान है।

(१८) दया देवी का दर्शन धर्म स्थान मे नहीं किन्तु कसाई खाने में होते हैं। कारण वहाँ कठोर हृदय भी अनुकंपा से पिगल जाता है

(१९) किसान खेती के पहिले बीज की जांच करता है। क्या आपने कभी व्याह के समय संतान की तंदुरस्ती का विचार किया है ?

(२०) एक अशिक्षीत स्त्री देश का नाश करती है और शिक्षित स्त्री देश का उद्धार कर सकती है।

(२१) सौ मनुष्य की पैदाइश लूटने वाला एक राक्षस या अन्य कोई ?

(२२) सौ मनुष्य जितना भोजन खर्च करने वाला एक राक्षस या अन्य कोई ?

(२३) जो रस्सी आंत की बनी हुई है उसको क्या आप कंदोरा रूप से पहिन सकते हो ?

(२४) जिस वस्त्र के बनने मे पंचेद्रिय जीवों की चरबी लगती है, उसको क्या आप पहिन सकते हो ?

(२५) जुगता धनवान को निर्धन और निर्धन को भिखारी, (मंगता) बनाता है।

(२६) शास्त्र—श्रवण—क्रिया गर्भ धारण समान है जिसे शुद्ध मन से करनी चाहिये। उसका पालन प्रसव-तुल्य है। कुज्ञान

कुसंतान और सुशील सुसंतान तुल्य है।

(२७) समय पलटता ही है किन्तु वृत्तिएँ पलटती है क्या?

(२८) वेदाती ईश्वर को और जैनी कर्म को प्रधान पद देकर पुरुषर्थ हीन हो रहे हैं। यह तत्त्व का दुरुपयोग है, शास्त्र का शस्त्र बनाना है

(२९) ज्ञान प्राण है और क्रिया शरीर है।

(३०)प्रातः समय प्रभु का नाम लेते हो या तम्बाकू, बीड़ी, चाय आदि कुव्यसनो का ?

(३१) महावीर के भक्त शूरवीर और धीर थे। सुदर्शन श्रावक ने मोगरपाणी यक्ष का सामना किया था और उसको पराजित कर भगा दिया था। निर्भय व सत्य शीलधारी पुरुष सदा अजेय होते हैं

(३२) पूर्व काल मे कन्या दान के साथ गौ दान देने का रिवाज था। आज विषय वर्धक वस्तुओ का दान दिया जाता है।

(३३) युरोपियनो ने तुम्हारा कितना अनुकरण किया? और तुमने उनका कितना अनुकरण किया ? प्राय' मौज शोक का अनुकरण किया है परंतु साथ पुरुषार्थ, धैर्य ऐक्य उदारता आदि उनके नहीं लिये।

(३४) दस मनुष्य की रक्षा करने योग्य एक युवा श्रीमंत की रक्षा के लिये दस मनुष्य नौकर चाहिये।

(३५) विलायती घी और आटा सस्ता देते है और यहाँ के घी और आटे को महँगे दाम से वे लोग खरीदते हैं इसके रहस्य-को कब समझोगे ?

(३६) दूध, दही, घी कीमती या वीर्य ?

(३७) क्या वीर्य की दूध, दही, घी जितनी भी रक्षा करते हो ?

(३८) थोकडे के ज्ञाता! आपके ज्ञान का सार क्या है। क्या घर के आस पास समुर्छिम मनुष्य तो नहीं मर रहे हैं। घर की, व देश की हालत व जैनियो की दशा को भी कभी चितारोगे? और फिजुल खर्च हटाओगे ? शिक्षा प्रचार करके न्याय नीति संपन्न सत्य, शील, पुरुषार्थ और संयम में श्रेष्ठ प्रजा तैयार करने में कितना तन धन मन अर्पण करोगे ? अंत में सब छूटेगा तो हर्ष से अच्छे क्षेत्र में बीज बो देओ, अन्यथा बीज (धन तन बुद्धि) सड़ जायँगे (नष्ट हो जायँगे) और शुद्ध व उत्तम क्षेत्र मे बीज को बोदेओगे तो अपार निपज मिलेगी।

(३९) मिथ्यात्वी हजारों ऐसे हैं जिन्होने सारी पूँजी विद्या प्रचार में देकर जिंदगी सेवा भाव में दे दी हैं, जैन श्रावक कितने ऐसे देखे हैं ?

(४०) रोज परिग्रह को पाप का मूल अनत दुःख बढ़ाने वाला, इह लोक परलोक मे भय, चिन्ता, शोक और व्याकुलता पैदा करने वाला चिंत्वन करते हो। क्या वह सच्चे हृदय की भावना हो तो जैन समाज इतनी गिरी हुई रह सकती है ?

(४१) गोद लेने का मोह इसी जन्म में अनेक दुःख का कारण प्रगट दीख रहा है फिर भी मिथ्या रूढ़ी, लोक लज्जा व अज्ञान वश कष्ट उठा कर सब धन औरों को देते हैं। क्या आप परमार्थ में खर्चना अच्छा नहीं मानते ? यदि उत्तम है तो आज से गोद लेने का त्याग कर लेवें और गोद आकर अनर्थ कारी रुढी को मदद न देवें व कलह से वचें

(४२) गोद लेना अर्थात पाप को गोद मे बिठाना है, वह पुत्र जितने विषय भोग आरभ करेगा और जितनी पीढ़ी नाम रहेगा वहाँ तक सब पाप में हिस्सा ठेट तक चला आवेगा। नाम का अन्त करने से पाप का अन्त हो जाता है।

(४३) रामलाल, वरदभान आदि कोई भी आपका नाम ले आपके समान नामधारी हजारो मनुष्य है। आपको उस नाम से क्या लाभ ?

(४४) नाम तो पुद्गल का पिड है कर्म है निश्चय से दुखदायी है उससे बचो सब लक्ष्मी को सत्य जैन धर्म का प्रचार करने में विद्या व सदाचार का पुनरोद्धार करने मे लगाने से आपका नाम अजर अमर होवेगा।

(४५) जैसा बीज खेत मे डालोगे वैसे फल लगेंगे, एक सेर ज़हर पीकर एक तोला उलटी करने से मरण से नही बच सकते, एक सेर जहर की जगह पाच सेर वमन करने से कुछ बचने की आशा है। इसी प्रकार संसार खर्च, घर खर्च से अनेक गुण उत्तम दान दोगे तो बचने की आशा है। सब जीवों को सद्बुद्धि प्राप्त होकर सचरित्र की प्राप्ति होओ, यही भावना है।

काव्य विलास

श्री परमात्म छत्तीसी

दोहे

परम देव परमातमा, परम ज्योति जगदीस ।
परम भाव उर आन के, प्रणमत हूं नमिशीस ॥१॥
एक ज्यों चेतन द्रव्य है, जिनके तीन प्रकार ।
बहिरातम अन्तर तथा, परमातम पद सार ॥२॥
बहिरातम उसको कहे, लखै न आत्म स्वरूप ।
मग्न रहे परद्रव्य में, मिथ्यावंत अनूप ॥३॥
अंतर-आतम जीव सो, सम्यगदृष्टी होय ।
चौथे अरु पुनि बारवें, गुणथानक लो सोय ॥४॥
परमातम पद ब्रह्मको, प्रकट्यो शुद्ध स्वभाव ।
लोकालोक प्रमान सब, झलकै जिनमें आय ॥५॥
बहिरातमा स्वभाव तज, अंतरातमा होय ।
परमातम पद भजत है, परमातम है सोय ॥६॥
परमातम सो आतमा, और न दूजो कोय ।
परमातम को ध्यावते, यह परमातम होय ॥७॥
परमातम यह ब्रह्म है, परम ज्योति जगदीश ।
परसे भिन्न विलोकिये, ज्योति अलख सोइ ईश ॥८॥

श्री ब्रह्मविलास में से साभार उद्धृत ।

जो परमात्मा सिद्धमें, सो ही यह तन माहिं।
मोह मैल दृग लग रहा, जिससे सूझे नाहिं ॥९॥
मोह मैल रागादिका, जा क्षण कीजे नाश।
ता क्षण यह परमातमा, आपहि लहे प्रकाश ॥१०॥
आतम सो परमातमा, परमातम सो सिद्ध।
बीचकी दुविधा मिट गई, प्रकट हुई निज रिद्ध ॥११॥
मैं ही सिद्ध परमातमा, मैं ही आत्माराम।
मैं ही ज्ञाता ज्ञेय को, चेतन मेरो नाम ॥१२॥
मैं अनंत सुख को धनी, सुखमय मुझनसभाव।
अविनाशी आनंदमय, सो हूँ त्रिभुवन राय ॥१३॥
शुद्ध हमारो रूप है, शोभित सिद्ध समान।
गुण अनंत से युक्त यह, चिदानंद भगवान ॥१४॥
जैसो सिद्ध क्षेत्रे बसै, वैसो यह तनमाहिं।
निश्चय दृष्टि निहारते, फेर रंच कुछ नाहिं ॥१५॥
कर्मन के संयोग से, भये तीन प्रकार।
एक आतमाद्रव्य को, कर्म नचावन हार ॥१६॥
कर्म संघाती आदि के, जोर न कछु बसाय।
पाई कला विवेक की, रागद्वेष बिन जाय ॥१७॥
कर्मों की जड़ राग है, राग जरे जड़ जाय।
प्रकट होय परमातमा, भैया सुगम उपाय ॥१८॥
काहे को भटकत फिरे, सिद्ध होने के काज।

राग द्वेष को त्याग दे, भैया सुगम इलाज ॥१६॥
परमातम पद को धनी, रंक भयो विललाय।
रागद्वेष की प्रीति से, जनम अकारथ जाय ॥२०॥
राग द्वेष की प्रीति तुम, भूलि करो जिय रंच।
परमातम पद ढांक के, तुमहिं किये तिरजंच ॥२१॥
जप तप संयम सब भलो, राग द्वेष जो नाहिं।
राग द्वेष के जागते, ये सब सोये जाहिं ॥२२॥
रागद्वेष के नाशते, परमातम परकाश।
रागद्वेष के जागते, परमातम पद नाश ॥२३॥
जो परमातम पद चहै, तो तू राग निवार।
देख सयोगी स्वामि को, अपने हिये विचार ॥२४॥
लाख बात की बात यह, तुझको दिनी बताय।
जो परमातम पद चहै, राग द्वेष तज भाय ॥२५॥
रागद्वेष के त्याग बिन, परमातम पद नाहिं।
कोटि-कोटि जप तप करे, सबहि अकारथ जाहिं॥२६॥
दोष है यह आत्मको, रागद्वेष का संग।
जैसे पास मजीठ के, वस्त्र और ही रंग ॥२७॥
वैसे आतम द्रव्य को, रागद्वेष के पास।
कर्मरंग लागत रहे, कैसे लहे प्रकाश ॥२८॥
इन कर्मों का जीतना, कठिन बात है मीत।
जड़ खोदे बिन नहिं मिटे, दुष्ट जाति विपरीत॥२९॥

लक्षोपक्षो के किये, ये मिटने के नाहिं।
ध्यान अग्नि परकाश के, होम देऊं तिहि मांहिं ॥३०॥
ज्यों दारू के गंजको, नर नहिं सके उठाय।
तनक आग संयोग से, क्षण इक में उड़ जाय ॥३१॥
देह सहित परमातमा, यह अचरज की बात।
रागद्वेष के त्याग तैं, कर्मशक्ति जर जात ॥३२॥
परमात्मा के भेद द्वय, रूपी अरूपी मान।
अनंत सुखमें एक से, कहने के दो स्थान ॥३३॥
भैया वह परमातमा, वैसा है तुम माहिं।
अपनी शक्ति सम्हाल के, लखो वेग ही ताहिं ॥३४॥
रागद्वेष को त्याग के, धर परमातम ध्यान।
ज्यौं पावे सुख संपदा, 'भैया' इम कल्यान ॥३५॥
संवत विक्रम भूप को, सत्रह से पंचास।
मार्गशीर्ष रचना करी, प्रथम पक्ष दुति जास ॥३६॥

कर्म नाटक के दोहे

कर्म नाट नृत्य तोड़ के, भये जगत जिन देव;
नाम निरंजन पद लह्यो, करूँ त्रिविधि तिहिं सेव ॥१॥
कर्मन के नाटक नटत, जीव जगत के मांहि।
उनके कुछ लक्षण कहूँ, जिन आगम की छांहिं ॥२॥
तीन लोक नाटक भवन, मोह नचावन हार।

नाचत है जिव स्वांगधर, कर कर न्रत्य अपार ॥३॥
नाचत है जिव जगत में, नाना स्वांग बनाय।
देव नर्क तिरज़ंच अरु, मनुष्य गति में आय ॥४॥
स्वांग धरे ज़ब देव को, मान्त है निज देव।
वही स्वांग नाचत रहै, ये अज्ञान की टेव ॥५॥
और न को औरहि कहै, आप कहै हम देव।
अह के स्वांग शरीग का, नाचत है स्वयमेव ॥६॥
भये नरक में नारकी, करने लगे पुकार।
छेदन भेदन दुःख सहे, यही नाच निरधार ॥७॥
मान आपको नारकी, त्राहि त्राहि नित होत।
यह तो स्वांग निर्वाह है, भूल करो मत कोय ॥८॥
नित अध गति निगोद है, तहां बसत जो हंस।
वे सब स्वांग हि खेल के, विचित्र धर्यों यह वंश ॥९॥
उछर उछर के गिर पड़े, वे आवे इस ठौर।
मिथ्यादृष्टि स्वभाव धर, यही स्वांग शिरमौर ॥१०॥
कबहू पृथिवी काय में, कबहू अग्नि स्वरूप।
कबहू पानी पवन में, नाचत स्वांग अनूप ॥११॥
बनस्पति के भेद बहु, श्वास अठारह वार।
तामें नाच्यो जीव यह, धर धर जन्म अपार ॥१२॥
विकलत्रय के स्वांग में, नाचे चेतन राय।
उसी रूप परिणम गये, बरने कैसे जाय ? ॥१३॥

उपजे आय मनुष्य में, धरैं पंचेन्द्रिय स्वांग।
मद आठों में मग्न बन, मातो खाई भांग ॥१४॥
पुण्य योग भूपति भये, पाप योग भये रंक।
सुख दुख आपहि मान के, नाचत फिरे निशंक ॥१५॥
नारि नपुंसक नर भये, नाना स्वांग रमाय।
चेतन से परिचय नहीं, नाच नाच खिर जाय।
ऐसे काल अनंत से, चेतन नाचत तोहि।
'अज' हूं आप संभारिये, सावधान किन होहि ॥१७॥
सावधान जो जिव भये, ते पहुँचे शिव लोक।
नाच भाव सब त्याग के, विलसत सुख के थोक ॥१८॥
नाचत है जग जीव जो, नाना स्वांग रमंत।
देखत है उस नृत्य को, सुख अनंत विलसंत ॥१९॥
जो सुख होवे देखकर, नाचन में सुख नाहिं।
नाचन में सब दुःख हैं, सुख निज देखन मांहि ॥२०॥
नाटक में सब नृत्य है, सार वस्तु कछु नांहि।
देखो उसको कौन है? नाचन हारे मांहि ॥२१॥
देखे उसको देखिये, जाने उसको जान।
जो तुझको शिव चाहिये, तो उसको पहिचान ॥२२॥
प्रकट होत परमात्मा, ज्ञान दृष्टि के देत।
लोकालोक प्रमाण सब, क्षण इकमें लखलेत ॥२३॥
भैया नाटक कर्मतें, नाचत सब संसार।
नाटक तज न्यारे भये, वे पहुँचे भवपार ॥२४॥

॥ मन विजय के दोहे ॥

दर्शन ज्ञान चारित्र जिहं, सुख अनंत प्रतिभास ।
वंदन हो उन देव को, मन धर परम हुलास ॥१॥
मन से वंदन कीजिये, मनसे धरिये ध्यान ।
मन से आत्मा तत्त्व को, लखिये सिद्ध समान ॥२॥
मन खोजत है ब्रह्म को, मन सब करे विचार ।
मन बिन आत्मा तत्त्व का, कौन करे निरधार ॥३॥
मन सम खोजी जगत में, और दूसरो कौन ?
खोज ग्रहे शिवनाथ को, लहै सुखन को भौन ॥४॥
जो मन सुलटे आपको, तो सूझे सब सांच ।
जो उलटै संसार को, तो सब सूझै कांच ॥५॥
सत असत्य अनुभव उभय, मनके चार प्रकार ।
दोय झुकै संसार को, दो पहूँचावे पार ॥६॥
जो मन लागे ब्रह्म को, तो सुख होय अपार ।
जो भटके भ्रम भाव में, तो दुख पार न वार ॥७॥
मन से बली न दूसरो, देख्यो इहि संसार ।
तीन लोक मे फिरत ही, जात न लागे वार । ८॥
मन दासों का दास है, मन भूपन का भूप ।
मन सब बातनियोग्य है, मनकी कथा अनूप ॥९॥
मन राजा की सैन सब, इन्द्रिन से उमराव ।
रात दिनां दौड़त फिरे, करे अनेक अन्याव ॥१०॥

इन्द्रिय से उमराव जिंह, विषय देश विचरंत ।
भैया उस मन भूप को, को जीते बिन संत ॥११॥
मन चंचल मन चपल अति, मन बहु कर्म कमाय ।
मन जीते बिन आतमा, मुक्ति कहो किम थाय ॥१२॥
मन सम योद्धा जगत में, और दूसरा नाहिं ।
ताहि पछाड़े सो सुभट, जीत लहे जग मांहि ॥१३॥
मन इन्द्रिन को भूप है, ताहि करे जो जेर ।
सो सुख पावे मुक्ति के, इसमें कछु न फेर ॥१४॥
जब मन मूंद्यो ध्यान में, इन्द्रिय भई निराश ।
तब इह आत्मा ब्रह्मको, कीने निज परकाश ॥१५॥
मनसे मूरख जगत में, दूजो कोन कहाय ?
सुख समुद्र को छोड़के, विष के वन में जाय ॥१६॥
विष भक्षण से दुःख बढे, जाने सब संसार ।
तदपि मन समझे नहीं, विषयन से अति प्यार ॥१७॥
छहों खंड के भूप सब, जीत्ति किये निज दास ।
जो मन एक न जीतियो, सहे नर्क दुख वास ॥१८॥
छोड़ घास की झूंपड़ी, नहीं जगत सों काज ।
सुख अनंत बिलसंत है, मन जीते मुनिराज १९॥
अनेक सहस्र अपछरा, बत्तिस लक्ष विमान ।
मन जीते विन इन्द्र भी, सहे गर्भ दुःख आन ॥२०॥
छांड घरहि वनमें बसै, मन जीतन के काज ।

तो देखो मुनिराज ज्यों, बिलसत शिवपुर राज ॥२१॥
अरि जीतन को जोर है, मन जीतन को खाम ।
देख त्रिखंडी भूप को, पड़त नर्क के धाम ॥२२॥
मन जीते जो जगत में, वे सुख लहे अनन्त ।
यह तो बात प्रसिद्ध है, देख्यो श्री भगवंत ॥२३॥
देख बड़े आरंभ से, चक्रवर्ति जग मांहि ।
फेरत ही मन एक को, चले मुक्ति में जाहिं ॥२४॥
बाह्य परिग्रह रंच नहिं, मनमें धरे विकार ।
तांदुल मच्छ निहालिए, पड़े नरक निरधार ॥२५॥
भावन ही से बंध है, भावन ही से मुक्ति ।
जो जाने गति भाव की, सो जाने यह युक्ति ॥२६॥
परिग्रह करन मोक्ष को, इम भाख्यो भगवान ।
जिंह जिय मोह निवारियो, तिहिं पायो कल्यान ॥२७॥

ईश्वर-निर्णय दोहे

परमेश्वर जो परमगुरु, परमज्योति जगदीश ।
परमभाव उर आनके, वंदत हूं नमि शीश ॥१॥
ईश्वर ईश्वर सब कहै, ईश्वर लखे न कोय ।
ईश्वर को सो ही लखे, जो समदृष्टी होय ॥२॥
ब्रह्मा विष्णु महेश जो, वे पाये नहिं पार ।
तो ईश्वर को और जन, क्यों पावे निरधार? ॥३॥

ईश्वर की गति अगम है, पार न पायी जाय ।
वेद स्मृति सब कहत है, नाम भजोरे भाय ॥४॥
ईश्वर को तो देह नहिं, अविनाशी अविकार ।
ताहि कहै शठ देह धर, लीनो जग अवतार ॥५॥
जो ईश्वर अवतार ले, मरे बहु पुनः सोय ।
जन्म मरन जो धरत है, सो ईश्वर किम होय ॥६॥
एकनकी घा होयकैं, मरे एक ही आन ।
ताको जो ईश्वर कहैं, वे मूरख पहिचान ॥७॥
ईश्वर के सब एक से, जगत मांहि जे जीव ।
नहिं किसी पर द्वेष है, सब पैं शांत सदीव ॥८॥
ईश्वर से ईश्वर लड़े, ईश्वर एक कि दोय ।
परशुराम अरु राम को, देखहु किन जग लोय ॥९॥
रौद्र ध्यान वर्ते जहां, वहां धर्म किम होय ।
परम बंध निर्दय दशा, ईश्वर कहिये सोय ? ॥१०॥
ब्रह्मा के ग्वरशीस हो, ता छेदन कियो ईस
ताहि सृष्टिकर्ता कहे, रख्यो न अपनो सीस ॥११॥
जो पालक सब सृष्टि को, विष्णु नाम भूपाल ।
जो मार्यो इक बाण सैं, प्राण तजे ततकाल ॥१२॥
महादेव वर दैत्य को, दीनों होय दयाल ।
आपन पुनः भाग्यो फिर्यो, राख लियो गोपाल ॥१५॥
जिनको जग ईश्वर कहै, वह तो ईश्वर नाहिं ।
ये हू ईश्वर ध्यावते, सो ईश्वर घट मांहिं ॥१४॥

ईश्वर सोही आतमा, जाति एक है तंत।
कर्म रहित ईश्वर भये, कर्म सहित जगजंत ॥१५॥
जो गुण आतम द्रव्य के, सो गुण आतम माहिं।
जड़के जड़में जानिये, यामें तो भ्रम नाहिं ॥१६॥
दर्शन आदि अनंत गुण, जीव धरै तीन काल।
वर्णादिक पुद्गल धरै, प्रकट दोनों की चाल ॥१७॥
सत्यारथ पथ छोड़ के, लगे मृषा की ओर।
ते मूरख संसार में, लहै न भव को छोर ॥१८॥
भैया ईश्वर जो लखे, सो जिय ईश्वर सोय।
यों देख्यो सर्वज्ञने, यामें फेर न कोय ॥१९॥

कर्ता अकर्ता के दोहे

कर्मन को कर्ता नहीं, धरता शुद्ध सुभाय।
ता ईश्वर के चरन को, वंदू शीस नमाय ॥१॥
जो ईश्वर करता कहैं, भुक्ता कहिये कौन ?
जो करता सो भोगता, यही न्यायको भौन ॥२॥
दोनों दोष से रहित है, ईश्वर ताको नाम।
मन वच शीस नवाय के, करूं ताहि परिणाम ॥३॥
कर्मन को कर्ता है वह, जिसको ज्ञान न होय।
ईश्वर ज्ञान समूह है, किम कर्ता है सोय ॥४॥
ज्ञानवंत ज्ञानहिं करें, अज्ञानी अज्ञान।

जो ज्ञाता कर्त्ता कहै, लगे दोष असमान ॥५॥
ज्ञानी पै जड़ता कहां, कर्त्ता ताको होय।
पंडित हिये विचार के उत्तर दीजे सोय ॥६॥
अज्ञानी जड़तामयी, करे अज्ञान निशंक।
कर्त्ता भुगता जीव यह, यों भाखे भगवंत ॥७॥
ईश्वर की जिव जात है, ज्ञानी तथा अज्ञान।
जो जीव को कर्त्ता कहो, तो है बात प्रमान ॥८॥
अज्ञानी कर्त्ता कहे, तो सब बने बनाव।
ज्ञानी हो जड़ता करे, यह तो बने न न्याव ॥९॥
ज्ञानी करता ज्ञान को, करे न कहुं अज्ञान।
अज्ञानी जड़ता करे, यह तो बात प्रमान ॥१०॥
जो कर्त्ता जगदीश है, पुण्य पाप क्यों होय?
सुख दुःख किसको दीजिये? न्याय करो बुध लोय ॥११
नरकन में जिव डारिये, पकड़ पकड़ के बांह।
जो ईश्वर करता कहो, तिनको कहा गुनाह ॥१२॥
ईश्वर की आज्ञा बिना, करत न कोऊ काम।
हिंसादिक उपदेश को, कर्त्ता कहिये राम ॥१३॥
कर्त्ता अपने कर्म को, अज्ञानी निर्धार।
दोष देत जगदीश को, यह मिथ्या आचार ॥१४॥
ईश्वर तो निर्दोष है, करता भुक्ता नाहिं।
ईश्वर को कर्त्ता कहै, वे मूरख जगमाहिं ॥१५॥

ईश्वर निर्मल मुकुरवत्, तीन लोक आभास।
सुख सत्ता चैतन्य मय, निश्चय ज्ञान विलास॥१६॥
जाके गुण तामें बसैं, नहीं और में होय।
सूधी दृष्टि विलोकतें, दोष न लागे कोय॥१७॥
वीतराग वाणी विमल, दोष रहित त्रिकाल।
ताहि लखै नहिं मूढ़ जन, झूठे गुरु के बाल॥१८॥
गुरु अंधे शिष्य अंधकी, लखै न बाट कुबाट।
बिना चक्षु भटकत फिरै, खुलै न हिये कपाट॥१६॥
जोलों मिथ्यादृष्टि है, तोलों कर्त्ता होय।
सो हू भावित कर्मको, दर्वित करे न कोय॥२०॥
दर्व कर्म पुद्गलमयी, कर्त्ता पुद्गल तास।
ज्ञान दृष्टि के होत ही, सूझै सब परकाश॥२१॥
जोलों जीव न जानही, छहों काय के वीर।
तौलों रक्षा कौन की, कर है साहस धीर॥२२॥
जानत है सब जीव की, मानत आप समान।
रक्षा यातैं करत है, सबमें दरसन ज्ञान॥२३॥
अपने अपने सहज के, कर्त्ता है सब दर्व।
मूल धर्म को यह है, समझ लेहु जिय सर्व॥२४॥
'भैया' बात अपार है, कहं कहां लों कोय।
थोड़े ही में समझियो, ज्ञानवंत जो होय॥२५॥

वैराग्य-बोध के दोहे

रागादिक दूषण तजे, वैरागी जिनदेव ।
मन वच शीस नमाय के, कीजे तिनकी सेव ॥१॥
जगत मूल यह राग है, मुक्ति मूल वैराग ।
मूल दोनों के ये कहे, जाग सके तो जाग ॥२॥
क्रोध मान माया धरत, लोभ सहित परिणाम ।
येही तेरे शत्रु है, समझो आत्माराम ॥३॥
इन ही चारों शत्रु को, जो जीते जग मांहि ।
सो पावे पथ मोक्ष को, यामें धोखो नांहि ॥४॥
जो लक्ष्मी के काज तू, खोवत है निज धर्म ।
सो लक्ष्मी संग ना चले, काहे भूलत भर्म ॥५॥
जो कुटुम्ब के कारने, करत अनेक उपाय ।
सो कुटुंब अगनी लगा, तुझको देत जलाय ॥६॥
पोषत है जिस देह को, जोग त्रिविधि के लाय ।
सो तुझको क्षण एक में, दगा देय खिर जाय ॥७॥
लक्ष्मी साथ न अनुसरे, देह चले नहिं संग ।
काढ काढ सुजनहि कहे, देख जगत के रंग ॥८॥
दुर्लभ दश द्रष्टांत सम, सो नरभव तुम पाय ।
विषय सुखन के कारने, चले सर्वस्व गुमाय ॥९॥
जगहि फिरत कइ युग भये, सो कछु कियो विचार ।

चेतन चेतो अब तुम्हें, लहि नरभव अहिसार ॥१०॥
ऐसे मति विभ्रम भई, लगी विषय की धाय।
कै दिन कै छिन कै घड़ी, यह सुख थिर ठहराय ॥११॥
पीतो सुधा स्वभाव की, जी ! तो कहूं सुनाय।
तू रीतो क्यों जात है, नरभव बीतो जाय ॥१२॥
मिथ्यादृष्टि निकृष्ट अति, लखैन इष्ट अनिष्ट।
भ्रष्ट करत है सिष्ट को, शुद्ध दृष्टि दे पिष्ट ॥१३॥
चेतन कर्म उपाधि तज, राग द्वेष को संग।
ज्यों प्रगटे परमातमा, शिव सुख होय अभंग ॥१४॥
ब्रह्म कहूं तो मैं नहीं, क्षत्री भी मैं नाहिं।
वैश्य शुद्र दोनों नहीं, चिदानंद हूं मांहि ॥१५॥
जो देखें इन नयन से, सो सब बिणस्यो जाय।
उनको जो अपना कहे, सो मूरख शिरराय ॥१६॥
पुद्गल को जो रूप है, उपजे बिणसे सोय।
जो अविनाशी आतमा, सो कछु और न होय ॥१७॥
देख अवस्थो गर्भ की, कौन कौन दुःख होहि।
वहुर मगन संसार में, सो लानत है तोहि ॥१८॥
अधो शीश ऊरध चरन, कौन अशुचि आहार।
थोड़े दिन की वात यह, भूलि जात संसार ॥१९॥
अस्थि चर्म मल मूत्र में, रात दिनों को वास।
देखें दृष्टि घिनावनो, तऊ न होय उदास ॥२०॥

रोगादिक पीडित रहै, महा कष्ट जो होय।
तब हू मूरख जीव यह, धर्म न चिन्तै कोय ॥२१॥
मरन समय बिललात है, कोई न लेय बचाय।
जाने ज्यों त्यों जीजिये, जोर न कछु बसाय ॥२२॥
फिर नरभव मिलिबो नहीं, किये हु कोटि उपाय।
तातै वेगहि चेत हू, अहो जगत के राय ॥२३॥
भैया की यह बीनती, चेतन चितहि विचार।
ज्ञान दर्श चारित्र में, आपो लेहु निहार ॥२४॥

प्रश्नोत्तर ।

देव श्री अरिहन्त निरागी, दयामूल सुचि धर्म सोभागी ।
हित उपदेश गुरु सुसाधु, जे धारत गुण अगम अगाधु ॥१॥
उदासीनता सुख जग माही, जन्म मरण सम दु ख कोई नाहीं ।
आत्मबोध ज्ञान हितकार, प्रबल अज्ञान भ्रमण ससार ॥२॥
चित्त निरोध ते उत्तम ध्यान, ध्येय वीतरागी भगवान ।
ध्याता तास मुमुक्षु बखान, जे जिनमत तत्वारथ जान ॥३॥
लहि भव्यता म्होटो मान, केवल अभव्य त्रिभुवन अपमान ।
चेतन लक्षण कहिये जीव, रहित चेतन जान अजीव ॥४॥
पर उपकार पुण्य करी जाण, पर पीडा ते पाप बखाण ।
आश्रव कर्म आगमन धारे, संवर तास विरोध विचारे ॥५॥
निर्मल हस अंश जिहां होय, निर्जरा द्वादश विधि तप जोय ।
कर्म मल बंधन दुख रूप, बंध अभाव ते मोक्ष अनूप ॥६॥
पर परणति ममतादिक हेय, स्व पर भाव ज्ञान कर ज्ञेय ।
उपादेय आतमगुण वृंद, जाणो भविक महासुख कद ॥७॥
परम बोध मिथ्या दृग रोध, मिथ्या दृग दु ख हेत अबोध ।
आतम हित चिंता सुविवेक, तास विमुख जड़ता अविवेक ॥८॥
परभव साधक चतुर कहावे, मूरख जेते बन्ध बढ़ावे ।
त्यागी अचल राज पद पावे, जे लोभी ते रंक कहावे ॥९॥
उत्तम गुण रागी गुणवन्त, जे नर लहत भवोदधि अन्त ।
जोगी जश ममता नही रती, मन इन्द्रिय जीते ते जती ॥१०॥
समता रस साह्यर सो सन्त, तजत मानते पुरुष महत ।
शूर वीर जे कंद्रप वारे, कायर काम आणा शिर धारे ॥११॥

अविवेकी नर पशु समान, मानव जस घट आतम ज्ञान ।
दिव्य दृष्टि धारी जिन देव, करता तास इन्द्रादिक सेव ॥१२॥
ब्राह्मण जे ते ब्रह्म पिछाणे, क्षत्रि कर्म रिपु वश आणे ।
वैश्य हानि वृद्धि जे लखे, शुद्र भक्ष अभक्ष जे भखे ॥१३॥
अथिर रूप जाणो संसार, थिर एक जिन धर्म हितकार ।
इन्द्रि सुख छिल्लर जल जानो, श्रमन अनिन्द्री अगाध वखानो ॥१४॥
इच्छा रोधन तप मनोहार, जय उत्तम जग मे नवकार ।
संजम आतम थिरता भाव, भव सागर तरवा को नाव ॥१५॥
छतो शक्ति गोपवे ते चोर, शिव साधक ते साध किशोर ।
अति दुर्जय मन की गति जोय, अधिक कपट पापी मे होय ॥१६॥
नीच सोई पर द्रोह विचारे, ऊँच पुरुष पर विकथा निवारे।
उत्तम कनक कीच सम जाणे, हरख शोक हृदये नहि आणे॥१७॥
अति प्रचड अग्नि है क्रोध, दुरदम मान मातग गज जोध ।
विष वेली माया जग माही, लोभ समो साह्यर कोई नाहीं ॥१८॥
नीच संगति से डरिये भाई, मलिये सदा सतकूँ जाई ।
साधु संग गुण वृद्धि थाय, पापी की संगते पत जाय ॥१९॥
चपला जेम चंचल नर आयु, खिरत पान जब लागे वायु ।
छिल्लर अंजली जल जेम छीजे, इण विध जाणिम मत
कहा कीजे ॥२०॥
चपला तिम चंचल धन धान, अचल एक जग में प्रभु नाम ।
धर्म एक त्रिभुवन में सार, तन, धन, यौवन सकल असार ॥२१॥
नरक द्वार विषय नित जाणो, ते थी राग हिये नवि आणो ।
अन्तर लक्ष रहित ते अंध, जानत नहीं मोक्ष अनुबन्ध ॥२२॥
जे नवि सुणत सिद्धान्त वखान, बधिर पुरुष जग मे ते जान।

अवसर उचित बोलि नवि जाणे, ताकुँ ज्ञानी मूक बखाणे ॥२३॥
सकल जगत जननी हे दया, करत सहु प्राणि की मया ।
पालण करत पिता ते कहिये, ते तो धर्म चित्त सद्दहिए ॥२४॥
मोह समान रिपु नहीं कोई, देखो सहु अन्तरगत हो जोई ।
सुख में मित्र सकल ससार, दु ख में धर्म एक आधार ॥२५॥
डरत पाप थी पंडित सोई, हिंसा करत मूढ सो होई ।
सुखिया सन्तोषी जग मांही, जाकुँ त्रिविध कामना नाहीं ॥२६॥
जाकुँ तृष्णा अगम अपार, ते म्होटा दुखिया तनुधार ।
थया पुरुष जे विषयातीत, ते जग मांहे परम अभीत ॥२७॥
मरण समान भय नहीं कोई, चिंता सम जरा नवि होई ।
प्रवल वेदना क्षुधा बखानो, वक्र तुरग इन्द्रि मन जानो ॥२८॥
कल्पवृक्ष संजम सुखकार, अनुभव चिंतामणी विचार ।
काम गवी वर विद्या जाण, चित्रावेलि भक्ति चित्त आण ॥२९॥
सजम साध्यां सवि दु ख जावे, दु.ख सहु गयां मोक्ष पद पावे ।
श्रवण शोभ सुणिये जिनवाणी, निर्मल जिम गंगा जल पाणी ॥३०॥
करकी शोभा दान वखाणो, उत्तम भेद पंचतस जाणो ।
भुजा वले तरिए ससार, इण विध भुजा शोभ चित धार ॥३१॥

(ब्रह्मविलास) उपदेश-पच्चीसी

वसत निगोद काल वहु गये, चेतन सावधान नहीं भये ।
दिन दस निकस वहु फिर पड़ना, एते पर एता क्या करना ॥१॥
अनत जीव की एक ही काया, उपजन मरन एकत्र कहाया,
स्वास उसास अठारह मरना, एते० ॥२॥ अक्षर भाग अनंतम
कह्यो, चेतन ज्ञान इहां लो रह्यो । कौन शक्ति कर तहां निकरना,

ऐते० ॥३॥ पृथ्वी अप तेउ अरु वाय, वनसपति में वसै सुभाय। ऐसी गति में दुख वहु भरना ऐते० ॥४॥ केतो काल इहां तोहि गमो, निकसी फेर विकल त्रय भयो । ताका दुःख कछु जाय न वरना, ऐते० ॥५॥ पशु पत्ती की काया पाई, चेतन रहे वहां लपटाई । विना विवेक कहो क्यो तरना, ऐते० ॥६॥ इम तिरजंच मांही दुख सहे, सो दुःख किनहु जाहि न कहे । पाप करम ते इह गति परना, ऐते० ॥७॥ फिरहु परके नरक के मांहि, सो दुःख कैसे वरनो जाहिं । क्षेत्र गंध तो नाक जु सरना० ऐते० ॥८॥ अग्नि समान भूमि जहं कही, कितहु शीत महावन रही । सूरी सेज छिनक नहीं टरना० ऐते० ॥९॥ परम अधर्मि देव कुमारा, छेदन भेदन करहिं अपारा । तिनके बसते नाहि उवरना० ऐते० ॥१०॥ रंचक सुख जहा जीव को नाहिं, वसत याहि गति नाहि अवाहि। देखत दुष्ट महाभय डरना० ऐते० ॥११॥ पुण्य योग भयो सुर अवतारा, फिरत फिरत इह जगत मझारा, आवत काल देख थर हरना० ऐते० ॥१२॥ सुर मदिर अरु सुख सयोगा, निश दिन सुख संपति के भोगा, छिन इक मांहि तहां ते टरना० ऐते० ॥१३॥ वहु जन्मांतर पुण्य कमाया, तब कहुँ लही मनुष परजाया, तामे लग्यो जरा गद मरना, ऐते० ॥१४॥ धन जोवन सब ही ठकुराइ, कर्म योग ते नौ निधि पाइ, सो स्वप्नान्तर कासा वरना, ऐते० ॥१५॥ निश दिन विषय भोग लपटाना, समुझे नहि कौन गति जाना । हैं छिन्न काल आयु को चरना, ऐते० ॥१६॥ इन विषयन के तो दुःख दीनो, तब हुं तू तेही रसभीनो, नेक विवेक हृदे नहिं धरना, ऐते० ॥१७॥ पर संगति के तो दुःख पावे, तबहु ताको लाज न आवे, नीर संग वासन ज्यो जरना, ऐते० ॥१८॥

देव गुरु धर्म ग्रंथ न जाने, स्व-पर विवेक हृदे नहिं आने। क्यों होवे भव सागर तरना, ऐते० ॥१९॥ पाचों इन्द्रि अति बटमारे, परम धर्मधन मूसन हारे, खांहि पियहि ऐतो दुख भरना ऐते०॥२० सिद्ध समान न जाने आपा, ताते तोहि लगत है पापा, खोल देख झट पटहि उघरना, ऐते० ॥ २१ ॥ श्री जिन वचन अमल रस वानी, पीवहि क्यों नहि मूढ़ अज्ञानी, जातै जन्म जरा मृत हरना, ऐते० ॥२२॥ जो चेते तो है यह दावो, नाहीं बैठे मगल गावो फिर यह वृक्ष नरभव न फरना। ऐते० ॥२३॥ भैया विनवहि वारंवारा, चेतन चेत भलो अवतारा, है दुलह शिव नारी वरना।

दोहा—ज्ञानमयी दर्शनमयी, चारितमयी स्वभाव।
सो परमातम ध्याइये, यहै सुमोक्ष उपाय ॥ २५ ॥

इन्द्रिय दमन

दोहा—इन्द्रिन की संगति किये, जीव परे जग माँहि। जन्म मरण बहु दुख सहे, कवहु छूटे नाहि॥१॥ भोंरो पर्यो रसनाक के, कमल मुदित भये रैन। केतकी काटन वाँवियो, कवहु न पायो चैन ॥२॥ कानन की सगति किये, मृग मार्यो वन माहि। अहि पकर्यो रस कान के, किमहू छुट्यो नाहिं ॥ ३ ॥ आँखनि रूप निहार के, दीप परत है धाय। देखहु प्रगट पतग की, खोवत अपवो काय ॥४॥ रसना वस मच्छ मारियो, दुर्जन करे विसवास। यातै जगत विगुचीयो, सहे नरक दु खवास ॥५॥ फरस हिते गज वश पर्यो, वंध्यां सांकल तान। भूख प्यास सब दुख सहे, किहिं विधि कहहिं वखाण ॥६॥ पचेन्द्रिय की प्रीति सो, जीव सहे दुख घोर। काल अनन्त ही जग फिरे, कहुँ न पावे ठोर ॥७॥ मन

राजा कहिये वड़ो, इन्द्रिन को सरदार । आठ पहर प्रेरत रहे, उपजे कई विकार ॥८॥ मन इन्द्रि संगति किये, जीव परे जग जोय । विषयन की इच्छा वढ़े, कैसे शिवपुर होय ॥ ९ ॥ इन्द्रिन ते मन मारिये, जोरिये आतम मांहि । तोरिये नातो राग सों, फोरिये वलसो यांहि ॥ १० ॥ इन्द्रिन नेह निवारिये, टारिये क्रोध कषाय। धारिये संपति शास्वती, तारिये त्रिभुवन राय ॥११॥ गुण अनन्त जामे लसे, केवल दर्शन आदि । केवल ज्ञान विराजतो, चेतन चिन्ह अनादि ॥ १२ ॥ थिरता काल अनादि लो, राजे जिहँ पद मांहि। सुख अनन्त स्वामी वहे, दूजो कोउ नाहिं ॥१३॥ शक्ति अनन्त विराजती, दोष न जानहि कोय । समकित गुण कर शोभतो, चेतन लखिये सोय ॥ १४ ॥ वधे घटे कवहु नहि, अविनाशी अविकार । भिन्न रहे पर द्रव्य सों, सोचे तन निरधार॥१५ पंच वर्ण मे जो नही, नही पच रस मांहि । आठ फरस ते भिन्न है गध दोउ कोउ नाहिं ॥ १६ ॥ जानत जो गुण द्रव्य के, उपजन विनसन काल । सो अविनाशी आतमा, चिन्हु चिन्ह दयाल ॥ १७ ॥

परमात्म पद के दोहे

सकल देव मे देव यह, सकल सिद्ध मे सिद्ध । सकल साधु में साधु यह, पेख निजातम रिद्ध ॥ १ ॥ फिरे बहुत संसार में, फिर फिर थाके नाहि । फिरे जवहि निज रूप को, फिरे न चहु गति मांहि ॥ २ ॥ हरी खात हो बावरे, हरी तारि मति कौन । हरी भजो आपो तजो, हरी रीती सुख हौन ॥ ३ ॥ परमारथ परमे नहि, परमारथ निज भ्यास । परमारथ परिचय विना, प्राणी

रहे उदास ।।४।। आप पराये वश परे, आपा डार्यो खोय । आप आप जाने नहीं आप प्रकट क्यो होय ।।५।। दिनाँ दश के कारणे सब सुख डार्यो खोय । विकल भयो संसार मे, ताहि मुक्ति क्यों होय।।६।। निज चन्दा की चांदनी, जिही घट मे परकाश। तिहि घट मे उद्योत हो, होय तिमिर को नाश ।।७।। जित देखत तित चांदनी, जब निज नैनन जोत । नैन मिचत पेखे नही, कौन चांदनी होत ।।८।। जे तन सो दुख होत है, यहै अचभो मोहिं, ते तन सो ममता धरे, चेतन चेत न तोहि ।। ९ ।। जा तन सो तूं निज कहे, सो तन तो तुझ नाहि । ज्ञान प्राण संयुक्त जो, सो तन तो तुझ माहि ।। १० ।। जाकी प्रीत प्रभाव सों, जीत न कबहुँ होय । ताकी महिमा जे धरे, दुरबुद्धि जिय सोय ।। ११ ।। अपनी नव निधि छोड़के, मागत घर घर भीख । जान बूझ कुए परे, ताहि कहो कहा सीख ।। १२ ।। मूढ मगन मिथ्यात्व मे, समुझे नाहि निठोल । कानी कोडी कारणे, खोवे रतन अमोल ।। १३ ।। कानी कौडी विषय सुख, नर भव रतन अमोल । पुख पुन्य हि कर चढ्यो, भेद न लहे निठोल ।। १४ ।। चौरासी लख मे फिरे, राग द्वेष परसंग । तिन सो प्रीति न कीजिये, यहै ज्ञान को अंग ।।१५।। चल चेतन तहा जाइये, जहा न राग विरोध । निज स्वभाव परकाशिये, कीजे आतमबोध ।। १६ ।। तेरे बाग सुज्ञान है, निज गुण फूल विशाल । ताहि विलोकहु परम तुम, छाडि आल जजाल ।। १७ ।। जित देखेहु तित देखिये, पुद्गल ही सों प्रीत । पुद्गल हारे हार अरु, पुदगल जीते जीत ।। १८ ।। जगत फिरत कै जुग भये, सो कछु कियो विचार । चेतन अब किन चेतहु, नर भव लह अतिसार ।। १९ ।। दुर्लभ दस दृष्टान्त सो, सो नर भव तुम

पाय। विषय सुखन के कारणे, सर्वस चलो गँवाय ॥ २० ॥ ऐसी मति विभ्रम भई, विपयन लागत धाय। के दिन कै छिन कै घरी, यह सुख थिर ठहराय ॥ २१ ॥ करमन सो कर युद्ध तू, करले ज्ञान कमान। तान स्ववल सो परम तू, मारो मनमथ जान ॥२२॥ तुमतो पद्म समान हो, सदा अलिप्त स्वभाव। लिप्त भयो गोरस (इद्रि) विपे, ताको कौन उपाव ॥ २१ ॥ अपने रूप स्वरूप सों, जो जिय राखे प्रेम। सो निहचे शिव पद लहे, मनसा वाचा नेम ॥ २४ ॥ ध्यान धरो निज रूप को, ज्ञान माहि उर आन। तुम तो राजा जगत के, चेतहु विनती मान ॥ २५ ॥

अथ ज्ञानपच्चीसी (श्री बनारसीदासजी कृत)।

सुरनर तीर्यग योनि मे, नरक निगोद भवंत। महा मोह की नींद सो, सोये काल अनन्त ॥ १ ॥ जैसे ज्वर के जोरसो, भोजन की रुचि जाय। तैसे कुकर्म के उदय, धर्म वचन न सुहाय ॥२॥ लगै भूख ज्वर के गयै, रुचि सो लेय आहार। अशुभ गये शुभ के जगे, जाने धर्म विचार ॥ ३ ॥ जैसे पवन झकोरतें, जल में उठै तरंग। त्यों मनसा चंचल भई, परिग्रह के परसंग ॥ ४ ॥ जहा पवन नहीं संचरै, तहा न जल कलोल। त्यो सब परिग्रह त्याग लों, मनसा होय अडोल ॥ ५ ॥ ज्यो काहू विषधर डसै, रुचि सो नीम चबाय। त्यो तुम ममता सो मढे, मगन विषय सुख पाय ॥ ६ ॥ नीम रस भावे नहीं, निर्विष तन जब होय। मोह घटे ममता मिटै, विषय न वांछै कोय ॥ ७ ॥ जो सछिद्र नौका चढ़े, डूबइ अंध अदेख। त्यो तुम भव जल में परे, बिन विवेक धर भेख ॥ ८ ॥ जहां अखंडित गुण लगे, खेवट शुद्ध विचार। आतम रुचि नौका

चढै, पावहु भव जल पार ॥ ९ ॥ ज्यों अंकुश मानै नहीं, महा मत्त गजराज । त्यौं मन तृष्णा में फिरै, गणे न काज अकाज ॥१०॥ ज्यों नर दाव उपाव कैं, गही आने गज साधि । त्यों या मन वश करन को, निर्मल ध्यान समाधि ॥ ११ ॥ [1]तिमिर रोगसो नैन ज्यों, लखै और की और । त्यों तुम संशय में परे, मिथ्यामत की दौर ॥ १२ ॥ ज्यों औषध अंजन किये, तिमिर रोग मिट जाय । त्यौं सद्गुरु उपदेश तें, संशय वेग [2]विलाय ॥ १३ ॥ जैसे सब जादव जरे, द्वारावती की आग । त्यों माया में तुम परे, कहां जाहुगे भाग ॥ १४ ॥ दीपायनसो ते बचे, जे तपसी निर्ग्रंथ । तज माया समता गहो, यही मुक्ति को पंथ ॥ १५ ॥ ज्यों कुधातु के फेट सों, घट बध कंचन कांति । पाप पुण्यकरी त्यों भये, मूढातम बहु भांति ॥ १६ ॥ कंचन निज गुण नहिं तजे, [3]वान हीन के होत । घट घट अंतर आतमा, सहज स्वभाव उद्योत ॥ १७ ॥ पन्ना पीट पकाइये, शुद्ध कनक ज्यों होय । त्यों प्रगटे परमातमा, पुण्य पाप मल खोय ॥ १८॥ पर्व राहु के ग्रहण सों, [4]सूर [5]सोम [6]छवि छीन । संगति पाय कुसाधु की, सज्जन होय मलीन ॥१९॥ निंबादिक चन्दन करै, मलियाचल की वास । दुर्जन तैं सज्जन भये, रह सुसाधु के पास ॥ २० ॥ जैसे [7]ताल सदा भरे, जल आवे चहु ओर । तैसे आश्रव द्वारसों, कर्म बंध को जोर ॥ २१ ॥ ज्यों जल आवत [8]मूंदिये, सूके सरवर पानी । तैसे संवर के किये, कर्म

१–तिमिर = आंख में अंधेरी आना । २–विलाय = नाश होवे ।

३–वान = वर्ण । ४–सूर = सूरज । ५–सोम = चन्द्र । ६–छवी = प्रकाश । ७–ताल = तलाव । ८–मूंदीये = बन्ध करे । रोके ।

निर्ज्झरा जानी ॥ २२ ॥ ज्यो बूटी सयोग तैं, पारा मूर्छित होय । त्यो पुद्गल सो तुम मिले, आतम सकती खोय ॥ २३ ॥ मेल खटाइ मांजिये, पारा परगट रूप । शुक्ल ध्यान अभ्यास तें, दर्शन ज्ञान अनूप ॥ २४ ॥ कही उपदेश वनारसी, चेतन अब कछु चेतु, आप बुझावत आपको, उदय करन के हेतु ॥ २५ ॥

इति श्री ज्ञानपच्चीसी सम्पूर्णम् ॥

पंच परमेष्ठि की स्तुति तथा ध्यानादि श्री द्रव्य संग्रह छंद

चौपाई

चार घातिया कर्म निवारी । ग्यान दरस सुख बल परकास ॥
परमौदारिक तनु गुणवंत । ध्याऊँ शुद्ध सदा अरहंत ॥१॥
करम काय नासै सब थोक । देखै जानै लोकालोक ॥
लोक शिखर थिर पुरुषाकार । ध्याऊँ सिद्ध सुखी अविकार ॥२॥
दरशन ग्यान प्रधान विचार । व्रत तप वीरज पंचाचार ॥
धरैं धरावै और निपास । ध्याऊँ आचारज सुख रास ॥३॥
सम्यक् रत्न त्रय गुण लीन । सदा धरम उपदेश प्रवीन ॥
साधुनी मैं मुख करुनाधार । ध्याऊँ उपाध्याय हितकार ॥४॥
दर्शन ज्ञान सुगुण भडार । परम मुनिवर मुद्राधार ॥
साधे शिव मारग आचार । ध्याऊँ साधु सुगुण दातार ॥५॥
तन चेष्टा तजी आसन मांडी । मौनधारी चिंता सब छांडी ॥
थीर ह्वै मगन आप मे आप । यह उत्कृष्ट ध्यान निहपाप ॥६॥
जब लौ मुगति चहैं मुनिराज । तब लौ नहीं पावे शिवराज ॥
सब चिंता तज एक स्वरूप । सोई निहचै ध्यान अनूप ॥७॥

दोहा—खाना चलना सोवना, मिलना वचन विलास।
ज्यों ज्यो पच घटाइये, त्यों त्यों ध्यान प्रकाश ॥ ८ ॥

चौपाई

सम्यक् रत्न त्रय जियमांही। निज तजी और दर्व में नाहीं ॥
तातै तीनों में निह्पाप। शिव कारण यह चेतन आप ॥९॥

(दोहा) आप आप में आपको, देखे दरशन जोय।
जान पना सो ज्ञान है, थिरता चारित्रसोय ॥१०॥
अशुभ भाव निवार के, शुभ उपयोग विसतार।
सुमिति गुपति व्रत भेदसों, सो चारित व्यवहार ॥११॥

चौपाई

बाहिर परिणति चंचल जोग। अन्तर भाव समल उपयोग ॥
दोनो कियैं बढै संसार। रोकैं निह्चै चारित सार ॥१२॥
चारित निह्चै अरु व्यवहार। उभय मुक्ति कारन निरधार ॥
होंही ध्यान तैं दोनों रास। कीजे ध्यान जतन अभ्यास ॥१३॥

राग निवारण अंग

अरे जीव भव वन विषै, तेरा कौन सहाय।
जिनके कारण पचि रह्या, तेतो तेरे नाय ॥१॥
ससारी को देखिले, सुखी न एक लगार।
अब तो पीछा छोड़िदे, मत धर सिर पे भार ॥२॥
झूठे जग के कारणे, तू मत कर्म बँधाय।
तू तो रीता ही रहै, धन पैजा ही खाय ॥३॥

तन, धन संपति पाय के, मगन न हो मन मांय ।
कैसे सुखिया होयगा, सोवे लाय लगाय ॥४॥
ठाठ देख भूले मति, ए पुद्गल परयाय ।
देखत देखत थांहरै, जासी थिर न रहाय ॥५॥
लूटेंगे ज्ञानादि धन, ठग सम यह संसार ।
मीठे वचन उचारि के, मोहफाँसी गल डार ॥६॥
मोह भूत तोकों लग्यो, करे न तनक विचार ।
ना माने तो परखिले, मतलब को संसार ॥७॥
काया ऊपर थांहरे, सब सूं अधिकी प्रीत ।
या तो पहले सबन मे, देगी दगो नचीत ॥८॥
विषय दुखन को सुख गिनै, कहूं कहाँ लगि भूल ।
आप छता अंधा हुआ, जाणपणा मे धूल ॥९॥
नित प्रति दीखत ही रहे, उदै अस्त गति भान ।
अजहु न ज्ञान भयो कछु, तू तो बड़ो अजाण ॥१०॥
किसके रहे निश्चिन तू, सिर पर फिरे जु काल ।
[illegible] है तो बाध ले, पानी पहिले पाल ॥११॥
आया सो सब ही गया, अवतारादि विशेष ।
तू भी या ही जायगा, क्षण मे मीन न मेख ॥१२॥
यो अवसर फिर ना मिलै, अपनो मन नब मार ।
[illegible] दाम [illegible] दे, अब मत [illegible] उबार ॥१३॥
[illegible] गाफिल हो रहा, निवड़ा आन छगार ।
[illegible] गया, [illegible] मटे गँवार ॥१४॥
[illegible] किया नहीं, होनो विषय विकार ।
[illegible] आठे जग हटवार ॥१५॥

काज करत पर घरन के, अपना काज विगार ।
सीत निवारे जगत की, अपनी झुपरी वार ॥१६॥
नहिं विचार तैंने किया, करना था क्या काज ।
उदै होयगा कर्म फल, तब उपजेगी लाज ॥१७॥
झूठे संसारीन की, छूटेगी जब लाज ।
इनसों अलग होयगा, तब सुधरेगा काज ॥१८॥
अपनी पूँजी सू करौ, निश्चल कार विहार ।
बाध्या सो ही भोग ले, मति कर और उधार ॥१९॥
नया कर्म ऋण काढ़ि के, करसी कार विहार ।
देणा पड़सी पार का, किम होसी छुटकार ॥२०॥
विपय भाग किपाक सम, लखि दुख फल परिणाम ।
जब विरक्त तू होयगा, तब सुधरेगा काम ॥२१॥
येरे मन मेरे पथिक, तू न जाव वहँ ठौर ।
बटमारा पाँचू जहाँ, करैं साह कू चोर ॥२२॥
आरभ विपय कपाय कूं, कीनी बहुत हि वार ।
कछु कारज सरिया नहीं, उलटा हुआ खुवार ॥२३॥
चारूँ सँज्ञा में सदा, सुतै निपुन चित लाग ।
गुरु समझावे कठिन सूँ, उपजै तउ न विराग ॥२४॥
खैर हुआ जो कुछ हुआ, अब करनो नहिं जोग ।
विना विचारे तैं किया, ताको ही फल भोग ॥२५॥

मेरी भावना

(जीवन सुधार नित्य पाठ)

जिसने रागद्वेषकामादिक जीते, सब जग जान लिया,
सब जीवो को मोक्ष मार्ग का, निस्पृह हो उपदेश दिया ।
बुद्ध, वीर, जिन, हरि, हर ब्रह्मा; या उसको स्वाधीन कहो,
भक्ति-भाव से प्रेरित हो यह, चित्त उसी मे लीन रहो ॥१॥
विषयो की आशा नहिं जिनके, साम्य-भाव धन रखते हैं,
निज-परके हित-साधनमे जो, निशदिन तत्पर रहते हैं ।
स्वार्थत्याग की कठिन तपस्या, बिना खेद जो करते हैं,
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के, दुख समूह को हरते हैं ॥२॥
रहे सदा सत्संग उन्ही का, ध्यान उन्ही का नित्य रहे,
उन ही जैसी चर्या मे यह चित्त सदा अनुरक्त रहे ।
नहीं सताऊँ किसी जीव को, झूठ कभी नहिं कहा करूँ,
पर धन-वनिता* पर न लुभाऊँ, संतोषामृत पिया करूँ ॥३॥
अहंकार का भाव न रक्खूँ, नहीं किसी पर क्रोध करूँ,
देख दूसरो की बढ़ती को, कभी न ईर्षा भाव धरूँ ।
रहे भावना ऐसी मेरी, सरल सत्य व्यवहार करूं,
बने जहां तक इस जीवन मे औरो का उपकार करूं ॥४॥
मैत्रीभाव जगत मे मेरा सब जीवो से नित्य रहे,
दीन दुखी जीवो पर मेरे उर से करुणा स्रोत बहे ।
दुर्जन-क्रूर-कुमार्गरतो पर क्षोभ नहीं मुझको आवे,
साम्यभाव रक्खूँ मैं उन पर ऐसी परिणति हो जावे ॥५॥

---

*स्त्रिया— "वनिता" की जगह 'भर्ता' पढ़े ।

गुणीजनों को देख हृदय में, मेरे प्रेम उमड आवे,
बने जहाँ तक उनकी सेवा, करके मन यह सुख पावे ।
होऊँ नहीं कृतघ्न कभी मैं, द्रोह न मेरे उर आवे,
गुण-ग्रहण का भाव रहे नित, दृष्टि न दोषों पर जावे ॥६॥
कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे,
लाखों वर्षों तक जीऊँ या, मृत्यु आज ही आ जावे ।
अथवा कोई कैसा ही भय, या लालच देने आवे,
तो भी न्यायमार्ग से मेरा कभी न पद डिगने पावे ॥७॥
होकर सुख मे मग्न न फूले, दुख में कभी न घबरावे,
पर्वत-नदी-श्मशान-भयानक अटवी से नहिं भय खावे ।
रहे अडोल-अकंप निरन्तर, यह मन दृढ़तर बन जावे,
इष्टवियोग-अनिष्टयोगमें, सहनशीलता दिखलावे ॥८॥
सुखी रहे सब जीव जगत के, कोई कभी न घबरावे,
वैर-पाप-अभिमान छोड जग, नित्य नये मंगल गावे ।
घर घर चर्चा रहे धर्म की, दुष्कृत दुष्कर हो जावें,
ज्ञान-चरित उन्नत कर अपना, मनुज जन्म फल सब पावें ॥९॥
ईति-भीति व्यापे नहिं जग में, वृष्टिसमय पर हुआ करे,
धर्मनिष्ट होकर राजा भी, न्याय प्रजा का किया करे ।
रोग-मरी-दुर्भिक्ष न फैले, प्रजा शान्ति से जिया करे,
परम अहिंसा-धर्म जगत में, फैल सर्व हित किया करे ॥१०॥
फैले प्रेम परस्पर जग में मोह दूर पर रहा करे,
अप्रिय कटुक कठोर शब्द नहिं, कोई मुख से कहा करे ।
बनकर सब 'युग-वीर' हृदय से, देशोन्नति रत रहा करें,
वस्तुस्वरूप विचार खुशी से, सब दुख संकट सहा करें ॥११॥

व्याख्यान के प्रारम्भ की स्तुति

वीर हिमाचल से निकसी, गुरु गौतम के श्रुत कुण्ड ढरी है ।
मोह महाचल भेद चली, जगकी जड़ता सब दूर करी है ॥ १ ॥
ज्ञान पयोदधि माँथ रली, बहु भंग तरंगन सें उछरी है ।
ता सूची सारद गङ्ग नदी, प्रणमी अंजली निज सीस धरी है ॥ २ ॥
ज्ञानसुं नीर भरी सलिला, सुरधेनु प्रमोद सुखीर निध्यानी ।
कर्म जो व्याधी हरन्त सुधा, अघमेल हरन्त शीवा कर मानी ॥ ३ ॥
जैन सिद्धान्त की ज्योति बढ़ी, सुरदेव स्वरूप महा सुखदानी ।
लोक त्रलोक प्रकाश भयो, मुनिराज बखानत है निज बानी ॥ ४ ॥
सोभित देव विषे मघवा, अरु वृन्द विषे शशी मंगलकारी ।
भूप समूह विषे वली चक्र, प्रति प्रगटे बल केशव भारी ॥ ५ ॥
नागीन में धरणीन्द्र वड़ो, अरु है असुरीन मे चवनेन्द्र अवतारी ।
ज्युँ जिन शासन संघ विपे, मुनिराज दीये श्रुत ज्ञान भण्डारी ॥ ६ ॥
केसे कर केतकी कणेर एक कहियो जाय, आक दूध माय दूध अन्तर घणेरो है ।
रिरी होत पीली पिण हाँस करे कंचन की, कहाँ काग वानी कहाँ कोयल की टेरा है ॥
कहाँ भानु तेज भयो आगियो विचारो कहाँ,
पूनमको उजवालो कहाँ अमावस अँधेरो है ।
पक्ष छोड पारखी निहाल देख मिगाकर, जैन वैन और वैन अंतर घणेरो है ॥
वीतराग वानी साची मोक्ष की निशानी जानी,
महा सुकृत की खानी ज्ञानी आप मुख बखाणी है ।
इनको आराधके तिरिया है अनन्त जीव, सोही निहाल जाण सरधा मन आणी है ॥
सरधा है सार भार सरधासे खेवो पार, सरधा विन जीव खुवार निश्चय कर मानी है
वाणी तो घणोरी पण वीतराग तुल्ये नहि, इनके सिवाय और छोरा सी कहानी है

---

* ॐ अर्हम् *

आत्म-बोध

प्रकाशक—

मंत्री—ऋषि श्रावक समिति

(ब्यावर)

जैनबंधु प्रिं. प्रेस इंदौर में मुद्रित

द्वितीयावृत्ति
प्रति ३२००

मूल्य
।-)

वीराब्द २४५९
विक्रमाब्द १९८०.

विषय-सूची

—※—

आत्म स्वरूप

(अपूर्व अवसर)

आत्मराम अविनाशी आव्यो एकलो ।
ज्ञान अने दर्शन छे तेनुं रूप जो ॥
बाहेर भावो स्पर्श करे नहिं आत्मने ।
'पर' थकी छे तेनुं भिन्न स्वरूप जो ॥ १ ॥
सर्व प्राणी पर समता भावो राखतो ।
वसे नहीं ज्यां वेर मात्रनुं नाम जो ॥
लोक तणी सौ आशाओं ने त्यागी ने ।
समाधिमां हुं जोडुं म्हाराराम जो ॥ २ ॥
विकल्प छोड़ी आत्मरामने जोड़ता ।
महत् पुरुष जे निज आत्मानी साथ जो,
योग भक्ति तो तेज पुरुषनी जाणवी ।
अन्य प्रकारे योग तणी नहिं बात जो ॥ ३ ॥
द्रव्य आव्युं छे मूज आगल आ पारकुं ।
समजी एवुं छोडे परनुं द्रव्य जो ॥
'परभावो' त्यम आत्मज्ञानीओ छोड़ता ।
स्वरूप समजी सुखने लेता द्रव्य जो ॥ ४ ॥
संबंध छे नहिं मोह साथ कांय मायरो ।
ज्ञान अने दर्शनमां रमतो नित्यजो ॥
आत्मरामनो ज्ञाता हुं अड़कुं नहिं ।
भीषण म्हारो मोह शत्रु निश्चित जो ॥ ५ ॥
स्वरूप तो छे एकज म्हारा आत्मनुं ।
विशुद्ध दर्शन ज्ञानमय ते होय जो ॥

आत्मराम विण परमाणुं को विश्वना।
तल मात्र नहिं आत्मराममां होयजो ॥ ६ ॥
कंचन तजतो निज रंग ने नहिं कदि।
भले सहे ते अग्नि केरो ताप जो ॥
आत्मराम त्यम छोडे नहिं नीज रूपने।
कर्म ताप में तप्त भले हो आपजो ॥ ७ ॥
निश्चय वादे एक अने विशुद्ध हुं।
माया विण हुं दर्शन ज्ञाने पुर्ण जो ॥
शुद्ध आत्ममां स्थित करीने आत्मने।
क्षय करूं छुं क्रोधादिक संपूर्ण जो ॥ ८ ॥
अनुभवे जे खरुं आत्मनुं रूप आ।
पामे तेओ आत्म तणु सत रूपजो ॥
अनुभवे ए आसत् आत्मनुं रूपतो।
पामेछे आसत् निज स्वरूप जो ॥ ९ ॥
अनुभवुं नहिं आत्मतणा हुं रूप ने।
अंश मात्र जो राग द्वेषनो होय जो ॥
नथी कामनो शास्त्र विशारद धर्मनो।
राग द्वेषनो स्पर्श मात्र जो होय जो ॥१०॥
देहादि पर द्रव्यो थाता छिन्न भिन्न।
के विकारे थाता को अदृश्य जो ॥
विचरता वा स्वेच्छाये को कारणे।
पण पामे नहीं आत्मतणो ए स्पर्श जो ॥११॥
स्वरूप मारुं समजीने आरीतथी ।

आत्मरूपमां पामुं हुं संतोष जो ॥
आत्मरूपमां तृप्त थवाथी आवतो ।
जीव सकल ने अखंड सुखनो कोष जो ॥१२॥
आतमराम तो ज्ञान तणो सागर सदा ।
खरेखरोतो ज्ञायक वीर गणाय जो ॥
आतमराम ज्ञायक ने ज्ञानी वली ।
ज्ञानी ज्ञायक विण अन्य नहिं होय जो ॥१३॥
आतमराममां आव्याछे नहिं कोई पण ।
रस रूप के गंध, शब्द वा स्पर्श जो ॥
सूक्ष्म रूपे चेतन गुण धारी सदा ।
निराकारी नहिं को लक्षण पास जो ॥१४॥
दर्शन ज्ञाने महा हेतु ते जाणवो ।
क्रोधादिक भावोने नहिं ज्यां वास जो,
क्रोध महितो क्रोध वसेछे सर्वदा ।
क्रोध रहे नहिं ज्ञान दर्शन पास जो ॥१५॥
सम्यक् ज्ञानी खरा रूपने जाणी ने ।
पुद्गल याने राग द्वेषना तत्वजो ॥
ए पुद्गलनुं फल 'उदय' ने जाणवुं ।
भाव गणुं हुं क्रोधादिकना सत्वजो ॥१६॥
क्रोधादिक भावोने न जाणुं खरो ।
पण राखे नहीं एने आत्मराम जो ॥
आत्मराम तो ज्ञायकतामां राचतो ।
ज्ञानी ज्ञायक रहे आत्मराम जो ॥१७॥

सादी-समझ

जितनी भी प्रवृत्ति संसार में दिख रही है यह सब केवल एक शरीर के सुख के लिए है, इतने कारखाने, दूकानें, सफाखाने, कोर्ट, वकील, बैरिस्टर, डॉक्टर, मजदूर आदि तथा नगर, कोट, गढ, खाई, तोप, बंदूकें, सैन्य सेनाधिपति, आदि सब एक शरीर के सुख के लिये हैं। स्त्री, पुत्र, माता, पिता, आदि अपने प्रेमी सज्जनो को त्याग कर देशावर एक शरीर के लिए जाता है। रण संग्राम में बंदूक व तोप के गोले के सामने तक खडे रहने का मुख्य कारण भी यही है, कहां तक कहा जाय विश्वका तमाम व्यवहार इसी के सुख के लिए ही हो रहा है। विज्ञानी नित्य शरीर सुख के लिए ही नूतन असादृश्य आविष्कार कर रहे हैं। पोस्ट से तार, तार से टेलीफोन और टेलीफोन से वायरलेस, का आविष्कार हुआ, बैल गाडी से घोडा गाडी, घोडा गाड़ी से रेलवे, रेलवे से मोटर, मोटर से स्टीमर, और स्टीमर से आज शीघ्रवेगी एरोप्लेन दिख रहा है। मिट्टी के तेल से गेस और गेस से बिजली की रोशनी; फोनोग्राफ, वायरलेस, टेलीग्राम, एरोप्लेन और बिजली आदि का आविष्कार होने पर भी विज्ञानवेत्ता लोग कहते हैं कि हम विज्ञान के पालने ही में झूल रहे हैं। इतने भयंकर से भयंकर और चमत्कारिक आविष्कार करने पर भी वे अपने को विज्ञान के बालक मान रहे हैं। विज्ञान की युवावस्था

आना तो अभी बहुत दूर है। शारीरिक सुख के लिये दुनिया में इतनी धूमधाम मच रही है, विज्ञान वेत्ता यह तो भली प्रकार जानते हैं कि यह शरीर क्षणिक है, थोडे वरसों में इस शरीर को स्नेही जला या गाड देवेंगे तदपि जब वे उस तुच्छ शरीर सुख के लिए इतना अखूट प्रयत्न करते हैं तो जो आत्मा को अनादि अनंत शास्वत् मान रहा है, स्वर्ग, नर्क, पुण्य, पाप, कर्म तथा उसके फलको मान रहा है, उस व्यक्ति को आत्मिक सुख के लिये कितना यत्न करना चाहिये? और एरोप्लेन से भी शीघ्र गामी कौनसे वाहन में बैठकर हमें आत्मिक सुख प्राप्त करने के लिये दौडना चाहिये? मनुष्य भव ही आत्मिक सुख प्राप्ति का एक मात्र ही केंद्र है और इसमे विज्ञानी से भी अनंत विज्ञानी अनंत ज्ञानी हो चुके हैं। जिन्हों ने जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बंध, मोक्ष, गुण स्थान, योग, उपयोग, लेश्या, कर्म और कर्म के फल का वर्तमान विज्ञानीओं से भी अनंत पुरुषार्थ करके आविष्कार किया है; उसका शरण लेकर अनंत जीवों ने आत्मिक सुख प्राप्त किया है।

पाठक वृन्द! आपको भी यदि आत्मिकसुख की इच्छा हो तो अनंत ज्ञानी के आविष्कारों का शरण लेकर आत्मिक सुख के लिये उनके पादानुसरण करने में कितना प्रयत्न करना चाहिये। इसका विचार करनेके लिए यह पुस्तक सामने रखी गई है।

* ॐ अर्हं *

आत्म-बोध



मनुष्य जन्म का महत्व

आत्म बंधुओ !

यह दुर्लभ नरभव आपको मिला है। अतएव नरभव क्या है? क्योंकर मिला है? किस लिये मिला है? इस से क्या करना चाहिये? और आप कर क्या रहे हैं? इसका परिणाम क्या होगा? इत्यादि बातों का चिंतवन एवं मनन करने की अत्यंत आवश्यकता है।

इस लेखक के पास जयपुर के एक जौहरीजी हीरे, मोती, माणिक, नीलम आदि बहुमूल्य जवाहरात लेकर आये थे। उनमें से एक एक नग की कीमत पच्चीस और पचास हजार की उन्होंने बतलाई थी। कीमत सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ। मैंने जौहरीजी से पूछा "भाई! इसमें पचास हजार का क्या है? मैं तो इसे पांच पैसे का भी नहीं समझता?" उत्तर में जौहरीजी ने कहा कि महाराज श्री को जवाहरात की परीक्षा कहां है? जौहरीजी की तरह ही देखा जाय इस नरभव को जितना मूल्यवान

आना तो अभी बहुत दूर है। शारीरिक सुख के लिये दुनिया में इतनी धूमधाम मच रही है, विज्ञान वेत्ता यह तो भली प्रकार जानते हैं कि यह शरीर क्षणिक है, थोडें वरसों में इस शरीर को स्नेही जला या गाड देवेंगे तदपि जब वे उस तुच्छ शरीर सुख के लिए इतना अखूट प्रयत्न करते हैं तो जो आत्मा को अनादि अनंत शास्वत् मान रहा है, स्वर्ग, नर्क, पुण्य, पाप, कर्म तथा उसके फलको मान रहा है, उस व्यक्ति को आत्मिक सुख के लिये कितना यत्न करना चाहिये? और एरोप्लेन से भी शीघ्र गामी कौनसे वाहन में बैठकर हमें आत्मिक सुख प्राप्त करने के लिये दौडना चाहिये? मनुष्य भव ही आत्मिक सुख प्राप्ति का एक मात्र ही केंद्र है और इसमें विज्ञानी से भी अनंत विज्ञानी अनंत ज्ञानी हो चुके हैं। जिन्हों ने जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बंध, मोक्ष, गुण स्थान, योग, उपयोग, लेश्या, कर्म और कर्म के फल का वर्तमान विज्ञानीओं से भी अनंत पुरुपार्थ करके आविष्कार किया है; उसका शरण लेकर अनंत जीवों ने आत्मिक सुख प्राप्त किया है।

पाठक वृन्द! आपको भी यदि आत्मिकसुख की इच्छा हो तो अनंत ज्ञानी के आविष्कारों का शरण लेकर आत्मिक सुख के लिये उनके पादानुसरण करने में कितना प्रयत्न करना चाहिये। इसका विचार करनेके लिए वह पुस्तक सामने रखी गई है।

* ॐ अर्हं *

आत्म-बोध



मनुष्य जन्म का महत्व

आत्म बंधुओ !

यह दुर्लभ नरभव आपको मिला है। अतएव नरभव क्या है ? क्योंकर मिला है ? किस लिये मिला है ? इस से क्या करना चाहिये ? और आप कर क्या रहे हैं ? इसका परिणाम क्या होगा ? इत्यादि बातों का चिंतवन एवं मनन करने की अत्यंत आवश्यकता है।

इस लेखक के पास जयपुर के एक जौहरीजी हीरे, मोती, माणिक, नीलम आदि बहुमूल्य जवाहरात लेकर आये थे। उनमें से एक एक नग की कीमत पच्चीस और पचास हजार की उन्होंने बतलाई थी। कीमत सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ। मैंने जौहरीजी से पूछा "भाई ! इसमें पचास हजार का क्या है ? मैं तो इसे पांच पैसे का भी नहीं समझता ?" उत्तर में जौहरीजी ने कहा कि महाराज श्री को जवाहरात की परीक्षा कहां है ? जौहरीजी की तरह ही लेखक इस नरभव को जितना मूल्यवान

समझता है उसका शतांश भी इसे मूल्यवान समझने वाला पाठक लाखों में एक भी मिलना मुश्किल है। ऐसी दशा में मनुष्य-जीवन के सदुपयोग की आशा कहां से की जाय ?

जयपुर के एक व्याख्यान में मैंने प्रश्न किया था कि किसी मुनि को जवाहरात की परीक्षा सीखना हो तो उसे क्या करना चाहिये ? उत्तर मिला कि उनको अपने महाव्रत, समिति, गुप्ति इत्यादि बातों का परित्याग कर जौहरी, उनकी पत्नी तथा उनके नौकरों की आज्ञा का पालन करना होगा, और दूकान में झाड़ू भी देना होगी। सारांश में जो आज करोड़पति जौहरियों का पूज्य बना हुआ है उस साधु को जवाहरात की परीक्षा सीखने के लिये अपने महान् पद को त्याग कर नीच गुलामी को अंगीकार करना होगा।

पत्थर के टुकड़ों की परीक्षा के लिये दस-बारह वर्ष तक ऐसी गुलामी करने पर कहीं कुछ ज्ञान प्राप्त हो सकता है। जब पत्थर के टुकड़ों की परीक्षा के लिये इतने वर्षों की मिहनत, इतना त्याग, इतना पुरुषार्थ और इतनी गुलामी की जरूरत है तो फिर भगवान् महावीर के तत्वरूपी जवाहरात की परीक्षा के लिये कितने श्रम की आवश्यकता होनी चाहिये ?

नरभव रूपी चिंतामणि रत्न की परीक्षा के लिये ...न् महावीर को साढ़े बारह वर्ष तक घोर तपश्चर्या

करनी पड़ी तब कहीं मनुष्य की संपूर्ण शक्ति का मूल्य समझने में वे समर्थ हो सके थे।

छोटे बच्चे को मूल्यवान हीरा और मिश्री का टुकड़ा दिया जाय तो वह मिश्री के टुकड़े की रक्षा करेगा. उसके सामने खाने की चीज का मूल्य हीरे से अधिक है। इसी तरह मनुष्य जन्म का मूल्य समझ में नहीं आने से उसके साथ बाल क्रीड़ा हो रही है।

आत्मज्ञान हीन प्रत्येक जीव बाल (अज्ञानी) है। नन्हे २ बालक मिट्टी के मकान, मिट्टी के रुपये, पैसे तथा गुड़िया में आनंद मानते हैं और वृद्ध-बाल-सरदार विशाल भवनों, सोने चांदी के टुकड़ों तथा सजीव स्त्री पुत्र रूपी पुतलों में आनंद मग्न हो रहे हैं। अर्थात् दोनों की दशा बाल है। फर्क इतना ही है कि बच्चे की बालदशा निर्दोष है और वृद्ध बाल की बाल दशा विषय विकार से परिपूर्ण होने से दोष पूर्ण है।

माता बालक को कहती है कि प्यारे! यह तो खेल है, यह तेरा मकान नहीं हैं। तेरा वास्तविक मकान तो यह बड़ी हवेली है जिसमें अपन रहते हैं। किन्तु बालक माता के वचनों पर विश्वास नहीं करता। वह तो अपने बनाये हुए रेती के मकान को ही अपना मकान समझता है ऐसे ही वृद्ध बालों को ज्ञानी- पुरुष स्वर्ग और मुक्ति के महल बतलाते हैं। किन्तु वे उनकी समझ में नहीं आते। अपने निर्माण किये हुए चूने और पत्थर के मकानों में ममत्व रखकर ही वे अपना जीवन पूरा करते हैं।

योग्य व्यक्ति के लिये लिखी जारही है। अतएव इसे पढ़ने तथा मनन करने वाले अन्य पाठक भी उसी योग्यता के समझे जावेंगे।

नरदेह का प्रत्येक अंगोपांग अनंत मूल्यवान है। जन्म दरिद्री को दो लाख के दो हीरे देकर उनके एवज़ में उसकी दो आंखें मांगने पर वह नहीं देगा। तथा एक लाख रुपैया देने पर भी वह नाक या जिव्हा का एक माशा मांस देने से साफ इन्कार कर देगा।

जिसके पास सम्पूर्ण पांच इंद्रियां मोजूद हैं वह अपने को परम सुखी मानता है तथा उस सुख की मस्ती में लाख या करोड़ रुपयों को भी लात मार देता है।

जब मनुष्य शरीर के प्रत्येक अंश की इतनी भारी क़ीमत है तो समस्त शरीर, इंद्रियां, मन, बुद्धि, निरोगता दीर्घायु, उत्तमकुल, सद्गुरु समागम तथा जिनवाणी वगैरह का कितना मूल्य होना चाहिये।

यदि कोई किसी बैंक या गव्हर्नमेंट के पास एक करोड़ रुपये ब्याज से रखताहै तो वह बैंक या गव्हर्नमेंट उसे प्रतिवर्ष पांच लाख रुपये (पांच टके प्रमाण) रुपये व्याजके देती है। इस तरह प्रति वर्ष पांच लाख रुपये मिलते रहते हैं और करोड़ रुपये का मूलधन ज्यों का कायम रहता है। अगर बारह वर्ष तक ब्याज नहीं तो मूलधन बढते २ दुगुना याने दो करोड़ हो-

ायगा दुगुना होजाने पर सालाना मिलनेवाली व्याज ो रकम भी दस लाख होजायगी। उत्तरोत्तर इनसे पादह वर्षों का व्याज का हिसाब पाठकों पर ही छोडताहूं ाठक ज्यादहतर व्यापारी वर्ग के होनेसे उनके यहां याज का धंधा भी है और रुपयों से उन्हें मोह भी खूबही अतएव मैं इस प्रकरण को अधूरा ही छोडताहूं।

जब एक करोड़ रुपये व्याज से रखने पर बारह वर्ष में याजसे बढ़ते २ दो करोड़ होजाते हैं और व्याज की ार्षिक आमदनी दस लाख रुपये तक पहुंच जाती है तो ो मनुष्य धन कमाने में अपनी पांचों इंद्रियां, मन चन और काया की तमाम शक्ति लगा देता है तथा मृत्यु पर्यंत धनके लिये प्रयत्न करता रहता है उसके पास कितना द्रव्य होना चाहिये? तथा उसकी दैनिक आमदनी उपरोक्त व्याज के हिसाब से कितनी होनी चाहिये?

मनुष्य धनार्जन में अपनी जितनी शक्ति खर्च करता है उसके मानसे उसके घर में रात दिन सोनैया की ही नहीं किन्तु रत्नों की वर्षा हो तो भी थोड़ी है। लेकिन इसके विपरीत मनुष्य पेट की चिंता में ही अपना जीवन पूर्ण करता हुआ पाया जाता है।

मनुष्य और पशु संसार

वर्तमान समय में इस संसार मे प्रायः करके पशु और पक्षियोंसे भी मनुष्य का जीवन प्रत्यक्ष में बहुतही पुण्यहीन दिखाई दे रहा है।

जवान बैल तथा घोड़े पर मर्यादित बोझा लादा जाता है मर्यादा से अधिक नहीं लादने बाबत म्युनिसिपालिटी का प्रबंध है। वृद्धावस्था वृद्धापकाल के लिये स्थान २ पर गोशालाएं बनी हुई हैं जहां वे अपनी शेष ज़िंदगी आराम से व्यतीत कर सकें। लेकिन अभागे मनुष्य के लिये युवा तथा वृद्ध किसीभी अवस्था में आराम नहीं है। उम्र बढ़ने के साथ २ ही उसकी पापमय जीवन में प्रवृत्ति चिंता एवं उपाधियां वग़ैरह बढ़ती जाती हैं।

धन के लिये अपना जीवन पशु से भी बुरी तरह व्यतीत करने पर भी मनुष्य पशु के समान निश्चिंतता से दाल रोटी न तो खुदही खा सकता है और न दूसरों को खिला सकता है।

इस पर से यह सिद्ध हुआ कि मनुष्य देह धन कमाने के लिये नहीं है किंतु एकमात्र धर्म आराधना के लिये ही है।

राजकुमार यदि राजसिंहासन का त्यागकर बांस ने के लिये जंगल में जाय तो बांस के बदले अपनी

जहर का होना सजीव श्रद्धा के उदाहरण हैं। इनसे मनुष्य अक्सर भयभीत रहता है। सौ हाथ के लंबे चौड़े मकान में बीछू के घुस जाने की शंका हो तो उसमें अंधेरे में जाने की हिम्मत नहीं होती है। चार अंगुल की भयंकरता ने सौ हाथ को भयमय, विषमय तथा बीछूमय बना दिया। बीछू ने केवल चार अंगुल जगह रोक रखी है लेकिन सजीव श्रद्धा वाला उस सारे मकान को बीछू से ठसाठस भरा हुआ मान कर उसका त्याग कर देता है।

किसी के मकान में प्लेग के चूहे मरे हों तो सारा गांव अपनी लाखों की संपत्ति और आमदनी छोड़कर जंगल में भाग जाता है और वहां झोपड़ियां बांधकर रहता है। वहां चूहे मरने की शंका होने पर वहां से भी भागता है और अन्यत्र जाकर निवास करता है। इस प्रकार इस अल्प जीवन को सजीव श्रद्धा के कारण मारे २ फिरते हैं लेकिन परलोक, स्वर्ग, नरक, मोक्ष, पुण्य पाप और बंध वगैरा के प्रति निर्जीव श्रद्धा होने से उन पर अंतिम श्वोसोच्छ्वास तक विश्वास नहीं किया जाता है।

इस लेखक ने अपने भक्त एक सुशील लड़के से पूछा "तेरा पिता बहुत धर्म ध्यान करता है। उनसे तू आखिरी समय में अगर कहे कि पूज्य पिताजी आप ९५००० रुपये दान में लगा दीजिए, मेरे लिये पांच हजार रुपये ही काफी हैं। तो क्या वे इस बात को मंजूर कर लेंगे? सुशील लड़के ने जवाब दिया कि वे हरगिज

इस बात को स्वीकार नहीं करेंगे। जब धर्मिष्ठ पिता की यह हालत है कि उन्हें मरते दम भी दान में श्रद्धा नहीं है तो अन्य आधि-व्याधि-उपाधि से ग्रसित श्रावकों की क्या दशा होगी ?

किसी संथारा करने वाले आचार्य से अन्य संप्रदाय के श्रावक आकर अर्ज करें कि पूज्यवर ! आपकी संप्रदाय बड़ी है। हमारी संप्रदाय में सिर्फ दो साधु रह गये हैं। कृपया आपकी संप्रदाय में से पांच साधु भेजकर इस अस्त होती हुई संप्रदाय की रक्षा कर दीजिए। इसका जवाब श्रावकों को क्या मिलेगा उसकी कल्पना इस लेखमाला के पाठक स्वयं कर सकते हैं।

शरीर विरोधी तत्वों से मनुष्य को जितना भय है उतना भय आत्म-विरोधी तत्वों से नहीं है। प्रथम तो उसे आत्मा के अस्तित्व का भान ही नहीं है।

अपनी कभी मृत्यु होगी इसका मनुष्य को बिल्कुल भी विश्वास नहीं है। क्योंकि विश्वास हो तो रेल्वे-स्टेशन आने के पहिले मुसाफिर जैसे उतरने की तैयारी करता है वैसे ही वृद्धावस्था प्राप्त होते ही वह परलोक की तैयारी करे।

कलकत्ते के एक श्रावक ने संदेश मांगा था। जवाब दिलाया गया कि " आयु बढ़ती हो तो उपाधि बढ़ाइये और आयु घटती हो तो उपाधि घटाइये।"

जिसे मरने का विश्वास है, श्रद्धा है सो तो मरने

की तैयारी करेगा। कई धर्म धुरीण श्रावकों को वृद्धावस्था में भी धन और परिवार बढ़ाने की चिंता में रात-दिन व्यस्त देखा जाता है। ऐसों को आस्तिक कहना चाहिये या नास्तिक ?

वेश्या अपने को वेश्या कहती हुई घृणित धंदा करती है और एक सती कहलाकर वेश्या का कर्म करती है। दोनों में अधिक पापी कौन ?

इसी तरह एक तो खुद को नास्तिक कहता है और दूसरा आस्तिक कहलाकर नास्तिक के कर्म करता है। अतएव ऐसे कर्म करने वाले को क्या कहना चाहिये ?



इन्दौर के संवत्सरी—व्याख्यान पर से.

धर्मतत्व—विश्वका सम्पूर्ण व्यवहार धर्म से ही चलता है. धर्म के अभाव में व्यौपार अथवा राज्य व्यवस्था भी नहीं चल सकती है. राज्य सत्ता से धर्म सत्ता बलवान है. इसी कारण से राज्य-सत्ता धर्म-सत्ता पर आश्रित हैं. विश्व के छोटे बड़े सब व्यवहार धर्म से ही चलते हैं. आप पाठकगण इस पुस्तकको धर्म भावना से ही पढ़ रहे हैं. यों तो ८४ लाख जीवायोनीयों में से भी भ्रमण करते हुए धर्म की सहायता से ही यहां आपने मनुष्य भव में जन्म लिया है. जहां तक धर्म रुपी धन आपके पास है वहां तक आप सेठ साहुकार, पति, पिता

पुत्र कहलाते हो धर्म माता पिता या वैद्य के समान है रोगी रुग्णावस्था मे वैद्य की खुशामद करता है पर रोग का नाश होजाने पर वैद्य के पास जाकर भी नहीं फटकता है बल्कि वैद्य से मुंह छिपाकर फिरता है. क्योंकि उसे डर है कि कहीं वैद्य कुछ मांग न बैठे इसी तरह धर्म रुपी वैद्य ने आपके इस जीवका ८४ लाख जीवायोनीयों से उद्धार किया है. पर आप अब इस धर्म रुपी वैद्य से मुंह छिपाते हैं क्योंकि आप को यह डर है, कि धर्म रुपी वैद्य के पास अब जावेगे तो दान शील तप आदि करना पडेंगे.

बालककों जहां तक दांत नहीं निकलते हैं और जहां तक उसमें चलने की शक्ति पैदा नहीं होती है वहां तक वह माता से खूब स्नेह रखता है. ज्यों २ जठराग्नि प्रज्वलित होती जाती है और अन्न खाने योग्य हो जाता है त्यों २ माता से प्रेम घटाता जाता है और होशियार हो जाने पर स्त्री और पुत्रादि के प्रेम पाश में फंस जाता है और उसका यहां तक परिणाम होता है कि वह माता का भी अपमान करने लगता है. माता को दासी और गुलाम समझने लगता है. और स्त्री को देवी मानकर उसका सत्कार सन्मान व भक्ति और खुशामद करने लगता है. यही दशा धर्म रुपी माता की दृष्टि गोचर होती है. जिस धर्म रुपी माता ने ८४ लाख जीवा योनियों के कष्ट से इसकी रक्षा की इतनी संपत्ति, वैभव,

अंगुली काटकर ही घर को लौटेगा। यही दशा मनुष्य-जीवन की है। मनुष्य जीवन धर्ममय व्यतीत करने के लिये है किंतु वैसा न करते मनुष्य धन रूपी घास काटने के लिये संसार रूपी जंगल में जाता है। इसलिये उसे धनरूपी घास तो प्राप्त नहीं होता है प्रत्युत वह अनंत पुण्यमयी संपत्ति का नाश कर बैठता है और अनंत जीव-योनियों में भोगने के लिये दुःखप्रद पाप की सामग्री एकत्रित कर लेता है।

दो मित्र हैं। एक पांच स्वर्ण की मुहरें रोज कमाने की प्रतिज्ञा करता है और दूसरा पांच सामायिक रोज करने की। पाठक निःसंकोच विचार कर सकते हैं कि सामायिक करना अपने हाथ की बात है किन्तु धन कमाना अपने हाथ की बात नहीं है। इसका मतलब यह निकला कि धर्म स्ववस्तु है और धन परवस्तु है। धार्मिक क्रिया करना पैतृकसंपत्ति का उपभोग करना है और धन कमाना आत्मघातक धंदा करना है।

शास्त्रकार ने १८ पाप बतलाए हैं। हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार, परिग्रह इत्यादि। इनमें हिंसक, मृषा-वादी, चोर और व्यभिचारी पापी हैं। नित्य ऐसी प्रवृत्ति करने वाले अधिक पापी हैं। इसी तरह जो धनवान होकर उस धन का सदुपयोग न करते हुए विषय विलास में जीवन व्यतीत करते हैं वे भी पाप उपार्जन करते हैं। तथा

आवश्यकता से अधिक धन कमाने की चेष्टा करते हैं वे अधिक पापी बनते जाते हैं।

खूनी, चोर, मृषावादी तथा व्यभिचारी का प्रातः-काल में न तो कोई नाम लेता है और न मुंह ही देखता है। तो धनको केवल विषय विलास तथा शौक में खर्चकर पांचवे परिग्रह के पाप की वृद्धि करने वाले के साथ कैसा बर्ताव करना चाहिये ? उसे कैसा मानना चाहिये ? इसका पाठक स्वयं ही विचार करें।

खूनी का पहिला, मृषावादी का दूसरा, चोरका तीसरा, व्यभिचारी का चौथा और महा परिग्रही का पांचवाँ नंबर है। प्रभुने नरक में जाने के चार कारण बतलाये हैं। उनमें परिग्रह का ममत्व रखना यह नरक के बंधद्वार को खुला करने के समान बतलाया है।

राजकीय नियमों का भंग करने वाला अपराधी है। अपराधी के लिये चार प्रकार की सजा की व्यवस्था है; सादी कैद, सख्त मजूरी की सजा, देश निकाला और फांसी। लोकोत्तर शासन में भी क्रमशः स्वर्ग, मनुष्य, तिर्यंच और नरक रूपी चार प्रकार की सजाओं की व्यवस्था है।

यहां के शासनकर्ताओं ने अपने जीवन के अनुभवों के अनुसार अपराध और सजाएं कायम की हैं।

मनुष्य धर्म को श्रेष्ठ बतलाता है किन्तु उसका वर्तन उसके विपरीत देखने में आता है। बहुत से मनुष्यों

का जीवन पशु, पक्षी अथवा विकलेंद्रिय कीट पतंगों के सदृश ध्येय विहीन व्यतीत होता है। उनके समान हलन, चलन, खान पान आदि क्रियाएं मनुष्य भी करता है। जैसे वे अज्ञानी हैं वैसे मनुष्य भी अज्ञानी बनकर अपना जीवन पूरा करता है और अन्त में इच्छा न होते हुए भी मर जाता है।

धर्म के मर्म से अनभिज्ञ यह मनुष्य संसार ज्ञानियों की दृष्टि में सिनेमा की बोलती, गाती, चलती, फिरती फिल्म के समान है।

आजकल के राजाओं की आज्ञाओं और उनके बनाये हुए क़ानूनों पर तो मनुष्य को विश्वास और श्रद्धा है और उनका वह अक्षरशः पालन करता है क्योंकि वे प्रत्यक्ष हैं। किन्तु धर्म शासन कर्ता और उनके फरमान परोक्ष होने से उनकी आज्ञाओं पर बहुत कम ध्यान दिया जाता है कारण Out of sight out of mind. लौकिक का जितना आदर है उतना ही लोकोत्तर का अनादर हो रहा है। इन पर जितनी पूज्य दृष्टि है, उतनी ही उन पर अपूज्य दृष्टि का अनुभव हो रहा है।

शास्त्रकार ने हिंसा को सिंह, विषय को सर्प और कषाय को अग्नि की उपमा दी है किन्तु क्या कोई लोकोत्तर पुरुष का पुजारी हिंसा, विषय और कषाय का सिंह सर्प और अग्नि के समान भय रखता है ?

शरीर रक्षा ही मनुष्य का एक मात्र ध्येय है। उसने

शरीर को ही सर्वस्व मान रखा है। शरीर के लिये सारे जीवन को होम देता है। उसके क्षणिक सुखके लिय अनंत जीवों से वैर बांधकर अनंतकाल तक अनंत दुःख भोगता है। मनुष्य की सब क्रियाएं सावद्य हैं और प्रत्येक क्रिया करने में अनंत जीवों की विराधना होती है।

मनुष्य शरीर रक्षा के संबंध में बहुत सतर्क रहता है। भूल से या स्वप्न में भी कभी शरीर का नाश करने वाले पदार्थ अग्नि, सर्प तथा सिंहादि का स्पर्श नहीं करता है। दिन में तथा रातमें आंखों को खुली रखकर चलता है और प्रत्येक पैर सावधानी से आगे रखता जाता है कि कहीं कांटा कंकर नहीं चुभ जाय। शरीररक्षा के प्रति इतनी सावधानी रखी जाती है किन्तु आत्मरक्षा के प्रति बिलकुल ही उपेक्षा की जाती है।

हिंसा, विषय, और कषाय आत्मा के कट्टर दुश्मन हैं। उनसे सावधान रहने के लिये शास्त्रकार बारबार चेतावनी देते हैं। फिर भी अज्ञानी मनुष्य उन पर ध्यान नहीं देता है। वह अनंत ज्ञानी का विरोधी बनकर उनके वचनों की उपेक्षा करता हुआ निर्भय जीवन व्यतीत करता है।

श्रद्धा दो प्रकार की है, सजीव और निर्जीव। जिस बात को केवल बुद्धि ही स्वीकार करे वह निर्जीव श्रद्धा है और जिसे बुद्धि तथा हृदय दोनों स्वीकार करले वह सजीव। सर्प में विष, अग्नि में दाहकता तथा अफीम में

बुद्धि, ऐसा सुंदर शरीर दिया. इस शरीर से माता की सेवा व धर्म आराधना न करते हुए, आरंभ और परिग्रह में मस्त होकर माता का ही खून करता है. माता की संभाल भी नहीं लेता है जो अपना जीवन नीति, न्याय व सत्य मय बिताता है. वह धर्म रुपी, माता का दूध पान करता है और जो अपनी शक्ति अनीति व अन्याय से आरंभ परिग्रहादि संग्रह में लगाता है वह धर्म रुपी माता का खून चूस कर माताका ही नाश करता है. मनुष्यों के पास लाखों या करोड़ो रुपये की सम्पति है किन्तु उस सर्व संपति का जन्म दाता धर्म ही है. युवावस्था में मदांध युवक माता का जिस तरह अपमान करते हैं उसी प्रकार इस धर्म रुपी माता का भी इस समय अपमान हो रहा है. मनुष्य शरीर के लिये धन, अन्न, जल, हवा और प्रकाशादि पदार्थ आवश्यक हैं किन्तु धन से अन्न, अन्न से जल, और जल से हवा व प्रकाश विशेष आवश्यक हैं. जो तत्व जितना सूक्ष्म व पतला है वह तत्व भी जीवन के लिये उतना ही उपयोगी है. और जिस तत्व को मनुष्य जितना अधिक मूल्यवान समझता है वह तत्त्व उतना ही अनावश्यक है. धन के अभाव में मनुष्य करोड़ वर्ष तक जीवित रह सकता है. जल के अभाव में कुछ दिनों तक जीवित रह सकता है. परन्तु हवा के विना क्षणभर भी मनुष्य जीवित नहीं रह सकता है. मनुष्य शरीर के लिये हीरा माणिक

और मोती की अपेक्षा सबसे विशेष मूल्यवान पदार्थ हवा है. अज्ञान प्राणी हीर, माणिक और मोती की रक्षा करता है और हवा जीवन के लिये कितनी मूल्यवान है इसका उसे कुछ भी ज्ञान नहीं है. हवा क्या है मेरे लिये वह कितनी उपयोगी है. कितनी मूल्यवान है. उसका उसे ज्ञान ही नहीं है. और हवा के तत्त्व को समझने के लिये वह अत्यंत ही लापरवाह है और हवा को आवश्यक पदार्थ तक न समझने की धृष्टता करता है हवा से भी अनंत सूक्ष्म धर्म तत्व है और वह धर्म तत्व हवा से भी मनुष्य जाति के लिये अनंत गुणा ज्यादे उपयोगी है. हवा के बिना मनुष्य कुछ मिनिट जीवित रह सकता है किन्तु धर्म-प्राण के सिवाय तो एक सेकंड के क्रोडवें हिस्से जितने समय तक भी नहीं जी सकता है धर्म तत्व जितना आवश्यक है उसे मनुष्यों ने उतनाही अनावश्यक समझ रक्खा है.

कुदरतने राज्य व्यवस्था बनाई है और राज्य के कानून मनुष्य पालते हैं. परन्तु वे राज्य के कानून भी तो धर्म तत्व के ऊपर रचे गये हैं जिससे संसार का व्यवहार चलता है. अगर पिनल कोड रचयिता धारा शास्त्रियों ने धर्म शास्त्रकार की शरण न ली होती तो संसार की व्यवस्था ही नहीं चल सकती थी सब धर्मोंने [illegible], सत्य, अदत्त और ब्रह्मचर्य व संतोष पर जोर

दिया है. राज्य के कानून कायेद भी श्रावक के व्रतों के आधार पर बने हैं.

धर्म तत्व ही संसार के राज्य का व मानव जीवन का प्राण है. ऐसे अमूल्य तत्त्व को खो देने वाला कितनी नुकसानी में रहता है और उसको कितने भयंकर कष्ट का सामना करना पड़ता होगा उसका आप स्वयं विचार करें राज्य के कायदों से अनजान या राज्य के कायदों का पालन न करने वाले अभियुक्त या अपराधी, मिथ्या बोलने वाले, चोर, व्यभिचारी, और लोभी को प्राण दंड तक की सजा मिलती है. तो धर्म के कायदो का उलंघन करने वालों की कौनसी गति होगी इसका विचार आप स्वयं ही कीजियेगा. सर्प सिंह अग्नि और अफीम को न पहिचानने वाले की जान हमेशा जोखिम में रहती है. इनके कारण मनुष्य की मृत्यु तक होजाती है. सर्प के अनजान को सर्प, राज्य की अपेक्षा भी कठोर सजा देता है अफीम जड़ वस्तु होते हुए भी उसका दुरुपयोग करने वाले को वह भी राज्य की अपेक्षा अधिक सजा देती है. राज्य में तो अपराधी के आशय विचार ध्येय और जीवन की जांच की जाती है और कभी २ खूनी को भी निरअपराधी ठहराकर छोड दिया जाता है. परन्तु उपरोक्त पदार्थ तो सबको समान सजा देते हैं धर्म तत्व के कायदे कानून बहुत ही सूक्ष्म हैं. धर्म तो मन, वचन, काया और आत्मिक गुन्हे को भी गुन्हा समझता है. धर्म स्थावर

जीवों की भी रक्षा न करने वालोंको दोषी बताता है. राज्य शाशन में मनुष्य की रक्षा के लिये जैसे कायदे व सजाएं बताई है उनसे भी विशेष कायदे और विशेष सजाएं पृथ्वी, पानी, अग्नि, हवा वनस्पति कीडे मकोडे और मच्छर आदि जीवों को कष्ट देने वालों को देना बतलाया है.

स्कंधकजी ने काचरे की फक्त खाल ही उतारी थी उसके फल स्वरुप साडे बारह क्रोड़ भव के बाद उनको प्राण दंड की सजा भुगतनी पड़ी. परन्तु अंग्रेजो के राज्य शाशन में मनुष्य रक्षा के जो कायदे बने हुए हैं. उनमे गाय भेंस बैल और बकरे आदि जानवरों को काटने वाला गुन्हेगार नहीं माना जाता है. इतनाही नहीं परन्तु राज्यकर्मचारी स्वतः उपरोक्त जीवों को कत्ल कराते हैं. अंग्रेजी राज्य में किसी भी प्रकार के पशुको काटने की मनाई नहीं है. मुसलमानों के राज्य में शूअर काटने की मनाई है हिन्दू राज्यों में गाय और कबूतर, मोर इनके मारने की मनाई है. राज्यकी जितनी शान व बुद्धि है उस प्रमाण में वहां उसे गुन्हा मानकर कायदे बनाये हुए हैं. जैन राजा कुमारपाल के राज्य में किसी कीड़ी मकोड़ी जूं लीख खटमल को भी मारने की मनाई थी. और इन जीवों को मारने वालों को हित शिक्षा देने के लिये खुफिया पोलिस रखी गई थी. राज्य के हाथी घोड़े, गाय व भैस भी बिना छना हुवा जल नहीं पिलाया जाता था

उपरोक्त कथन से आप समझ गये होंगे कि राजा मे जितनी बुद्धि होती है उतने प्रमाण में वह गुन्हें का विचार करके अपराधी को दंड देता है परन्तु शास्त्रकारो ने (धर्म शाशन के कर्ता) तो उनके अनंत ज्ञान से विश्व में चराचर सूक्ष्म, बादर, त्रस, स्थावर आदि अनेक सूक्ष्म जीव देखे तब उनकी रक्षा न करने वालों को भी अपराधी माने और उनकी रक्षा के लिये कायदे बनाये हैं.

—०—

विज्ञान की दृष्टि से अहिंसा

ज्यों ज्यो विज्ञान उन्नति करता जाता है त्यों २ कायदो मे परिवर्तन होता जाता है. विज्ञान वेत्ता अब पृथ्वी, जल, अग्नि हवा और वनस्पति मे जीव मानने लगे हैं. जल हवा और वनस्पति के जीवों के उन्होंने चित्र लिये हैं एक बूंद जल में विज्ञान वेत्ताओंने ३६४५० जीव गिनकर बताये हैं सुई के अग्र भाग के बराबर हवा में विज्ञान वेत्ताओंने थैकसस् नाम के दस लाख जीवों की गिनती की है. इस प्रकार चैतन्यवाद का प्रचार होरहा है. और युरोप में बहुत से मांस निषेधक मंडल खुलते जा रहे हैं. और उनमे कई मेम्बर गाय का दुध, दही और घी खाने मे भी पाप मानते है. उनका कथन

है कि माता का दूध पुत्र ही पी सकता है. और गाय भैंस व बकरी का दूध पीने का मनुष्यों को कोई अधिकार नहीं है वह दूध तो उनके बच्चों को ही पिलाया जाय इस सिद्धान्त के अनुसार वे लोग मांस खाने का व दूध दहीं और घी खाने का भी निषेध कर रहे हैं. पश्चिम के लोग पहिले परलोक नहीं मानते थे अब वे लोग परलोक को भी मानते हैं. और जिसके फल स्वरुप बहुत से राज्यों ने फांसी की सजा उठा दी है. और गुन्हेगार को धार्मिक संस्कार से पवित्र बनाते हैं.

युरोप के कैदियों को भी जेलखाने में बायबिल सुनाई जाती है. और उनके साथ अच्छा व्यवहार किया जाता है. यहां तक कि वे लोग चोर, खूनी और मिथ्यावादी को भी एक प्रकार की बिमारी से पीडित समझते हैं. और उसके व्यसन व दुर्गुणों को छुड़ाने के लिये पूरा प्रयत्न करते हैं. धीरे २ वे लोग हिंसा की सूक्ष्मता को समझते जाते हैं और जिसके फल स्वरूप उन्होंने निंदा निषेधक मंडल खोल दिये हैं और उन मंडलों का नाम Pad lock society. है. उस सभा का सदस्य किसी की भी निंदा नहीं करता है और निंदा सुनता भी नहीं है निंदा को अंग्रेजी में Back bite कहते हैं जैन शास्त्रकार पिट्ठी मंसं कहते हैं दोनों का भावार्थ एक ही है निंदा करना यह मनुष्य की पीठ का मांस खाने के बराबर है. Cow has no soul but dog has soul गाय

में ज्ञान नहीं है किन्तु कुत्ते में है। ऐसी मिथ्या समझ वाले (गाय में जीव न मानने वाले) मनुष्य के मन को भी न दुखाना यहां तक पहुंच गये हैं. गाय का मांस खाने वाले आज चैतन्यवाद के पुजारी बनकर गाय का दूध, दही, घी, और चमडे का भी बहिष्कार करने लगे हैं. और मनुष्य व पशु की रक्षा के लिये स्थान स्थान पर औषधालय खोलकर उनकी रक्षा करते हैं. भारतवर्ष के कितनेक मनुष्यों से भी युरोप के कितनेक पशुओं का खान पान अच्छा है भारत के अशिक्षित मनुष्यों से युरोप के जानवर अधिक मूल्यवान होते हैं युरोप की गाय बैल, सांढ घोडे २५ हजार से लगाकर ५० हजार तक की कीमत के होते हैं गाय और सांढ का संयोग कराने में सैकडों रुपये गाय वाला सांढ वाले को देता है. इधर भारतवर्ष के मनुष्य गली २ में भटक कर प्रमेह आदि भयंकर रोगों के शिकार बन रहे हैं. युरोप के जानवरों की नस्ल दिनों दिन सुधर रही है परन्तु भारतवर्ष की प्रजा दिन व दिन निर्बल बन रही है युरोप में गाय और सांढ, कुत्ता और कुत्ती के संयोग के पहिले उनकी डाक्टरी परीक्षा करवा ली जाती है तब ही संतान वृद्धि के लिये योजना की जाती है. परन्तु भारतवर्ष में लडके और लडकियो के विवाह रूप रंग और धन देखकर किये जाते हैं ज्ञान सदाचार और तन्दुरस्ती का ख्याल कम किया जाता है। उपरोक्त कथन से आप सोच सक्ते हैं कि पश्चिम में

और पशु का जीवन कितना सुखमय है तुर्किस्थान में जहां कि मुसलीम प्रजा है वहां पर भी गौ हिंसा की सख्त मनाई है अनार्य कहलाने वाले देश आर्य बन रहे हैं और भारतवर्ष हिंसा में मग्न होकर अहिंसक के स्थान पर हिंसक बन रहा है।

'अमेरिका में शराब न तो कोई पीवे न कोई बेचे' ऐसा कायदा होते हुए भी अमेरिका में शराब न आने पावे इसके लिये राज्य से भी प्रबंध किया गया है. चीन राज्य ने अफीम खाना गुन्हा माना है।

श्रावक के बारह व्रतों में सब बातों का व सब सुधारों का समावेश हो जाता है युरोप के अहिंसावादियों का अहिंसा के स्वरूप आप जान गये होंगे इस पर से धार्मिक अहिंसा तत्त्व का आप अनुमान कर सकते हैं।

सत्य—सत्य के लिये युरोप देश प्रधान गिना जाता है यहां के व्यौपारी उनकी सत्यता पर मुग्ध होकर विना भाव ठहराये लाखों रुपये का रेलवे किराया स्टिमर भाडा आड़त व व्याज का नुकसान उठाकर भी युरोप में माल भेजते हैं वे लोग इमानदारी से दाम देते हैं वहां से आया हुआ माल साफ सुथरा व उमदा होता है वहां की दुकानों पर ग्राहक को जो वस्तु चाहिये उसका मूल्य वह पढ़कर स्वतः दे देता है क्रय विक्रय करने वाले दोनों को बोलने की जरूरत नहीं रहती है दुकान में हजारों मनुष्य

खरीदने वाले न हजारों मनुष्य माल दिखलाने वाले

होने पर भी खूब शांति से बिना आवाज के वहां की दुकानों का दैनिक व्यवहार चलता रहता है परन्तु भारतवर्ष मे धर्म स्थानों में भी जहां कि शास्त्र पढ़े व श्रवण किये जाते हैं वहां पूर्ण कोलाहल सुनाई पड़ता है।

युरोप की सब दूकानों पर One rate एकही भावके बोर्ड लगे रहते हैं परन्तु भारतीय कितनेक व्यौपारी कहते हैं कि असत्य बिना हमारा धंदा चल ही नहीं सकता है, १२ बारह लाख जैनियों में पूर्ण सत्य बोलने वाले सिर्फ १२ श्रावक भी सुनने में या पढ़ने में नही आये. मुसलमान तथा पारसी आदि हजारों एक बात बोलने वाले स्थान स्थान पर सुनाई पडते हैं, वर्तमान जैन समाज अन्य सब समाजों से विशेष गिरी हुई है युरोप के बुकसेलर (किताब विक्रेता) के वहां पर कोई पुस्तक खरीदने गया तब उस अनभिज्ञ भारतीय ने पुस्तक का मूल्य पूछा उसने एक रुपया मूल्य बताया दुबारा पूछने पर १। रुपया तिसरी वक्त पूछने पर १॥ रुपया और ४ थी दफा पूछने पर १॥। रुपये मूल्य बतलाया. भारतीय घबरा गया तब युरोपियन पुस्तक विक्रेता ने खुलासा किया कि पुस्तक का मूल्य तो १ ही रुपया है परन्तु आपने मुझ से तीन वक्त पूछा जिससे मेरे बोलने के बारह आने और बढगये पाठकगण युरोप के व्यापारीयों की सत्य निष्ठा, वचन प्रियता देखिये और आप अपने को देखिये. उन लोगों की भाषा में सत्यता प्रियता और मधुरता है परन्तु

भारतीयों की भाषा मे असत्यता, अप्रियता व कटुता है. वाइसराय अपने नौकर से चाय मंगवाते हैं तब बोलते हैं, Please tea Please water अर्थात् **मेहरबानी करके चाय लाओ, मेहरबानी करके जल लाओ** और उसके लाने के बाद वाइसराय उसको Thank you कहते हैं अर्थात् **मैं तुझे धन्यवाद देता हूं.** कहां तो मासिक २१००० रुपये की तनख्वाह पाने वाले वाइसराय कि जिनकी आज्ञा में भारत वर्ष के राजा रहते हैं. और वे उनको अपनी राजधानी में बुलाकर उनके स्वागत में दो तीन दिन में ही तीन लाख रुपये तक खर्च कर देते हैं. ऐसे महान पद वाले का भी भाषा में इतनी मधुरता व नम्रता है परन्तु भारतीय मनुष्यों की भाषा कि जिसमें माता, बहिन व बेटी के भी सामने हलकी व अश्लील भाषा का उपयोग निःशंकोच करते हैं.

युरोप में गालियां देने के रिवाज बहुत कम हैं कभी कोई किसी को गलती से कठोर शब्द कह देता है तो सुनने वाला उसको बहुतही मधुरता से कहता है कि अगर आपको कोई ऐसा शब्द कहे तो आप उसे क्या कहेंगे या क्या आज आपकी तबीयत ठीक नहीं है या क्या आपने यह गलती अपने जीवन में पहिले ही की? इस प्रकार वह उसको शांत करता है.

रेल्वे या पोस्ट से आपने कोई चीज कहीं बाहर गांव, भेजी हो और अगर वह गुम होजाय और उसकी आप उपरोक्त आफिस में रिपोर्ट करें तो उसका जवाब फौरन आता है. और पांच हजार रुपये या १० हजार रुपये मासिक पाने वाला रेल्वे मैनेजर या जनरल पोस्ट मास्टर योग्य जवाब देकर नीचे लिखता है Yours faith fully. आपका विश्वासु अथवा Yours most obidient servant अर्थात् आपका बहुतही आज्ञाकारी सेवक. पाठकगण! उनकी भाषा सुमति में और आपकी भाषा सुमति में कितना अंतर है उसका विचार कीजियेगा पश्चिम देश अनार्य होते हुए भी सत्य की शरण से वह देश सभ्यता के शिखर पर चढ गया है. परन्तु भारत वर्ष प्राचीन ऋषि मुनियों का व त्यागीयों का देश है. वर्तमान काल में भी तप और त्याग की मात्रा भारतवर्ष में विशेष रूप में पाई जाती है. जिसमें भी जैन समाज में जैसे त्यागी और तपस्वी हैं, वैसे भूमंडल के किसी कोने में भी सुनेन में नहीं आये ऐसी परम पवित्र यह समाज होते हुए भी सत्य के अभाव से इस समाज की स्थिति बहुतही गिरी हुई प्रतीत होती है.

परदेशी राजा सरीखे हिंसक का कल्याण हो सक्ता है अर्जुन माली जैसे मनुष्य घातीक का उद्धार हो सक्ता है. चंडकौशिक सर्प जैसा जहरी प्राणी, अपने जीवन को पवित्र बना सकता है. प्रभवादि पांचसौ चौर जैसे

महा चौर अपनी आत्म उन्नति कर सकते हैं किन्तु एक मिथ्यावादी का कल्यान नहीं हो सकता है. विश्व में करोड़ों पाप हैं वे पाप तो नदी के समान हैं और मृषावाद का पाप समुद्र के समान है. मृषावाद रूपी समुद्र में मानव समाज के इस विश्व के करोड़ों पाप वास करते हैं. चाहे जैसा पापी से पापी, नीच से नीच अधम से अधम, चंडाल से चंडाल, भी अपना जन्म सुधार सक्ता है, किन्तु मिथ्यावादी अपना जीवन नहीं सुधार सकता है.



सत्य का प्रभाव

अरणक श्रावक का अधिकार श्री ज्ञाताजी सूत्र में चलता है- जिसमें वर्णन है कि अरणक श्रावक को देवता ने बहुत ही उपसर्ग दिया सैकडों मनुष्य और करोड़ों की संपत्ति से भरा हुआ जहाज डुबा देने की देवता ने तैयारी की.

करोड़ों की संपत्तिका नाश होरहा है व सैंकड़ों मनुष्य मर रहे हैं जिससे उनकी सैंकड़ों स्त्रियां विधवा बनती हैं सैकड़ों माता पिता पुत्र विरह से दुःखित होवेंगे, हजारों पुत्र पिता के विरह से तडफ तडफ कर मर जावेंगे इतनी विकट समस्या सामने खडी होने पर भी अरणक श्रावक अपने सत्य व्रत में दृढ रहे और आखिर में उनकी विजय

हुई और देवता की हार हुई. देवता में लाखों जहाज व करोड़ो मनुष्योंको डुबाने की शक्ती है लाखों ग्राम को जला डालने की शक्ती है. परन्तु सत्य का बाल भी बांका करने की शक्ति नहीं है. देवता की शक्ती करोड़ों मनुष्य से अधिक हैं परन्तु करोंड़ों देवताओं से भी एक सत्यवादी की शक्ती विशेष है सत्य वही धर्म और धर्म वही सत्य है.

द्वारका नगरी में जहां तक आयंबिल तप होता रहा, तब तक द्वारका को जलाने वाले दिपायन देव की कुछ भी शक्ति नहीं चली परन्तु जिस रोज आयंबिल, नगरी में बंद हुआ उसी रोज फौरन दिपायन ऋषि ने द्वारका को जलाकर भस्म करदी. जो जो मनुष्य द्वारका को छोड़कर भाग गये थे उनको भी दिपायन ऋषिजी ने द्वारका के दावानल में लकड़ी की तरह जला दिये परन्तु जिन द्वारिका निवासियों ने संयम की आराधना की उनका दिपायन देव कुछ भी नुकसान नही कर सके. सत्य की शक्ति आप समझ गये किन्तु पालन करने वाले कितने हैं ? Honesty is The best policy. युरोप वाले प्रमाणिकता व सत्यता को धन कमाने की सुंदर युक्ति समझते हैं. परन्तु भारतीय संसार यह समझता है कि सत्य बोलने से हम भूखो मर जावेंगे और हमारा दिवाला निकल जावेगा. बाप दादाओं की इज्जत में बट्टा लग जावेगा इस प्रकार सत्य को पाप, नर्क समझकर उसका बहिष्कार

करते हैं और असत्य से प्रेम व उसका विश्वास करते हैं असत्य से धन बढ़ेगा व इज्जत आबरू बढ़ेगी और मालों-माल हो जावेंगे जहां ऐसी परम मिथ्या श्रद्धा पाठकगणों की हो उन्हें क्या समझाया जावे. असत्य बोलना यह वैश्या का धंदा करके सुखी होने जैसा मिथ्या बकवाद है और सत्य बोलना यह शील पाल करके सद्गति प्राप्त करने के बराबर है।

चोर व्यापारी—तीसरा व्रत अदत्तादान है. भारतीय व्यापारियों ने झूट की तरह चोरी का भी आश्रय लिया है समुद्र में नादियें आकर मिलती हैं उसी तरह मृषावाद रूपी महासागर में अन्य पाप पिशाचन रूपी नदियें आकर मिलती ही हैं युरोप वाले हिन्दुस्थान में जो माल भेजते हैं. उसके लिखे हुए वजन में एक रत्ती, माप में एक इंच, व गिनती में अंश मात्र का भी अंतर नहीं रहता है किसी चीज की जो तपसील लिख भेजेंगे उसी रूप में वह चीज भेजेंगे कपड़े के थान में थोड़ी सी भी गलती माल्म हो जाने पर उसकी गिनती कटपीस में करते हैं परन्तु अपने को जैन, श्रावक, समदृष्टि कहलाने वाले कितनेक व्यौपारी चोरो के सरदार जैसे कार्य करते हुए दृष्टिगोचर ह[illegible] जन्म के चोर-सात पीढी के चोर भी ऐसी चोरी करना अपने बाप दादाओं से नहीं सीखे हैं न चोरों के दादाओं के मगज में भी ऐसी चोरी करने के [illegible]ार ख्याल में आये होंगे।

ऊनमें राख का पुट देना, ऊन में, रुइमें सफेद राख मिलाना, अजमान व जीरे में पंजाब की मिट्टी का पुट लगाना, चने में कंकर मिलाना, घी में चर्बी का घी मिलाना ताजे आटे में पुराना आटा मिलाना गरीबों से चार सेर का पांच सेर तोल करके लेना और देते समय पांच सेर को ४ सेर करके देना इत्यादि कई प्रकार की चोरियां अपने जीवन में करते हैं. रेलवे में, कस्टम में, राज्य में व प्रायः सब जगह चोरी ही करते हैं सरकार को पता लग जावे और हाथ में तुरंत हथकडी पड जावे ऐसी चोरी के सिवाय अन्य जितनी चोरियां कर सकते हैं उन सबका शिक्षण व्यौपारी समाज की माता व पिताओं की गोद में ही मिलता है।

—×—

चोर की नीति

प्रभव चोर राजगृहि नगरी में चोरी करने के लिये प्रवेश करने के पहिले विचार करता है कि हाय ! यह धंदा कितना पापी है मनुष्यो को धन अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय है धन के लिये पिता पुत्र का और पुत्र पिता का खून कर डालता है. क्रोड़ों मनुष्यों के खून की नदी इस धन ने वहा ही है. हाथी और हार के लिये अभी दो दिन में एक क्रोड़ अस्सी लाख मनुष्य मर गये. हाय! ऐसे धन को हडप जाने वाला मैं अत्यंत पापी हूं.

हाय ! यह धंधा मेरे नसीब में कहां से आया मेरे जैसा पतित पापी अन्य कोई इस संसार में नहीं होगा. कोडी कोड़ी जोड़कर सैकडों वर्षों की मिहनत से भूख प्यास, शरदी और गरमी को सहन करके एकत्रित किया हुआ धन यह उसके सैकड़ों वर्ष के जीवन के खून चूसने बराबर है. किन्तु क्या किया जाय पापी पेट रोटी तो मांगता ही है. ऐसा विचार करके उसने निश्चय किया कि चोरी ऐसी जगह करना चाहिये कि जहां उसके मालिक को कष्ट न हो, जंबू कुमार नव विवाहित हैं उनके वहां पर "करोड़ों सौनेया का ढेर आया हुआ है और उनके पास पहिले से भी बहुत संपत्ति है इसलिये उनके वहां चोरी करना योग्य है ग्राम में प्रवेश करते हुए मार्ग में जो मिला उसे उसने कहा कि मैं प्रभव चोर हूं और चोरी करने के लिये जंबुकुमार के वहां जा रहा हूं तुम सब ग्राम वाले निश्चिंत रहो अगर जंबुकुमार के वहां धन हाथ नहीं लगेगा तो खाली हाथ वापिस लौट जाऊंगा किन्तु आप किसी को कष्ट नहीं दूंगा. पाठकगण ! सोचिये, चोर के अंतःकरण में कितनी दया व अनुकंपा है. ५०० चोरों के साथ वह जंबुकुमार के वहां पर गया और चोरी करके सौनये की गठरी बांधी । उस समय जंबुकुमार अपनी नव विवाहित वधुओं को उपदेश दे रहे थे उसकी आवाज़ प्रभव के कान में पहुंची तो वह ध्यान लगाकर उनकी वार्तालाप सुनता रहा. सुनते सुनते उसपर उस वार्तालाप का इतना प्रभाव

पड़ा कि उसने जंबुकुमार को अपना धर्म गुरू बना लिया व धन की गठरी वहीं पर छोड़कर जंबूकुमार के चरण में गिर गया और उनके साथ ही प्रातःकाल होते ही दिक्षा लेने का उन्हें अपना निश्चय दर्शाया. अहा ! कहां तो यह प्रभव चोर और कहां आजकल के साहुकार, प्रभव चोरी करने के लिये जंबूकुमार के वहां गया परन्तु धर्म प्राण जंबूकुमार ने प्रभव को लूट लिया. जंबूकुमार को लूट लेने में ५०० चोरों की शक्ति काम न दे सकी परन्तु ५०० चोरों को लूट लेने के लिये एक उदासीन जंबुकुमार के शब्द ही पर्याप्त हो गये।

चोरी का सामान लेकर जाने वाले प्रभव चोर ने वैराग्य रूप धन अंगीकार किया तो क्या अपने को जैनी समदृष्टि व श्रावक कहलाने वालों का हृदय चोराचार्य से पवित्र न होना चाहिये? क्या आप चोराचार्य जितना भी त्याग नहीं करेंगे? अनेक संवत्सरियां व्यर्थ चली गई हैं कम से कम इस संवत्सरी को तो सफल बनाइयेगा. संयम न लें तो कम से कम सत्यतासे प्रमाणिक जीवन विताने की ही प्रतिज्ञा लीजियेगा।

ब्रह्मचर्य और स्त्रियों का महत्व

चौथा व्रत ब्रह्मचर्य का है. पहिले आप पढ़ चुके हैं कि युरोप में पशुओं के लिये भी ब्रह्मचर्य के निय

गये हैं. वे संयोग करने के योग्य हैं या नहीं इसके लिये उनकी डाक्टरी जांच कराई जाती है. परन्तु भारतीय मनुष्य समाज का जीवन पशु समाज से भी गया बीता है, बालविवाह, वृद्ध विवाह, अनमेल विवाह, अयोग्य विवाह, रोगी विवाह, एक से अधिक स्त्रियां रखना, एक स्त्री के मर जाने पर दूसरा विवाह कर लेना, आदि अनेक विकार मनुष्य समाज में घुस गये हैं।

इंग्लैंड के उच्च घरानों के गृहस्थ भी एक स्त्री के होते हुए दूसरी से विवाह नहीं कर सकते हैं. परन्तु भारतवर्ष में आज एक साधारण मनुष्य जो मृत्यु-पथ पर लगा हुआ है एक स्त्री के होते हुए दूसरा विवाह कर सकता है. १५ वर्ष की एक विधवा सामाजिक बंधन के कारण कर्तव्य वश ब्रह्मचर्यव्रत पालन करके अपना पवित्र जीवन बिताती है परन्तु उस लड़की का २० वर्ष की उम्र का पिता और ४५ वर्ष की उम्र का दादा अगर लड़की की माता और दादी मर जाय तो वे फौरन लग्न कर लेते हैं १५ वर्ष की उम्र के लड़के का अगर ३०, ४० या ५० वर्ष की बुढ्ढी औरत से लग्न करने का निश्चय किया जावे तो क्या वह लड़का ऐसा विवाह करना स्वीकार करेगा और ऐसे विवाह में कोई शरीक होगा ? जैसे १५ वर्ष के लड़के का एक बुढ्ढी औरत के साथ विवाह करना घृणास्पद निंदनीय व धिक्कार योग्य है वैसे ही छोटी उम्र की कन्या का ३५, ४०

या ५० वर्ष के बुड्ढे से विवाह करना अन्याय और घोर अपराध है.

जैन शास्त्र व वैदिक ग्रंथों में भी स्त्रियों का महत्व विशेष समझा गया है जैसे सीताराम, गौरी शकर, राधा-कृष्ण आदि नामों में प्रथम सीता, गौरी व राधाजी का नाम है याने प्रथम स्त्री का नाम है व पीछे पुरुष का नाम है. जैन शास्त्र में ऋषभप्रभु ने प्रथम अपनी दोनों लड़कियों को भाषा व गणित सिखाया रेवती जयंती आदि अनेक श्राविकाओं ने समोसरण की जाहिर सभा में प्रभू महावीर स्वामी से प्रश्नोत्तर किये हैं।

जैन शासन में स्त्री और पुरुष दोनों के हक्क समान हैं. वैदिक शास्त्र में भी आप स्त्री जाति का महत्व पढ़ चुके हैं. वर्तमान काल में स्टीमर (जहाज) कंपनियों का यह कायदा है कि अगर स्टीमर में दुर्भाग्यवश कभी आग लग जाय तो प्रथम लड़कियां बचाई जावे उसके बाद लड़के व उनके बाद औरतें व इनके बाद मनुष्यों को बचाने के लिये विचार किया जावे. अगर रक्षा करने का अवसर न होतो मनुष्य, लड़कियों और औरतों की रक्षा का प्रयत्न करते हुए जल जावेंगे. मर जावेंगे. स्त्री जाति का पश्चिम देश में इतना महत्व व आदर होने से पश्चिम देश सब प्रकार से उन्नति के शिखर पर चढ़ा हुआ है. परन्तु इस भारतवर्ष में अन्य सब जातियों की अपेक्षा भी जैन जाति विशेष अवनति की ओर है।

परिग्रह और दान

पांचवा व्रत परिग्रह संतोष का है. यूरोप वाले विवाह शादी में २५, ५० या १०० रुपये खर्च करते हैं परन्तु उन लग्नादि शुभ प्रसंगों की स्मृति में लाखों रुपये दान में देते हैं. वहां वाला हरएक लग्न के शुभ अवसर पर करोड़ों रुपये संस्थाओं को दान में देते हैं. वे लोग भारतवर्ष में अपने धर्म के प्रचार के लिये प्रतिवर्ष ७२ करोड रुपये खर्च करते हैं परन्तु भारतवर्ष में विवाह, शादी, वेश्यानृत्य, आतिशबाजी नुकते आदि व्यर्थ खर्चों में ७२ करोड से भी ज्यादे रकम व्यय कर देते हैं. और विद्या प्रचार में उतनी कोडियां भी खर्च नहीं करते हैं. जैन-समाज में ऐसी एक भी प्रमाणिक संस्था दिखाई नहीं देती और जो संस्थाएँ फिलहाल चल रही हैं उनमे से ज्यादेतर अशिक्षित श्रीमंतों की बुद्धि व विचारों के अनुसार चलती हैं. अशिक्षा के कारण जैनसमाज दिन व दिन गिरती जा रही है अन्य धर्मावलंबी अपने धर्म की तन मन धन से उन्नति कर रहे हैं. यूरोप वाले हवाई जहाज के वेग से, बौद्ध रेलवे के वेग से, मुसलमान मोटर के वेग से, और वैदिक घोडा गाडी के वेग से, अपने २ धर्म का प्रचार कर रहे हैं परन्तु जैनी दिन व दिन घटते चले जा रहे हैं. प्रति दिन २२ बाविस जैनी घटते हैं इस प्रमाण से १५० में जैन समाज का अस्तित्व भी रहेगा या नहीं यह विचार-

णीय है किन्तु शास्त्रीय फरमान २१००० वर्ष तक जैन-धर्म के टिकने का होने से जैन शाशन का उदय होना चाहिये।

दिशा मर्यादा, भोगोप-भोग, अनर्थ दंडादि श्रावक के वारह व्रत है. इन सब व्रतों का पिनलकोड सरकारी कायदे ने भी आश्रय लिया है।

दिशा मर्यादा—एक देश से दूसरे देश मे जाने के लिये पास पोर्ट चाहिये पास पोर्ट के सिवाय कोई भी दूसरे देश में नहीं जा सकता है यह सरकारी कानून है।

भोगोपभोग—अफीम, शराब, कोकीन आदि मादक पदार्थ खाने की सरकार की मनाई है। वैसे ही ज्यादे घोड़े की बग्गी में बैठने की, पैर में सोना पहिनने की भी देशी राज्यों में मनाई है।

अनर्थ दंड—अश्लील शब्द बोलने की लिखने की व अश्लील साहित्य छपवाकर प्रचार करने की, अश्लील चित्र छपाने की व बनाने की आदि सब प्रकार की मनाई है।

पाठकगण देखिये ! संसार के सब व्यवहार धर्म-शाशन के अनुसार चल रहा है. धर्म का अस्तित्व न होतो दुनिया में लूटखोरी व व्यभिचार आदि बढ़ जावें और विश्व में अंधाधुंधी मच जावे राज्य शाशन शांति के साथ चलाने के लिये राज्यकर्ताओंने धर्म की शरण ली है जिससे ही वर्तमान काल में यह सुव्यवस्था दिखाई देती है।

संसार मे धर्म की जड कितनी गहरी है. धर्म विश्व के प्राण समान है किन्तु आज अज्ञान प्राणी धर्म को बिलकुल ही भूल गये हैं और उसकी जड काट रहे हैं जितने अंश में राज्य शाशन कर्ताओं ने धर्म की शरण ली है उतने ही अंश में धर्म का आस्तित्व है और उतने ही अंश में राज्यव्यवस्था सुव्यवास्थित दिख रही है अगर राज्य व्यवस्था धार्मिक नियमों की नींव पर न बनी होती तो मानव जीवन पशु जीवन से भी ज्यादे घृणास्पद दिखाई पड़ता. चैतन्य रहित मुर्दा शरीर जलाने योग्य है उसी तरह संसार भी धर्म तत्व विना श्मशान तुल्य है और उसमें वसने वाले प्राणी हिलते चलते हाड मांस के पिंजर मात्र हैं. बंधुओं ! क्या हाड मांस का पिंजर मय जीवन विताना है,? क्या मनुष्य जन्म जो कि अनंत जन्मों के शुभ कर्म के फल स्वरूप प्राप्त हुआ है उसको व्यर्थ में ही गुमाना है ?

धर्म तत्व अहिंसा, सत्य, आचौर्य ब्रह्मचर्य व संतोष व्रत की आराधना कीजियेगा जिससे इस भव में व अन्य भव में आप को सुख की प्राप्ति हो सकेगी. वही धर्म है कि जिससे इस जन्म में व अन्य जन्म में शांति मिले जिस धर्म से इस जन्म में शांति न मिले व इस जीवन में उन्नति न हो वह धर्म ही नहीं है किन्तु पाखंड मात्र है राज्य ने धार्मिक समुद्र जैसे विशाल तत्वों में से बिंदु जितना धार्मिक अंश अपनी नुकूलता के लिये कानून बनाने में ग्रहण किया है जिसके

फल स्वरूप खुद राजा व करोडों की संख्या में प्रजा का जीवन शांति मय देखा जाता है तो जो संपूर्ण धर्म तत्व की आराधना करे उसका व उसके अनुयाइयों का जीवन कितना पवित्र हो सके इसका पाठकगण स्वयं ही विचार करें. जैन धर्म के प्रत्येक सूत्र विज्ञान की तराजू में तुले हुए हैं जिससे ही यह धर्म पूर्व में विश्ववंद्य था और वर्तमान में भी हो सकता है किन्तु जैनी कहलाने वाले जैन-तत्व को कम समझते है ऐसी हालत में अन्य को तो वे कैसे समझा सकते हैं।

विलास—धार्मिक जीवन विताने वालो को इंद्रिय संयम रखना चाहिये वैसा न करने से उनका व अन्य का जीवन जोखम में पड़ जाता है मनुष्य में इंद्रिय-संयम न होने से वह विलासी जीवन व्यतीत करता है. विलासी जीवन विताने वालों को धन चाहिये और धन प्राप्ति के लिये वह बने उतना अन्याय अनीति, छल कपट व अत्याचार करता है. इंद्रिय-संयम के अभाव में विलास की मात्रा बढ़ती जाती है व ज्यों २ विलासी वासनायें बढती जाती हैं त्यों त्यों वह स्वार्थी होता जाता है वह अपने एक कोडी के बराबर स्वार्थ के लिये दूसरों का करोडों का नुकसान कर बैठता है।

बादीगर की मोरली के वश होकर सर्प, दीपक के वश होकर पतंग, गंध के वश होकर भ्रमर, रस के वश होकर मच्छी, और स्पर्श के वश होकर हाथी अपने प्राण

गुमा देता है उपरोक्त प्राणियोंने सिर्फ अपनी अज्ञान दशा वश अपनी सामान्य इच्छा की पूर्ति के लिये पांव उठाया जिसमें उनके प्राण चले गये तो जो मनुष्य धार्मिक जीवन के पवित्र आशय को भूलकर लाखों जीवों की हाय लेकर अनंत जीवों की विराधना से पूर्ण ऐसा एक ग्रास का सेवन करता है उसकी क्या गति होगी ?

सम्पत्ति शालियों का धन विलास में ही व्यय होता है. पूर्ण खेद के साथ लिखना पड़ता है कि संवत्सरी का परम पवित्र दिन जो कि आत्मशुद्धि का दिन है भाव-दिवाली आत्ममेल को धोने का दिन, विषय व कषाय की मात्रा को घटाने का दिन है उसी दिन बाकी के ३५९ दिन से भी अधिक विषय कषाय की मात्रा के,सुवर्ण मय हार गले में, व हाथ में आभूषण दिखाई देते हैं और शरीर को रेशम के कीडों की आंतों से बनाये हुए कपडे से सजाया हुआ है. त्याग के दिन त्याग भुवन राग भुवन दृष्टिगोचर होता है पंचरंगी चटकीले वस्त्राभूषण में जनता सजी हुई मालूम होती है. त्यागशाला में जनता रागी व भोगी भंवर बनकर आई है यह परम आश्चर्य का विषय है, किसी राज्य सभा में जाने वाले को राज्य सभा के योग्य वस्त्राभूषण धारण करना पडते हैं लग्न के समय लग्न के योग्य स्मशान में जाते समय स्मशान के योग्य वस्त्र पहिनें जाते हैं वैसे ही धर्म स्थान में भी धर्म के योग्य सादे वस्त्र पहिन कर आना चाहिये किन्तु चमकीले भडकीले वस्त्रों में से रेशम के

कीडों की आहें और गायें और भैंसों के समान निर्दोष पशुओं के पुकार की आवाज सुनाई पडती है. उन आवाजों से उन करुणामय आहों से धर्म स्थान भी गूंज रहा है उन्हों की दयार्द्र आवाज क्या आप नहीं सुन सकते हैं? किन्तु जिसको सादगी व शुद्ध खादी से प्रेम है वह सुन सकता है. क्या अन्य उस करुणामय नाद को सुनने का अधिकारी नहीं है? रेशम की उत्पत्ति के लिये नित्य लाखों कीडे मारे जाते हैं और चरवी वाले वस्त्रों के लिये नित्य हजारों गायें काटी जाती हैं. उन सब का पाप विलास प्रिय भाई व बहिनों को लगेगा. मांस खाने वाला अगर मांस खाना छोड दे तो कसाई गायें क्यों मारें? मांस खाने वाला कसाई को गायें काटने के लिये परोक्ष में आज्ञा देता है मांस खाने वाला पैसे देकर कसाइयों से काटने के लिये गायें खरिदवाता है मांस खाने वाले कसाइयों को धन्यवाद देते हैं मांस खाने वाले कसाइयों के धंदे को उत्तेजना देते हैं. मांस खाने वाले बेकारों को कसाई का धंदा करना सिखाते हैं. ऊपर के सब जैसे मांस खाने वालों को लगते हैं वैसे ही यही सब परोक्ष में चरवी वाले और रेशम के कपडे पहिनने वालों को, हस्तिदंत के चूडे पहिनने वालों को व पहिनाने वालों को भी लगते हैं. रेशम व चरवी से बने हुए वस्त्रों के व्यापार का व पहिनने का त्याग कीजियेगा अगर जैनी ही रेशम व चरवी वाले वस्त्रों से मोह न घटावेंगे तो फिर अन्य कौन घटावेंगे?

गुमा देता है उपरोक्त प्राणियोंने सिर्फ अपनी अज्ञान दशा वश अपनी सामान्य इच्छा की पूर्ति के लिये पांव उठाया जिसमें उनके प्राण चले गये तो जो मनुष्य धार्मिक जीवन के पवित्र आशय को भूलकर लाखों जीवों की हाय लेकर अनंत जीवों की विराधना से पूर्ण ऐसा एक ग्रास का सेवन करता है उसकी क्या गति होगी ?

सम्पत्ति शालियों का धन विलास में ही व्यय होता है. पूर्ण खेद के साथ लिखना पड़ता है कि संवत्सरी का परम पवित्र दिन जो कि आत्मशुद्धि का दिन है भाव-दिवाली आत्ममैल को धोने का दिन, विषय व कषाय की मात्रा को घटाने का दिन है उसी दिन बाकी के ३५९ दिन से भी अधिक विषय कषाय की मात्रा के, सुवर्ण मय हार गले में, व हाथ में आभूषण दिखाई देते हैं और शरीर को रेशम के कीडों की आंतों से बनाये हुए कपडे से सजाया हुआ है. त्याग के दिन त्याग भुवन राग भुवन दृष्टिगोचर होता है पंचरंगी चटकीले वस्त्राभूषण में जनता सजी हुई मालूम होती है. त्यागशाला में जनता रागी व भोगी भँवर बनकर आई है यह परम आश्चर्य का विषय है, किसी राज्य सभा में जाने वाले को राज्य सभा के योग्य वस्त्राभूषण धारण करना पडते हैं लग्न के समय लग्न के योग्य स्मशान में जाते समय स्मशान के योग्य वस्त्र पहिने जाते हैं वैसे ही धर्म स्थान में भी धर्म के योग्य सादे वस्त्र पहिन कर आना चाहिये किन्तु चमकीले भड़कीले वस्त्रों में से रेशम के

कीडों की आहें और गायें और भैंसों के समान निर्दोष पशुओं के पुकार की आवाज सुनाई पडती है. उन आवाजों से उन करुणामय आहों से धर्म स्थान भी गूंज रहा है उन्हों की दयार्द्र आवाज क्या आप नहीं सुन सकते हैं ? किन्तु जिसको सादगी व शुद्ध खादी से प्रेम है वह सुन सकता है. क्या अन्य उस करुणामय नाद को सुनने का अधिकारी नहीं है ? रेशम की उत्पत्ति के लिये नित्य लाखों कीडे मारे जाते हैं और चरबी वाले वस्त्रों के लिये नित्य हजारों गायें काटी जाती हैं. उन सब का पाप विलास प्रिय भाई व बहिनों को लगेगा. मांस खाने वाला अगर मांस खाना छोड दे तो कसाई गायें क्यों मारें ? मांस खाने वाला कसाई को गायें काटने के लिये परोक्ष में आज्ञा देता है मांस खाने वाला पैसे देकर कसाइयों से काटने के लिये गायें खरिदवाता है मांस खाने वाले कसाइयों को धन्यवाद देते हैं मांस खाने वाले कसाइयों के धंदे को उत्तेजना देते हैं. मांस खाने वाले बेकारों को कसाई का धंदा करना सिखाते हैं. ऊपर के सूत्र जैसे मांस खाने वालों को लगते है वैसे ही यही सूत्र परोक्ष में चरबी वाले और रेशम के कपडे पहिनने वालों को, हस्तिदंत के चूडे पहिनने वालों को व पहिनाने वालों को भी लगते हैं. रेशम व चरबी से बने हुए वस्त्रों के व्यौपार का व पहिनने का त्याग कीजियेगा अगर जैनी ही रेशम व चरबी वाले वस्त्रों से मोह न घटावेंगे तो फिर अन्य कौन घटावेंगे ?

पृथ्वी, पानी, अग्नि, हवा और वनस्पति के जीवों की रक्षा करने वाले, कीड़े मकोड़े की भी हिंसा न करने वाले, विलास के लिये शौक के लिये पंचेन्द्रिय जीवों की हिंसा करवावें उससे ज्यादा आश्चर्य और क्या हो सकता है ? शास्त्रकार ने १८ प्रकार के चोर बतलाये हैं जैसे १८ प्रकार के चोर हैं वैसे ही १८ प्रकार के हिंसक, कसाई शिकारी भी समझना चाहिये. रेशम व चरबी के कपड़े बेचने वाले, पहिनने वाले, पहिनाने वाले खरीदने वाले इनकी दलाली करने वाले, सीने वाले, बुनने वाले धोने वाले आदि सब उस पाप के भागीदार हैं।

धर्म व राज्य के कायदे

शास्त्रों की सूक्ष्मता बहुत बारीक है तथापि पिनल कोड के कायदे और श्रावक के मुख्य २ व्रत में कहां तक संबंध है यह भी आपको बताना आवश्यक है—

हिन्सा जन्य अपराधों की सजाएं.

(१) खून करने वाले को प्राण दण्ड (फांसी) का. धा. नं. ३०२। (२) भोजन व अन्य किसी तरह विष देने वाले को प्राण दण्ड. का. धा. नं. ३०२। (३) मकान में आग लगाने वाले को ७ वर्ष की सख्त कैद की सजा का. धा. नं. ४३५। (४) आश्रित को भोजन न देकर मृत्यु निपजाने वाले को प्राण दण्ड की

सजा ३०२। (५) सब प्रकार की स्वतंत्रता छीनकर किसी को गुलाम बनाकर रखने, लेने व बेचने वाले को ७ वर्ष की सख्त कैद की सजा का. धा. नं. ३७०। (६) किसी को बिना किसी कारण से रोक (किसी बंधन में) रखने के लिये एक वर्ष की सख्त कैद का. धा. नं. ३४२। (७) किसी को गाली देना, अपमान करना, दिल दुखाना आदि के लिये ३ मास की सख्त कैद की सजा का. धा. नं. ३५२। (८) आम रास्ते पर जानवर काटने आदि की हरकत करने वाले को २००)का दंड का. धा. नं. २९०। (९) आत्म घात करने की कोशिश करने वाले को १ वर्ष की सख्त कैद की सजा का. धा. नं. ३०९। (१०) गर्भपात करने व कराने वाले को तीन व सात वर्ष की सख्त कैद की सजा का. धा. नं. ३१२। (११) बारह वर्ष से छोटे बालक को बिना किसी आश्रय के घर से बाहर निकालने के लिये या छोड देने के लिये सात वर्ष की सख्त कैद की सजा का. धा. नं. ३१७। (१२) मृत बालक को गुप्त गाडने के लिये २ वर्ष की सख्त कैद का. धा. नं. ३१८। (१३) जबरदस्ती से बेगार कराने वाले व शक्ती से ज्यादा काम लेने वाले को एक वर्ष की सख्त कैद की सजा का. धा. नं. ३७४। (१४) किसी पशु को व्यर्थ में दुख देने वाले को ३ मास की सख्त कैद की सजा का. धा. नं. ४२६। (१५) किसी के खेत को हानि

पहुंचाने वाले को ५ वर्ष की सख्त कैद की सजा का. धा. नं. ४३० । (१६) लोगों को डराने के विचार से झूठी गप्प वगैरह उडाने वाले को २ वर्ष की कैद मय जुर्माने कैद की सजा का. धा. नं. ५०५ । (१७) व्यभीचार का झूठा आरोप रखने वाले को ७ वर्ष की सख्त कैद की सजा का. धा. नं. ५०६ ।

झूठ के अपराधों की सजाएँ

(१) झूंठी सौगन्द खाकर बयान देने वाले को ३ वर्ष की सख्त कैद मय जुर्माने की सजा का० धा० नं० १८१ (२) किये काम के लिये दस्तखत न करने वाले को ३ मास की कैद और ५००) रु० तक के दंड की सजा का० धा० नं० १८०, (३) झूंठा कलंक देकर किसी को हानि करने वाले को छह मास कैद की सजा और १०००) रु० तक का दंड का० धा० नं० १८२ (४) जान करके झूठी गवाही करने वाले को सात साल की सख्त कैद की सजा १९३ (५) खून की झूठी गवाही देने वाले को कालापानी और अगर उसके कारण किसी को फांसी मिल गई हो तो फांसी की सजा १९४ (६) वनावटी अंगूठा या सही करने वाले को ७ वर्ष की सख्त कैद की सजा ४७१ (७) झूठा नामा व हिसाब करने वाले को अथवा उसमें मदद देने वाले को ७ वर्ष की सख्त कैदकी सजा ४७७A झूठेखत दस्तावेज रजिस्टर आदि लिखने वाले को ७ वर्ष की सख्त कैद की सजा १९६

चोरी के अपराधों की सजाएं

(१) अच्छा माल बताकर बुरा माल देने वाले को एक वर्ष की सख्त कैद की सजा-कानून धा० नं० ४१७ (२) आटा दाल आदि खाद्य पदार्थों मे खराब पदार्थ मिलाने वालों को छह मास की सख्त कैद की सजा और १०००) रुपये तक का दंड का० धा० नं० २७२ (३) सेठ (मालिक) की चोरी करने वाले नौकर को सात वर्ष की सख्त कैद की सजा का० धा० नं० ३८१ (४) दूसरे के भूले हुए माल को खर्च करने वाले को दो वर्ष की सख्त कैद की सजा का० धा० नं० ४०३ (५) किसी की मिली हुई वस्तु को मूल मालिक को जानते हुए न देकर अपना स्वार्थमय उपयोग करने वाले को २ वर्ष की सख्त कैद की सजा का० धा० नं० ४०३ (६) विश्वास घात करने वाले को दस वर्ष तक की सख्त कैद की सजा का० धा० नं० ४०९ (७) नमूने के अनुसार माल न देने से अथवा असली माल की कीमत में नकली माल को देने वाले को एक वर्ष की सख्त कैद की सजा का० धा० नं० ४१५ (८) किसी प्रकार की ठगाई कर दूसरे को हानि पहुंचाने वाले को दो वर्ष की सख्त कैद मय जुर्माने की सजा का० धा० नं० ४१५

—*—

महसूल-चोरी

(१) महसूल न चुकाने वाले का माल जप्त कर लिया जाता है। (२) अगर किसी ने दूसरी बार भी महसूल न चुकाया तो माल जप्त कर दण्ड किया जाता है। (३) अगर तीसरी बार फिर महसूल की चोरी की तो माल जप्त कर दण्ड और सख्त कैद की सजा दी जाती है।

व्यभिचार के अपराधों की सजाएं

(१) स्त्री की लज्जा लेने वाले को २ वर्ष की सख्त कैद मय जुर्माने की सजा—कानून धा० ३५४ (२) किसी स्त्री पर बलात्कार करने वाले को कालापानी या १० वर्ष की सख्त कैद की सजा—धा० ३७६ (३) छोटी उमर (१२ वर्ष के नीचे) की स्वस्त्री के साथ विषय भोग करने वाले को काला पानी या १० वर्ष की सख्त कैद की सजा—धा० ३७६ (४) प्रकृति के विरुद्ध (पुरुष पुरुष के साथ या स्त्री स्त्री के साथ या पशूके साथ) विषय भोग करने वाले को कालापानी या १० वर्ष सख्त कैद की सजा का० धा० ३७७ (५) एक शादी को गुप्त रखकर दूसरी शादी करने वाले को दस साल की सख्त कैद की सजा का० धा० नं० ४९५।

—*—

लालच के अपराध

(१) रिश्वत लेने वाले को ३ वर्ष की सख्त कैद और देने वाले को १ वर्ष की सख्त कैद की सजा. धा. १७१ (E)। (२) काम करने के लिये इनाम के नाम से रिश्वत लेने वाले और देने वाले को उपर लिखी सजा. धा. १६१ (३) जाली सिके और नोट व स्टॉम्प बनाने वाले को और चलाने वाले को १० वर्ष की सख्त कैद की सजा. का. धा. २३२ (४) जाली सिके व नोट पास में रखने वाले को ३ साल की सख्त कैद की सजा. धा. २४२ (५) खोटा तराजू, बाट और माप आदि रखने वाले को १ वर्ष की सख्त कैद की सजा. धा. २६४ (६) बिमा करवा कर मकान व अन्य वस्तु को आग लगा देने के लिये दो साल की सख्त कैद की सजा. धा. ४२७ (७) सिपाही आदि का झूठा ड्रेस पहिनने वाले को ३ मासकी सख्त कैद की सजा. का. धा. १४०

गैर वर्ताव के अपराध.

(१) धर्म स्थान मे धर्म विरुद्ध या किसी तरह के बिभित्स कार्य करने वाले को २ वर्ष की सख्त कैद की सजा. धा. २९५ (२) किसी धर्म क्रिया में बाधा पहुंचाने वाले को १ वर्ष की सख्त कैद की सजा. धा.

२९६ (३) किसी को खोटा उपदेश देकर गुन्हा करवाने वाले को गुन्हे के हिसाब से सजा दीजाती है. १०८ (४) मनुष्यों के रहने अथवा व्यापार आदि के मिलने के स्थानों पर हवा इत्यादि को अशुद्ध करने वाले पदार्थ डालने वाले को ५०० रु० दण्ड का. धा. २७८ (५) आम रास्ते पर जुंआ आदि हानिकर कार्य करने वाले को २०० रु० दण्ड २९० (६) हानि दायक या गंदी पुस्तक चित्र आदि बेचने वाले को ३ मास की सख्त सजा २९२ (७) किसी की निन्दा, मान हानि या कलंकित करने वाले को या ऐसी बातों को छपाने वाले को २ वर्ष की सख्त कैद की सजा धा. ४९९ (८) पचास रु० से अधिक नुकसान करने वाले को २ वर्ष कैद की सज़ा का० धा० नं ४२७ (९) पानी पीने के स्थानों में कपडे आदि धोकर गंदा करने वाले को तीन मास की सख्त कैद की सजा का० धा० नं० २७७

इसी प्रकार अन्यत्रत भी पिनल कोड के कायदे के साथ मिलान किये जा सकते हैं. विशेष माहिती के लिये हिन्दी का ताजीरात हिंद प्रत्येक श्रावक को देखना चाहिये, और अपने जीवन का निरीक्षण करना चाहिये, कि राज्य के कानून मेरे से पालन होते हैं या नहीं, जब मेरे से राज्य का कानून का पालन नहीं होता है. जबकि जाति के साधारण नियमों का मैं नहीं पालन कर सकता तो अनन्त ज्ञानी की आज्ञा का पालन मेरे से कैसे हो

सकता होगा. राज्य के कानूनों से शास्त्रकारके कानून वहुतही सूक्ष्म हैं व उनके पालन करने के लिये उतनी हीं ज्यादे सावधानी होनी चाहिये.

उपसंहार—पाठकगण ! धर्म के तत्वों पर ही संसार का सब व्यवहार चलता है. जबतक इस भूमि पर सत्य और शील है तब तक ही ऐसी शांति है जब सत्य और शील का नाश होजावेगा तब यह पंचम आरा [युग] पूर्ण होगा, और छठे युग की शुरुआत होगी, संवत्सरी पर्व की रचना सत्य और शील की महिमा के लिये की गई हैं. पंचम युग २१०००, वर्ष का है उस में से २५०० वर्ष वीत चुके हैं और १८५०० वर्ष के वाद सात २ दिन तक अग्नि विष आदि की सात वर्षा होंगी. प्रति दिन की सात वर्षा के हिसाव से ४९ दिन में ७ वर्षा होंगी. १८५०० वर्ष के वाद इस भूमि पर की संपूर्ण सुंदर वस्तुओं का सर्वथा नाश होजावेगा उस समय से छठा युग कहलावेगा. उस समय के मनुष्यों की आयुष्य २० वर्ष की उनका शरीर १ हाथ का व ६ वर्ष की लडकी गर्भ धारण करने लगेगी. मनुष्य नदी की मच्छियां खाकर अपना जीवन निर्वाह करेंगे- मरे हुए मां वाप के मस्तिष्क की खोपडीयें ही उनके वर्तन का काम देंगी. उस वक्त के मनुष्य धर्म विहीन पापमय जीवन विताकर नर्क तिर्यंच में जाकर उत्पन्न होंगे. आज आप लोगों का अहोभाग्य है कि १८५०० वर्ष पहिले आपने जन्म लिया है जिस

कारण से धर्म आराधना कर सकते हो। अगर इस मनुष्य जन्म में आप से धर्म आराधना न हो सकी तो फिर आपके लिये पंचम आरा(युग) और छठा आरा(युग) दोनों वरावर हैं. पंचम कालका सुभीता, सुख, संपत्ति, वैभव, दूध, दही घी, मेवा, मिठाई आदि विलासी जीवों के लिये नहीं हैं, किन्तु यह तो धर्मी जीवों के लिये हैं जिनकी पुण्य प्रकृति से सब को लाभ मिल रहा है। जिस वक्त पुण्य-शाली धर्मी जीवों का अभाव हो जावेगा उस वक्त अग्नि वर्षा होगी. और वह छठा आरा कहलावेगा।

सत्य शील की महिमा--सत्य और शील आदि के प्रताप से ये वाग-वगीचे हाट-हवेलियां आदि दिखाई दे रही हैं. और उनकी रक्षा के लिये पूर्व के महा पुरुषों ने महान् कष्ट उठाये हैं. शील की रक्षा व महत्व के लिये श्री पुरुषोत्तम रामचंद्रजी ने रावण के साथ घोर युद्ध किया था और विश्व मे शील की महिमा की ध्वजा फहराई थी अगर श्रीरामचंद्रजी रावण को शिक्षा न देते तो शील की महिमा आज विश्व भरमें गाई न जाती और आज लाखों व्यभिचारी सतियों के सतित्व को लूटते. सत्य की महिमा के लिये अरणक श्रावकजी ने अपनी और अपने सैंकड़ों साथियों की जान देना स्वीकार किया था जिससे ही आज सत्य की महिमा हो रही है. न्याय के लिये चेड़ा महाराज ने १,८०,००,००० मनुष्य का वलिदान देकर न्याय की रक्षा की थी. अहिंसा के लिये श्री मेघ-

रथ राजा ने अपने प्राण व राजपाट अर्पण कर दिये थे. सुदर्शन सेठ ने शील के लिये शूली पर चढना स्वीकार किया था ये अनेक महान पुरुषों के ज्वलंत उदाहरण समाज के सामने हैं। इतने लंबे विवेचन का मतलब यही है कि मोक्ष मार्ग व संसार मार्ग के लिये धर्म ही परम सुख दायक है. और इसकी शरण लेना चाहिये।

संप्रदाय भेद—एक ही अनाज को भिन्न भिन्न देशों में भिन्न २ रीति से बनाकर खाते हैं गेहूं के बिस्कूट पुड़ी, पोताये. रोटी, थूली, लपसी, सीरा और लड्डू आदि अनेक प्रकार के पदार्थ बनाकर क्षुधा की तृप्ति की जाती है और एक ही वस्त्र का कमीज, कुरता, हाफकोट, लांग कोट, ओव्हर कोट, अगरखी, दुपट्टा आदि भिन्न २ आकृति के वस्त्र से शरीर ढांका जाता है. सब का ध्येय क्षुधा तृप्ति और शरीर रक्षा है. उसी तरह आत्मिक भोजन मे धार्मिक अनुपान का समावेश किया जाता है धार्मिक अनुपान भिन्न २ हैं. सबके शास्त्र-गुरु-व आचार्य भिन्न भिन्न है किन्तु सबका ध्येय मात्र एक ही सुख प्राप्ति का है अविवेकवान दरजी एक थानको खराब करने के बाद कोट बना पाता है परन्तु कुशल दरजी छोटे टुकड़ों को योग्य रीति से काटकर उसका कोट बना लेता है इसी भांति मोक्ष मार्ग में अविधि का सेवन करने वाले को ज्यादा क्रिया सम्यक ज्ञान के अभाव मे करने की जरूरत होती है. पर सम्यक ज्ञानी शीघ्र मोक्ष का आराधक होता है.

भिन्न २ मनुष्यों की भिन्न भिन्न रुचि रहती है. सबकी रुचि एकसी नहीं होती क्योंकि सबकी प्रकृति भिन्न २ है जैसे एकही बीज के बने हुए वृक्ष की डालियां दशों दिशाओं मे फैलती हैं अगर वे डालियां एक ही दिशा में झुक जावेंगी तो विशेष वजन होकर सब गिर जावेगी वैसे ही धर्म यह वृक्ष है और संप्रदाय ये डालियां हैं. और वे भी वृक्ष की तरह शोभा का रुप धारण कर सकती हैं. किन्तु जब उनमें संप्रदायांधता आ जाती है तब वे संप्रदाय संपमें दाह का काम करती हैं एक एक संप्रदाय अपने को एक दूसरे से भिन्न व शत्रु समझती हैं. सब एक दूसरे की जड़ काटने की कोशीश करती हैं जिससे धर्म का नाश सन्निकट दिखाई देता है. धर्म में गुणग्राहकता, स्वदोष दर्शक बुद्धि, समता, सरलता और शांति हैं. परन्तु सांप्रदायिकता में उससे विपरीत पर दोष दर्शन, पर लघुता, स्वगुरुता, विषमता, वक्रता, अशांति, आदि दोषों का आदर किया जाता है. धर्म यह वर्षा के जल समान पवित्र है. सांप्रदायिकता के घडे में आजाने से वह ब्राह्मण का व भंगी का कहलाता है. पवित्र जल घडे के संग से ब्राह्मण और भंगी जितनी भिन्नता धारण करता है, सांप्रदायिकता के कारण धार्मिक क्रियाएं भी यंत्र की तरह डिबिया मे बंद कर दी गई हैं. फोनोग्राफ बाजे की तरह प्रतिक्रमण स्वाध्याय किया जाता है और उसमें की निर्जरा मानी जाती है. रेती के खिरने से व बड़ी

के कांटे चलने से सामायिक की पूर्णता मानी जाती है. फोटोग्राफी कांच समान मुनि दर्शन किये जाते है. किन्तु मुनि दर्शन से अपने जीवन की पवित्रता का विचार कम किया जाता है. जहां पर सांप्रदायिकता नहीं है वहां पर ही धर्म के तत्व रहे हुए हैं.

संवत्सरी का यह पवित्र दिन है. इसको अपन भाव दिवाली के नाम से पहिचानेंगे द्रव्य दिवाली में शरीर की शुद्धि की जाती है परन्तु इस भाव दिवाली में आत्मा की शुद्धि करने की है. संवत्सरी पर्व यह एक धार्मिक पर्व है किन्तु इस दिन ने अब त्योहारका स्वरुप धारण कर लिया है. इन आठ दिनों में अन्य दिनों की अपेक्षा विशेष प्रकार के भोगोपभोग भोगे जाते हे. दिवाली के दिनों में जैसे घरकी सजावट की जाती है वैसे ही इन दिनों में घर की नहीं किन्तु जो आत्मा का घर है उसकी सजावट की जाती है अन्य दिनमें मुश्किल से एक भी इंद्रिय का भोग भोगा जाता होगा परन्तु इन दिनों में पांचो इंद्रियों के भोग भोगे जाते है (१) उधर मंदिरादि मे गायन व बाजे बजते हैं इधर धर्म स्थान में विविध राग रागनियों से श्रोतागणों की श्रवणेंद्रियों को भोजन मिलता है (२) उधर मंदिर मे मूर्ति को आंगी व आभूषणो से सजाते हैं और बिजली की बत्तियों से भी सजावट करते हैं. इधर साधु मार्गी समाज विविध प्रकार के आभूषण व वस्त्र से स्वतः को व पुत्र को व स्त्री को

श्रृंगार करा के अपनी चक्षु इंद्रिय की तृप्ति करता है. (३) सिर में तैल व कान में अत्तर डालकर घ्राणेंद्रियों के विषय कों पोषित करते हैं (४) उपवास करो या न करो किन्तु संवत्सरी के अगले रोज वढिया मिठाई बना कर ठसाठस पेट भरा जाता है. अगर पेट में समा सके तो कई दिन तक खा सकें इतने लड्डू भरलें किन्तु क्याकरें पेटमें एक दिनकी खुराक की अपेक्षा विशेष लड्डू समा नहीं सकते हैं. उपवास के रोज संध्या होते ही पारणे के विचार आया करते हैं (५) स्पर्शेंद्रियः—कोमल रेशम के कीडों के वस्त्र से शरीर सजाया जाता है इस प्रकार संवत्सरी के रोज पांचों इंद्रियो का भोग भोगा जाता है उस रोज भोगों को त्याग मानकर भी पांचो इंद्रियो का भोग भोगा जाता है व ऐसी क्रियाओं से स्वर्ग और मोक्ष की आशा रखी जाती है संवत्सरी के रोज विषय कषाय घटाने के वदले नित्य की अपेक्षा विशेष रुपसे विषय कषाय वढाने की क्रिया पूर्ण की जाती है. कीमती वस्त्र व आभूषण पहिन कर आज संवत्सरी के रोज मोह भाव वढाया जाता है मान की मात्रा पोषित की जाती है. व वैसा विकारी शरीर व मन बनाकर धर्म स्थान में धर्म ध्यान के लिये जनता आती है यह कितने आश्चर्य की बात है लोकोत्तर धर्म ने लौकिक स्वरुप धारण कर लिया है. धर्म स्थानक यह अपनी श्रीमंती बताने के लिये प्रदर्शन बन गया है विलासी चमकीले भडकिले वस्त्रों को

ग्रहण करवाने का स्थान है. वैसे वस्त्रों की जाहिर खबर का यही स्थान है. वैसे वस्त्र खरीदने की दलाली करने वाले स्त्री व पुरुषों का सम्मेलन है. गरीब स्त्रियां व बालक बालिकाओं के लिये यह सम्मेलन दुःखदायी व अश्रु गिराने वाला है सेठानीजी की हीरा मोती की चूड़ियें देखकर चांदी के चूड़े वाली बाई लज्जित होजाती है अपने मनमें दो आसूं टपका कर अपने हाथों को छूपा लेती है पाठकगण! यह है आपकी संवत्सरी पर्वकी करुण कथा, इसमें कब परिवर्तन होगा और कौन करेगा?

मुनिराज ने अंतगढ़ सूत्र फरमाया उसमें विश्वका सार आगया. श्रीकृष्ण जैसे तीन खंड के नाथ ने गरीब बुड्ढा मजदूर की एक ईंट उठाई और श्रीकृष्ण के अनुसार उनकी सेना ने भी एक एक ईंट उठाई जिससे उस गरीब का दुःख दूर हुवा. सोमल ब्राम्हण ने गजसुकुमार के सिर पर अग्नि रखी तब प्रभुने फर्माया कि हे कृष्ण सोमलने तेरे बंधु को मोक्ष जाने में सहायता दी है इससे ज्यादा सादगी व गुण ग्राहकता का आदर्श ज्वलंत बोध और कहां मिल सकता है. आज चार प्रकार के आहार का त्याग करके चार कषाय के भी त्याग करने के है. चौरासी लाख जीवा योनियों से क्षमा मांगने की है, जो कीड़ी की दया पालता है वह परोक्षमें गाय की हिंसा कैसे करावेगा.? जो पृथ्वी, पानी, वनस्पति आदि जीवों से क्षमा मांगेगा वह मनुष्य से कैसे विरोध रक्खेगा. किन्तु आज कल नकल का

जमाना है जैसे लोग जाली रुपये व नोट चलाकर धन-वान होना चाहते हैं किन्तु पकड़े जाने पर उनके हाथ पांव काट लिये जाते हैं. वैसेही नकली क्षमा का ढोंग करके अपने को श्रावक व साधु कहलाने वाले को अपनी जोखमदारी का विचार करना चाहिये.

प्रभुने मुनि की कषाय को जल की लकीर वत् फरमाया है. मुनि को क्रोध, मान नहीं करना चाहिये. कभी आजाय तो क्षमा मागने के पहिले मुंह का थूंक गले में भी नहीं उतारना प्रभू की आज्ञा कितनी सख्त व कठिन है किन्तु उस आज्ञा का पालन करे कौन ? जिसको सर्प और बिच्छु का ज्ञान है वह तो सर्प और बिच्छु का त्याग करेगा. वैसे ही जिसको कषाय बुरी है, अनंत संसार बढ़ाने वाली है. इस प्रकार का सम्यक ज्ञान है. वह कषाय का त्याग करेगा.

स्कंधकजी ने ४९९ शिष्यों को घाणी में पीलने पर भी क्षमा की और सिर्फ एक मुनि को बचाने के लिये पीलने वाले को समझाया वह न समझा जिससे उनको कषाय आई उतनी अल्प कषाय से महा पुरुषको संसार समुद्र में भटकना पडा. थोड़ा मान का अंश कायम रह जाने से बाहुबलजी का केवल ज्ञान रुका. थोड़े कपट का सेवन करने से मल्लीप्रभु के जीव को स्त्री वेद में आना पड़ा इतने बड़े महा पुरुषों को इतनी छोटी कषाय के लिये इतना कष्ट उठाना पड़ा तो जो यावज्जीवन विषय

कषाय की वृद्धि के लिये प्रवृति करते हैं उनकी क्या गति होगी.

आज आप लोगों के चहेरे पर त्याग भावना धर्म भावना और राग भावना दोनो दृष्टिगोचर होती हैं. राग भावना का प्रकाश सूर्य जैसा दीखता है पर त्याग भावना का प्रकाश दीपक जैसा है. सूर्य के प्रकाश के सामने दीपक का प्रकाश मंद पड़ जाता है. वैसेही आज त्याग भावना छिप गई है और रागभावना से शृंगारी वस्त्र व आभूषण धारी दीख रहे हैं. लग्न के समय आप गलेमें माला, मुंह पर मुंहपत्ति, व हाथ में पूंजनी ले जाते हो या नहीं? उस भोग के स्थान पर त्याग के भंडोपगरण नहीं लेजाते हो तो यहां त्याग के भुवन में शृंगार करके आकर इसको शृंगार भुवन क्यों बनाते हो?

संवत्सरी का दिन यह तो धर्म भावना की परीक्षा का दिन है विद्यार्थी परीक्षा के दिन फेल होजावे तो उसको एक वर्ष का नुकसान होजाता है परीक्षा के दिन वह पूर्ण सावधानी रखता है वैसे ही आपके लिये आज का यह दिन परिक्षा का दिन है किन्तु आज तो आप विशेष शृंगार सजकर आये हो धर्म आराधना के लिये आप नित्य की अपेक्षा विशेष बीमार दिखाई देते हो जहांतक आरंभ और परिग्रह से उदासीनता नहीं होती वहां तक धर्म के सन्मुख होना मुश्किल है. आज आप विशेष प्रकार से आरंभ और परिग्रह मे मग्न होकर

पधारे हैं विशेष आरंभ से बने हुए ये वस्त्र व आभूषण हैं और उनको बनाने के लिये विशेष परिग्रह का खर्च हुआ है आज आप आरंभ व परिग्रह से तर होकर यहां पधारे हो.

चौरासी लाख जीवायोनिमें मनुष्य जाति के साथ और जिसके साथ दिल दुखाने का प्रसंग आया हो तथा मन, वचन और काया से किसी का दिल दुख पाया हो, उसके पाससे क्षमा याचने की है. अन्य जीवों से मनुष्य के साथ कषाय विशेष समय तक रहती है और ऐसी दशा मे विशेष रूप से निकाचित कर्म का बंध होता है इसलिये भव्य आत्माओं को कषाय से सदा दूर रहना चाहिये. मोक्ष मार्ग के लिये कषायादिक को रोकने का नाम संवर है और पुराने कर्म क्षय करने के लिये प्रायश्चित विनय ज्ञान ध्यानादि तप करना चाहिये तप से कर्मों की निर्जरा होती है. और अंत में आत्मा कर्म रहित होकर मुक्ति की अधिकारी होती है. ता० २४-९-३२. संवत्सरी पर्व. (लिखित व्याख्यान परसे)

—=—

शरीर भी मकान है—

मनुष्य को शरीर का मोह अत्यंत होता है और इसी शरीर के मोह में [illegible] धर्म तथा [illegible] के नियमों की [illegible] शरीर के वास्तविक स्वरूप को

नहीं जानता। जिस प्रकार हम अपने निवास स्थान को मकान कहते हैं उसी प्रकार यह शरीर भी आत्मा का निवास स्थान अर्थात् मकान है। सांसारिक मकान तीन तत्वों से निर्मित है। पत्थर-चूना-पानी। इसी प्रकार यह शरीर रुप मकान मुख्यतः तीन पदार्थों से बना हुआ है। हड्डी मांस, तथा रक्त। शरीर में मकान की तरह पत्थर का काम हड्डी से, मांसका चूने स रक्त का पानी से। मकान पर चूने की कलाई की जाती है उसी प्रकार शरीर के उपर चमड़े की कलाई है। केवल इस कलाई के कारण शरीर तथा मकान की शोभा है। शरीर के ऊपर से यदि कलाई रूपी चमड़ा अलग कर दी जाय तो यह शरीर अत्यंत ही घृणास्पद होजायगा। दोनों में भेद इतना ही है कि सांसारिक मकान स्थिर है तब शरीर रूपी मकान एक स्थान पर से दूसरे स्थान पर लेजाया जासकता है। वर्तमान काल में ऐसे लकड़ी के मकान बने हैं कि जिन्हे मनुष्य शरीररूपी मकान के समान एक स्थान से अन्य स्थान पर लेजा सकते हैं. जब अपने को अपने मकान से कहीं बाहर जाना होता है तब मिट्टी के मकान से निकलने के बादही जा सकते हैं मिट्टी के मकान को उठाकर बाहर नहीं जा सकते हैं। वैसे ही परलोक जाते समय इस शरीर रूपी मकान को यहां छोड़कर जाना पड़ता है। मिट्टी के खाली मकान में अन्य मनुष्य आकर ठहर सकता है परन्तु खाली पड़े हुए शरीररूपी मकान

में कोई भी नहीं ठहर सकता है उसको तो जलाना ही पड़ता है. मिट्टी के लावारिस मकान को लोग लाखों रुपये देकर खरीदते हैं परन्तु निर्जीव शरीर रूपी मकान से तो सब घृणा करते हैं. पिता पुत्र के पुत्र पिता के, माता पुत्री के, पुत्री माता के पति पत्नी के, पत्नी पति के, चेतन्य रहित शरीर को शीघ्राति शीघ्र जला कर भस्म करते हैं वर्षा के कारण शरीर न जले तो उसमें तैल आदि डालकर जलाते हैं और उस शरीर की संपूर्ण राख कर डालते हैं तथा बची हुई पत्थर वत् हड्डीयों को ढूंढ कर जलाते हैं। फिरभी यदि पत्थर वत् हड्डीयों के टुकडे बाकी रह जाते हैं तो उनको ढूंढ २ कर एकत्र करके उनका नाश करने के लिये जल में डाल देते हैं. शरीर रूपी मकान के स्वामी के चले जाने पर उसके चैतन्य रहित शरीर रूपी घर की उसके स्नेही इतनी दुर्दशा करते हैं लेकिन इसी शरीर के बल पर मनुष्य मोह रख कर अनंत जन्म तक चले उतने पापकी सामग्री एकत्रित करता है एक जीवन के लिये, एक शरीर की मिथ्या शांति के लिये, अनंत भव और अनंत शरीर धारण करके अज्ञानी अनंत कष्ट उठा रहा है उसको अनेक प्रकार, का बोध देने पर भी वह शरीर का मोह नहीं छोडता है।

मनुष्य शरीर में तीन मंजिल हैं. प्रथम मंजिल कमर तक की दूसरी मंजिल गरदन तक की और तीसरी

मंजिल गरदन के ऊपर के हिस्से की जिसको हवा बंगला कहना चाहिये. क्योंकि उसमें सारे शरीर की सजावट की गई है. ऊपर की सजावट से ही शरीर सुंदर दीख पडता है. अगर ऊपर की सजावट में थोडी सी भी कसर होतो सारा शरीर घृणा का पात्र बन जाता है. जैसे नाक का थोडा ही हिस्सा अगर कटा हो या आंख मे थोडा ही मोतिया बिन्दु पड गया हो तो वह सारा शरीर रूपी मकान भद्दा मालूम होने लगता है. और उसका सुधार भी नहीं हो सकता है. मिट्टी का मकान चाहे जितना खराब हो जाय तदपि उसकी मरम्मत करने से वह पाहिले से भी विशेष सुन्दर दिखाई पडने लगता है परंतु चैतन्य रहित मनुष्य शरीर की तो मरम्मत ही नहीं हो सक्ती है. ऐसा यह निर्माल्य एवं कमजोर है.

प्रथम मंजिल मे पाखाना और पेशाब घर है. दूसरी मंजिल में रसोई घर (पेट) है. वहां पर रसोई बनती है. और वहां की बनी हुई रसोइ सबके काम आती है अगर एक दिन रसोई न बने तो घर के तमाम आदमी (अंगोपांग) भूख से चिल्लाने लगते हैं. हाथ, पांव, कमर आदि तमाम थक जाते हैं आंख, कान, और जिव्हा की भी शक्ति कमजोर हो जाती है. भोजन पहुंचने से ही सबको शक्ति मिलती है.

तीसरी मंजिल का नाम हवा बंगला है उसमें विविध प्रकार के फानीचरादि से सजावट की गई है

कुशल कर्म कारीगर ने सजावट करने में बुद्धि का बहुत ही सुंदर उपयोग किया है. इस बंगले में छः खिडकियां है, एक दरवाजा है, और ऑफिस भी वहीं पर है. इस मकान में अच्छी हवा आने के लिये और गंदी हवा निकलने के लिये दो खिडकियां है. जिन्हें नासिका कहते हैं. जो Ventilation का काम करती है. दो खिडकियां प्रकाश देने वाली है. प्रकाश की जरूरत हो तो उन खिडकियों को खोल दो और अगर अंधेरे की जरूरत हो तो उन खिडकियों को बंद कर दो। तुरंत अंधेरा हो जावेगा. दो खिडकियां आवाज आने की है। उनसे आवाज सुनाई पडती है. वे टेलिफोन का काम करती हैं.

मुंह दरवाजा रूप है उसमें सिपाही बैठा हुआ है वह योग्य को अंदर आने देता है और अयोग्य को जाते हुए रोकता है.

मस्तिष्क हेड ऑफिस है. उसमें दफ्तर है. सब घर वालों की फरियाद वहां पहुंचती है. और उस फरियाद की सुनवाई वहां पर होती है. अगर कोई सुनवाई न करे तो उसे दूसरी तीसरी बार आज्ञा देकर मकान की तथा अपने आश्रितों की रक्षा करवाता है.

उदाहरणार्थ पांव में कांटा लगते ही तुरंत उसकी फरियाद ऑफिस में चली जाती है. वहां से हाथ पर हुक्म छूटता है कि कांटे को शीघ्र निकालो. आज्ञा पाते हाथ पैर की मदद के लिये दौडता है. कांटे को

गहरा गडा हुआ देखकर हाथ ऑफिस में रिपोर्ट करता है कि मेरे से यह नहीं निकल सक्ता है तब वहां से सुई और चिमटा लाने के लिये पैर को आज्ञा होती है. पैर विचारा सख्त बीमार होते हुए भी लंगडते २ जाकर अपने स्वामी की आज्ञा का पालन करता है. इस प्रकार की इस शरीर रूपी मकान में विचित्र व्यवस्था है. ऐसी व्यवस्था विश्व के करोडो कुशल कारीगर भी नहीं कर सक्ते हैं.

पाठक वृंद ! जिस मकान में आप निवास करते हैं उसकी व्यवस्था कितनी विचित्र है. आंख की दो खिडकियां कितनी जबरदस्त हैं. लाख सूर्य होने पर भी बिना आंख के कुछ काम नहीं चल सकता. लाखों सूर्य से भी विशेष मूल्यवान ये दो आंखें हैं. इनका मूल्य कितना होना चाहिये उसका आप खुद ही विचार करें. दो आंखों की खिडकियों की अपेक्षा सुनने की कान की खिडकियां अनंत गुणी विशेष मूल्यवान है. एकेक इंद्री इतनी मूल्यवान है तो सब इंद्रियों और तमाम शरीर का मूल्य पाठक स्वय विचारें.

शरीर रूपी मकान की छत सिर के ऊपर की खोपडी है. छत की रक्षा के लिये उसके ऊपर केश रूपी केवलू छाये गये हैं. इस प्रकार की इस शरीर रूपी मकान की रचना है. इसका मूल्य अनंत है ऐसे विचित्र मकान को खरीदने के लिये, प्रिय पाठक वृंद ! आपने कितने

दाम दिये होंगे इसका थोडा विचार कीजियेगा. ऐसे हीरा, मोती और माणिक से भी अनंत मूल्यवान शरीर रूपी मकान में निवास करके कौनसे कार्य करना चाहिये इसका विचार कीजियेगा. सामान्य मिट्टी के नये मकान, धर्मस्थानक पोषधशालादि में आप जाते हैं. वहां पर आप प्रभु स्तुति और आत्मशुद्धि करते हैं। उस मकान की अपेक्षा यह शरीर रूपी मकान अनंत पवित्र और मूल्यवान है पवित्र शरीर में निवास करके पवित्र कार्य करना चाहिये. अच्छे मकान में अच्छे कार्य होने चाहिये। पाखाने में सब टट्टी जाते हैं, हवा बंगले में कोई टट्टी नहीं जाता. वैसेही पवित्र एवं मूल्यवान शरीर से अमूल्य एवं पवित्र कार्य करने चाहिये. अगर ऐसा नहीं किया तो मानव भव का मिलना और न मिलना दोनों बराबर है. ऐसे अपूर्व शरीर से अपूर्व कार्य ही करने चाहिये. अन्यथा अपूर्व शरीर की कुछ भी सार्थकता नहीं है.

चौरासी लक्ष जीव योनी में मनुष्य शरीर उत्तम है. स्वर्ग के देव और इंद्रादि के शरीर से भी यह शरीर अनंत गुना उत्तम है. असंख्य देव अपना स्वर्गीय सुख स्वर्गीय देवांगनाएं और रत्न महलादि का त्याग करके इस मानव भवन में निवास करना चाहते है. परन्तु उनको यह शरीर-रूपी मकान मिलना बहुत दुर्लभ है, और कितनेक स्वर्ग से चवकर पृथ्वी, पानी, वनस्पति आदि

अधम जीव योनियों में उत्पन्न होते हैं. अनंत पुण्यवान् देव को ही यह मानव शरीर मिलता है.

धर्म रहित मनुष्य का शरीर पशु के शरीर से भी अनंतगुना पतित है। पशु का शरीर जीवित अवस्था में भी काम आता है और मृत्यु के उपरान्त भी उसकी हड्डियां, चमड़ा तथा सींग आदि पदार्थ काम में आते हैं। किन्तु धर्मरहित मनुष्य के शरीर का कोई भी अंग या उपांग जीवित अवस्था में या मृत्यु के उपरान्त भी उपयोग में नहीं आता है। मृत सर्प या श्वान के कलेवर से भी मृत मनुष्य का कलेवर अधिक दुर्गंध युक्त होता है। मनुष्य देह से धार्मिक जीवन व्यतीत किया जाय तभी उसका साफल्य है, अन्यथा उसका प्रत्येक क्षण भयंकर है। मनुष्य के भी पांच इंद्रियां हैं और पशु के भी पांच। आहार-निद्रा-भय-मैथुनादि सब क्रियाएं मनुष्य और पशुओंमें समान हैं। दोनों में अंतर है तो केवल आत्मिक ज्ञानका है। शारीरिक-ज्ञान पशु-पक्षियों में भी है। वे चाहे संज्ञी हों या असंज्ञी या विकलेंद्रिय लेकिन सबको शरीर से प्रेम अवश्य है। और वे शारीरिक सुख के लिये दिनरात प्रयत्न किया करते हैं।

चींटी सरीखा छोटा प्राणी भी अपना चिन्ह इतना छोटा और गहरा बनाती है कि मनुष्य तक उसे कष्ट नहीं पहुंचा सकता। मक्खी जमीनपर बहुत कम चलती फिरती है। वह ज्यादहतर हवा में उड़ती फिरती है। अगर

मनुष्य उसे पकडना चाहे तो वह उसकी पकड में नहीं आती है। रात्रि में वह जमीन या दीवाल पर न सोते हुए लटकती हुई रस्सी आदि चीजों पर विश्राम लेती है जिससे अन्य भक्षक प्राणी आकर उसका भक्षण न कर सकें ।

पक्षी अपने घोंसले पृथ्वी पर न बनाते हुए गगन-चुंबी विशाल वृक्षों पर बनाते हैं । उनमें अपने अंडों को रख कर उन्हें सेते हैं और जब तक उनके पर फूटकर वे उडनेके योग्य न हो जाय तब तक उनकी जठराग्नि के अनुकूल खुराक देकर उनकी प्रतिपालना करते हैं । पशुओं में गाय अपने बच्चे के लिये दूध गोपकर रखती है । संध्या को जंगल से लौट कर आने पर वह अपनी बोली में बच्चे को समझाती है कि मैं जंगल से घास का दूध बनाकर तेरे लिये लाई हूं । इसके प्रत्युत्तरमें बच्चाभी अपनी निर्दोष आवाज से माता का स्वागत करता है । पश्चात् दोनों प्रेम पूर्वक एक दूसरे से मिलते हैं और माता जिव्हा से बच्चे को चाट कर अपना प्रेम प्रदर्शित करती है । हजारों गौओं में भी बच्चा अपनी माता को तथा माता अपने बच्चे को फौरन पहिचान लेती है । मनुष्य के समान पशु--पक्षी भी अपने लिये धन--धान्यका संग्रह करते हैं तथा मकानादि बनाते हैं । चींटियां अपने बिलों में धान्य इकट्ठा करती हैं । मक्खियां अपने छत्तों में मधु संचय करती हैं। किंतु वे सिर्फ इकट्ठा करना .. नती हैं। न तो खुद उन्हें खाती हैं और न औरोंको

खाने देती हैं। उनके मरने के बाद संग्रहित धान्य एवं संचित मधु के भंडार ज्यों के त्यों पडे रह जाते हैं। ठीक यही दशा लोभी मनुष्य की भी है। अंतर केवल इतना ही है कि चींटियां तथा मक्खियां मनुष्य के बराबर असत्य, अनीति, अन्याय, कूड एवं कपट नहीं करती है।, वे अपना निर्दोष जीवन व्यतीत करती हैं और मनुष्य अपना पापमय जीवन व्यतीत करते है। मनुष्य को पाप से डर नहीं है। पूर्व कथनानुसार करोडों हिंस्र पशु पक्षी हिंसामय अनंत भव व्यतीत कर जितना पाप कर्म अर्जन नहीं करते हैं उतना पाप कर्म एक मनुष्य अंतरमुहुर्त में अर्जित कर सकता है। धर्महीन मनुष्य का जीवन विश्वके तमाम जीवोंसे अधम है। एक अंग्रेज तत्वज्ञ लिखता है कि "A great man without religion is no more than a great beast without soul." अर्थात् धार्मिक जीवनमे विरहित बडा पुरुष आत्माहीन बृहत्काय पशु से बढ कर नहीं है।

पशु को अपने हिताहित का बोध नहीं है। मैं कौन हूं? कहांसे आया हूं? कहां जाऊंगा? मैं क्या कररहा हूं? मुझे क्या करना चाहिये? इन बातों का उसे यत्किंचित भी बोध नहीं है। मनुष्य में यह बात नहीं है। उसे इनका ज्ञान है। पशु में अज्ञान है, मनुष्य में ज्ञान होते हुए भी मनुष्य अपने जीवन का दुरुपयोग करता है अतः उसके समान अधम और कौन होसकता है?

छोटासा बालक अज्ञानतावश राजपथ पर मल त्याग करदे तो वह अपराधी नहीं ठहरता है। लेकिन एक कानूनदाँ वकील राजप्रासाद के नजदीक की गटर में पेशाब कर देने मात्र से अपराधी बन जाता है। इसी तरहसे अज्ञानी से ज्ञानी पर विशेष जिम्मेदारी रही हुई है और यही कारण है कि मनुष्य अल्प समय में ही सातवीं नरक का अधिकारी बन सकता है। संसार के वर्तमानमें उपलब्ध सब कीमती पदार्थों में कोहेनूर हीरा अत्याधिक मूल्यवान वस्तु है। किंतु कोई अज्ञानी उसे खा जाय तो वह मूल्यवान् वस्तु उसके लिये विष से भी भयंकर सिद्ध हो सकती है। वैसे ही मानवभव-रूपी चिंतामणि रत्नका धर्म आराधनमें सदुपयोग किया जाय तो वह अनंत सुख प्रद हो सकता है और विषय-वासनामय जीवन व्यतीत करने में अगर उसका दुरुपयोग किया जाय तो वह भयंकर दुःख दावानल के आगार नरक मे डाल देता है।

विज्ञान और संयम।

" एक कृषक आमकी गुठली को जमीनमें बो देता है और दूसरा उसे भून कर खा जाता है। खाने वाले को क्षणिक स्वाद का अनुभव हुआ और न खाने वाले को इंद्रिय निग्रह का अल्प कष्ट। पाठकों! दोनों के परिणामों पर जरा विचार करिये। खाने वाले को क्षणिक स्वाद मिल कर रह गया। लेकिन बोने वाला थोडे वर्षोंमें

लाखों, करोडों आम्रवृक्षों का -गुठलियों का ही नहीं- मालिक बन जाता है। श्री ज्ञाताकथांग सूत्रमे भी एक सेठ की चार पुत्रवधुओं का वर्णन है। सेठजी ने अपनी चारों पुत्रवधुओं को शालि के पांच २ दाने दिये थे। कुछ समय के बाद वापिस मांगने पर मालूम हुआ कि एकने वे दाने फेंक दिये थे; दूसरी ने उन्हें खा लिये थे; तीसरी ने हिफाजत से रख छोडे थे; और चौथी ने वे पांचों दानें खेत में बो दिये थे जो पांच वर्ष में बढते२ हजारों मन हो गये थे। इसी दृष्टांत के अनुसार यदि मानव भवमें प्राप्त पांचों इंद्रियां आदि साधनों को यदि संयमके काम में लगा दिया जाय तो सुख सेठजी की चौथी पुत्रवधु के शाली के दानों के समान बढजाता है। और विषय विकारमय जीवन में उन्हीं साधनों को लगा देनेमे उनकी तमाम उर्वरा शक्ति सेठजी की दूसरी पुत्रवधु के शालिकणों के समान वहीं नष्ट हो जाती है। जो आत्म-आराधना करे उसके लिये मानव जन्म की विशेपता है, अन्यथा वह सर्व जीवयोनियों मे निकृष्ट है। शारीरिक रक्षा के सम्बन्ध में पाठक ऊपर पढ़ चुके हैं। अगर मनुष्य शारीरिक रक्षा में ही अपना जीवन यापन करदे तो वह मनुष्याकृति में पशु से भी नीच प्राणी है। अज्ञानदशामें भी पशु-पक्षियों का नैसर्गिक जीवन एक योगीके समान कष्टसहिष्णु दिखाई देता है लेकिन ज्ञानका दावा रखने वाले मनुष्य का जीवन विशेप पाप-प्रवृत्त

छोटासा बालक अज्ञानतावश राजपथ पर मल त्याग करदे तो वह अपराधी नहीं ठहरता है। लेकिन एक कानूनदाँ वकील राजप्रासाद के नजदीक की गटर में पेशाब कर देने मात्र से अपराधी बन जाता है। इसी तरहसे अज्ञानी से ज्ञानी पर विशेष जिम्मेदारी रही हुई है और यही कारण है कि मनुष्य अल्प समय में ही सातवीं नरक का अधिकारी बन सकता है। संसार के वर्तमानमें उपलब्ध सब कीमती पदार्थों में कोहेनूर हीरा अत्याधिक मूल्यवान वस्तु है। किंतु कोई अज्ञानी उसे खा जाय तो वह मूल्यवान् वस्तु उसके लिये विष से भी भयंकर सिद्ध हो सकती है। वैसे ही मानवभव-रूपी चिंतामणि रत्नका धर्म आराधनमें सदुपयोग किया जाय तो वह अनंत सुख प्रद हो सकता है और विषय--वासनामय जीवन व्यतीत करने में अगर उसका दुरुपयोग किया जाय तो वह भयंकर दुःख दावानल के आगार नरक मे डाल देता है।

विज्ञान और संयम !

एक कृषक आमकी गुठली को जमीनमें बो देता है और दूसरा उसे भून कर खा जाता है। खाने वाले को क्षणिक स्वाद का अनुभव हुआ और न खाने वाले को इंद्रिय निग्रह का अल्प कष्ट। पाठकों ! दोनों के परिणामों पर जरा विचार करिये। खाने वाले को क्षणिक स्वाद मिल कर रह गया। लेकिन बोने वाला थोडे वर्षोंमें

दिखाई देता है। शास्त्रकार केवल निःस्वार्थ भावसे आत्म हित के लिये उपदेश दे रहे हैं। उनके कथनमें जितना प्रेम और दया है उसका श्रोता उतनाही विरोधी नजर आता है। जिस रास्ते से जाने में ज्ञानी मना करते हैं तथा नुकसान वतलाते हैं उसी मार्ग पर, उन महापुरुषोंके वचनों को ठोकर मार कर, हर्ष पूर्वक अज्ञानी दौडता है। ज्ञानी पुरुष फरमा रहे हैं कि आयु अल्प है और किये हुए कर्म सबको भोगना पडते हैं। लेकिन यह अपने को सिद्ध के समान अजर, अमर एवं शाश्वत मान कर अपने जीवन की पापमय प्रवृत्ति वढा रहा है। अगर मृत्यु का विश्वास हो तो कौन समझदार मनुष्य पाप में प्रवृत्त हो ? अगर स्वर्ग और नरक में विश्वास हो तो स्वर्ग का पथ त्याग कर नरक के पथ पर कौन चले ? किंतु विषयांध मानव को मृत्यु, स्वर्ग एवं नरक में विश्वास नहीं है। क्यों कि विश्वास होता तो वह पाप में प्रवृत्ति नहीं कर सकता। अज्ञान मनुष्य की जीवनचर्या प्रायः नास्तिक-कीसी दिख पडती है। वह थोडेसे कोसों की मुसाफिरीके लिये भी आवश्यक से अधिक सामग्री साथ ले जाता है तो फिर परलोक की महान् लंवी मुसाफिरी के लिये वह वेखवर कैसे वैठा हुआ है।

—०—

लाखों, करोडों आम्रवृक्षों का –गुठलियों का ही नहीं– मालिक बन जाता है। श्री ज्ञाताकथांग सूत्रमे भी एक सेठ की चार पुत्रवधुओं का वर्णन है। सेठजी ने अपनी चारों पुत्रवधुओं को शालि के पांच २ दाने दिये थे। कुछ समय के बाद वापिस मांगने पर मालूम हुआ कि एकने वे दाने फेंक दिये थे; दूसरी ने उन्हें खा लिये थे; तीसरी ने हिफाजत से रख छोडे थे; और चौथी ने वे पांचों दानें खेत में बो दिये थे जो पांच वर्ष में बढते२ हजारों मन हो गये थे। इसी दृष्टांत के अनुसार यदि मानव भवमें प्राप्त पांचों इंद्रियां आदि साधनों को यदि संयमके काम में लगा दिया जाय तो सुख सेठजी की चौथी पुत्रवधु के शाली के दानों के समान बढजाता है। और विषय विकारमय जीवन में उन्हीं साधनों को लगा देनेसे उनकी तमाम उर्वरा शक्ति सेठजी की दूसरी पुत्रवधु के शालिकणों के समान वहीं नष्ट हो जाती है। जो आत्म-आराधना करे उसके लिये मानव जन्म की विशेषता है, अन्यथा वह सर्व जीवयोनियो से निकृष्ट है। शारीरिक रक्षा के सम्बन्ध में पाठक ऊपर पढ़ चुके हैं। अगर मनुष्य शारीरिक रक्षा में ही अपना जीवन यापन करदे तो वह मनुष्याकृति में पशु से भी नीच प्राणी है। अज्ञानदशामे भी पशु–पक्षियों का नैसर्गिक जीवन एक योगीके समान कष्टसहिष्णु दिखाई देता है लेकिन ज्ञानका दावा रखने वाले मनुष्य का जीवन विशेष पाप-प्रवृत्त

यंत्र और इंद्रियां.

आत्मधर्म में साधक और बाधक इंद्रियां का सदुपयोग एवं दुरुपयोग ही है। मनुष्य अपने पास के कुल पदार्थों की रक्षा उत्कृष्ट रूप से करता है। मिट्टी के ढेले की रक्षा करता है। पैसे में मिलने वाली २५ सुइयों में से एक सुई भी गुम जाय तो उसे ढूंढता है। एक पैसे में मिलने वाली सैकड़ों दियासलाईयों में से एक दियासलाई नीचे गिर जाय तो उसे उठा लेता है। कागज पर के गीले हरफों को सुखाने के लिये डाली गई रेती को भी वह वापिस डिबिया में उंडेल लेता है। इस तरह एक तरफ वह तुच्छाति तुच्छ वस्तुओं की भी रक्षा करता है लेकिन दूसरी तरफ अमूल्य इंद्रियों को पाप कर्म में लगाकर उनकी अनंत शक्तियों का महान दुरुपयोग करता है।

श्रोत्र— आवश्यकता पडने पर ही टेलीफोन से आवाज सुनता है। टेलीफोन की शक्ति का निरर्थक कोई क्षय नहीं करता।

चक्षु— आवश्यकता पडने परही दुरबीन, बिजली की बॅटरी, दिया अथवा चश्मे का उपयोग किया जाता है भारत के पेंतीस करोड मनुष्यों में से ऐसा कोई मूर्ख मनुष्य सुनने में या पढ़ने में नहीं आया कि जो सूर्योदय का प्रकाश फैलने पर दिया या बिजली जलाता हो किन्तु सूर्योदय होते ही विश्वभर के मनुष्य शीघ्रता से एक साथ

यंत्र और इंद्रियां.

आत्मधर्म में साधक और बाधक इंद्रियां का सदुपयोग एवं दुरुपयोग ही है। मनुष्य अपने पास के कुल पदार्थों की रक्षा उत्कृष्ट रूप से करता है। मिट्टी के ढेले की रक्षा करता है। पैसे में मिलने वाली २५ सुइयों में से एक सुई भी गुम जाय तो उसे ढूंढता है। एक पैसे में मिलने वाली सैकड़ों दियासलाईयों में से एक दियासलाई नीचे गिर जाय तो उसे उठा लेता है। कागज पर के गीले हरफों को सुखाने के लिये डाली गई रेती को भी वह वापिस डिबिया में उंडेल लेता है। इस तरह एक तरफ वह तुच्छाति तुच्छ वस्तुओं की भी रक्षा करता है लेकिन दूसरी तरफ अमूल्य इंद्रियों को पाप कर्म में लगाकर उनकी अनंत शक्तियों का महान दुरुपयोग करता है।

श्रोत्र— आवश्यकता पडने पर ही टेलीफोन से आवाज सुनता है। टेलीफोन की शक्ति का निरर्थक कोई क्षय नहीं करता।

चक्षु— आवश्यकता पडने परही दुरबीन, बिजली की बॅटरी, दिया अथवा चश्मे का उपयोग किया जाता है भारत के पेंतीस करोड मनुष्यों में से ऐसा कोई मूर्ख मनुष्य सुनने में या पढ़ने में नहीं आया कि जो सूर्योदय का प्रकाश फैलने पर दिया या बिजली जलाता हो किन्तु सूर्योदय होते ही विश्वभर के मनुष्य शीघ्रता से एक साथ

यंत्र और इंद्रियां.

आत्मधर्म में साधक और बाधक इंद्रियां का सदुपयोग एवं दुरुपयोग ही है। मनुष्य अपने पास के कुल पदार्थों की रक्षा उत्कृष्ट रूप से करता है। मिट्टी के ढेले की रक्षा करता है। पैसे में मिलने वाली २५ सुइयों में से एक सुई भी गुम जाय तो उसे ढूंढता है। एक पैसे में मिलने वाली सैकड़ों दियासलाईयों में से एक दियासलाई नीचे गिर जाय तो उसे उठा लेता है। कागज पर के गीले हरफों को सुखाने के लिये डाली गई रेती को भी वह वापिस डिबिया में उंडेल लेता है। इस तरह एक तरफ वह तुच्छाति तुच्छ वस्तुओं की भी रक्षा करता है लेकिन दूसरी तरफ अमूल्य इंद्रियों को पाप कर्म में लगाकर उनकी अनंत शक्तियों का महान दुरुपयोग करता है।

श्रोत्र— आवश्यकता पडने पर ही टेलीफोन से आवाज सुनता है। टेलीफोन की शक्ति का निरर्थक कोई क्षय नहीं करता।

चक्षु— आवश्यकता पडने परही दुरबीन, बिजली की बॅटरी, दिया अथवा चश्मे का उपयोग किया जाता है भारत के पेंतीस करोड मनुष्यों में से ऐसा कोई मूर्ख मनुष्य सुनने में या पढ़ने में नहीं आया कि जो सूर्योदय का प्रकाश फैलने पर दिया या बिजली जलाता हो किन्तु सूर्योदय होते ही विश्वभर के मनुष्य शीघ्रता से एक साथ

दिखाई देता है। शास्त्रकार केवल निःस्वार्थ भावसे आत्म हित के लिये उपदेश दे रहे हैं। उनके कथनमें जितना प्रेम और दया है उसका श्रोता उतनाही विरोधी नजर आता है। जिस रास्ते से जाने में ज्ञानी मना करते हैं तथा नुकसान बतलाते हैं उसी मार्ग पर, उन महापुरुषोंके वचनों को ठोकर मार कर, हर्षपूर्वक अज्ञानी दौडता है। ज्ञानी पुरुष फरमा रहे हैं कि आयु अल्प है और किये हुए कर्म सबको भोगना पडते हैं। लेकिन यह अपने को सिद्ध के समान अजर, अमर एवं शाश्वत मान कर अपने जीवन की पापमय प्रवृत्ति बढा रहा है। अगर मृत्यु का विश्वास हो तो कौन समझदार मनुष्य पाप में प्रवृत्त हो ? अगर स्वर्ग और नरक में विश्वास हो तो स्वर्ग का पथ त्याग कर नरक के पथ पर कौन चले ? किंतु विषयांध मानव को मृत्यु, स्वर्ग एवं नरक में विश्वास नहीं है। क्यों कि विश्वास होता तो वह पाप में प्रवृत्ति नहीं कर सकता। अज्ञान मनुष्य की जीवनचर्या प्रायः नास्तिक-सी दिख पडती है। वह थोडेसे कोसों की मुसाफिरीके लिये भी आवश्यक से अधिक सामग्री साथ ले जाता है तो फिर परलोक की महान् लंबी मुसाफिरी के लिये वह बेखबर कैसे बैठा हुआ है।

यंत्र और इंद्रियां.

आत्मधर्म में साधक और बाधक इंद्रियां का सदुपयोग एवं दुरुपयोग ही है। मनुष्य अपने पास के कुल पदार्थों की रक्षा उत्कृष्ट रूप से करता है। मिट्टी के ढेले की रक्षा करता है। पैसे में मिलने वाली २५ सुइयों में से एक सुई भी गुम जाय तो उसे ढूंढता है। एक पैसे में मिलने वाली सैकड़ों दियासलाईयों में से एक दियासलाई नीचे गिर जाय तो उसे उठा लेता है। कागज पर के गीले हरफों को सुखाने के लिये डाली गई रेती को भी वह वापिस डिबिया में उंडेल लेता है। इस तरह एक तरफ वह तुच्छाति तुच्छ वस्तुओं की भी रक्षा करता है लेकिन दूसरी तरफ अमूल्य इंद्रियों को पाप कर्म में लगाकर उनकी अनंत शक्तियों का महान दुरुपयोग करता है।

श्रोत्र— आवश्यकता पडने पर ही टेलीफोन से आवाज सुनता है। टेलीफोन की शक्ति का निरर्थक कोई क्षय नहीं करता।

चक्षु— आवश्यकता पडने परही दुरबीन, बिजली की बॅटरी, दिया अथवा चश्मे का उपयोग किया जाता है भारत के पेंतीस करोड मनुष्यों में से ऐसा कोई मूर्ख मनुष्य सुनने में या पढ़ने में नहीं आया कि जो सूर्योदय का प्रकाश फैलने पर दिया या बिजली जलाता हो किन्तु सूर्योदय होते ही विश्वभर के मनुष्य शीघ्रता से एक साथ

एक सेकंडमें करोडों दीपकों को बुझा देते हैं और बिजली का पावर और तेल की रक्षा करते हैं

जिह्वा—खास प्रसंग होने पर ही फोनोग्राफ, हार्मोनियम, अलार्म घड़ी आदि बजाये जाते हैं। बिना प्रसंग के उन्हें कोई भी नहीं बजाता।

शरीर—आवश्यकता पड़ने पर ही मोटर, सायकल अथवा बग्गी चलाई जाती है और आवश्यकता पड़ने पर ही घड़ी में चाबी भरी जाती है।

यंत्रवाद (विज्ञान) ने पांचों इंद्रियां के समान उपरोक्त यंत्र तैयार किये हैं जो इद्रियों के सदृश ही या उनसे अधिक कार्य करके दिखाते हैं दूरबिन, टेलिफोन, बिजली, थर्मामिटर, फोनोग्राफ तथा सायकल, आदि उपरोक्त वस्तुएं पचास या सौ रुपये सरीखी छोटी रकम में खरीदी जा सकती है और उनका मनमें आवे तब मन चाहा उपयोग इंद्रियों के समान किया जा सकता है पचास रुपये के फोनोग्राफ को इसका खरीदने वाला कितनी हिफाजत से रखता है? अपने स्नेही को भी मांगने पर भी नहीं देता है। तथा खुद भी ब्याह शादी सभा, सम्मेलन तथा त्यौहार सरीखे क्वचित् प्रसंगों पर ही उसका थोड़ी देर के लिये उपयोग करके बादमें सम्हाल कर आहिस्ते से पेटी मे बंद करके रख देता है। फोनोग्राफ ज्यादह समय तक बजाने में अथवा बिजली आदि का कोई खर्च नहीं होता है सिर्फ उसकी सुई ही घिसती

है। लेकिन सुई की कीमत ही कितनी है? लिखने का तात्पर्य यह है कि किसी प्रकार का विशेष खर्च नहीं होते हुए भी फोनोग्राफ की विविध प्रकार की राग रागनियों का आनंद उसका स्वामी नहीं लेता है।

एक पैसे में एक घंटे तक बिजली की रोशनी मिलती है लेकिन इतनी सस्ती होने पर भी कोई दिनमें बिजली नहीं जलाता।

रात्रि में जगाने के सिवाय अन्य समय पर कोई भी अलार्म घड़ी का उपयोग नहीं करता।

ऐसे सामान्य एवं सुलभ पदार्थों की तो इतनी रक्षा की जाती है लेकिन श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, जिव्हा तथा स्पर्शादि इंद्रियां बहु मूल्य एवं दुर्लभ होते हुए भी मनुष्य उनका भरसक दुरुपयोग करता है यह कितने आश्चर्य की बात है शास्त्र में ऐसे दुरुपयोग को आश्रव कहा है। और इसी आश्रव के कारण जीव अनंत संसार समुद्र में अनंत काल से भ्रमण कर रहा है।

कहां टेलीफोन का संवर और कहां कानों का आश्रव! कहां उसकी कीमत और कहां, इसकी कीमत?

किसी की भी निंदा, बुराई एवं लघुता तथा अश्लील गीत शब्द और गालियां आदि सुनने के लिये यह कानरूपी टेलिफोन प्रसन्नता से हर समय तैयार है। दामाद बनकर सुसराल में जाकर अपने पूज्य माता पिताको दी जानेवाली गालियां सुनने के लिये

यह कान रूपी महा जड टेलिफोन तैयार है ये कान है या मिट्टी का दिया। जो कान अनंत ज्ञानी की अनंत कल्याणमयी जिनवाणी सुनने के लिये है वे वह न सुनते हुए विषय विकार वर्धक शब्द सुने तो ऐसे कान किस काम के ? ऐसे कानवालों से वहिरा अनंत पुण्यवान है क्योंकि नरक निगोद म जाने की उत्तेजना देने वाले दुर्जन के सुनने योग्य तथा नारकी के नेरियों को भी घृणास्पद हो ऐसे विषय वर्धक शब्द सुनने के दुर्भाग्य से वह वंचित है।

श्री भगवती सूत्र में श्रीमती जयवंतीबाई श्राविका के प्रश्नोत्तर के प्रकरण में भगवान् महावीर ने फरमाया है कि हे जयवंतीबाई ! संसारी जीव तो बीमार, दुर्वल, आलसी एवं निद्रित ही भले। इसी प्रकार पाठक ! सब विषयों में समझ लें। धर्म रहित का जीवन एवं प्रवृत्ति अनंत भयंकर है। एक बिल्ली तथा एक सर्प सौ वर्ष की आयु भोगकर मरते हैं। तथा दूसरा सर्प और बिल्ली बाल्यावस्था में ही मर जाते हैं। दोनों में विशेष भाग्य- कौन है ? ज्यादह समय तक जीने से जिसने ज्यादा मारकर खाये वह विशेष पापी एवं भाग्यहीन है। अल्पवय के कारण जिसने कम पाप कर्म किया वह पहले की अपेक्षा से कम पापी है। धर्मी जीवों का दीर्घ आयुष्य, निरोगता, पांचों इंद्रियों की सम्पूर्णता, जागृतावस्था तथा पुरुपार्थ आदि प्रशंसनीय है। लेकिन धर्म

रहित जीवों के लिये उपरोक्त साधन उसके हितमें वहुत बुरे हैं।

पाठकों! यह पुस्तक कथा कहानी की नहीं है। इसकी प्रत्येक बात आत्म सुधार का लक्ष्य रख कर लिखी गई है। अतएव इसके प्रत्येक विषय को खूब ध्यान पूर्वक पढ़ें और उसपर विचार एवं मनन करें। मनन करने के उपरांत हृदय में धारण करके अपने जीवन में घटावें।

पुस्तक का पढ़ना ग्रास को मुंह में रखने के बराबर है। विचार करना उसे चबाने के बराबर है। मनन करना उसका रस बनाने के समान है। हृदय में धारण करना जठराग्नि में डालने के तुल्य है। जठराग्नि में व्यवस्थित अन्न पहुंचने पर ही वह शक्ति रूपमें परिणत होकर प्रत्येक अंगोपांग को बल प्रदान करता है। इसी प्रकार उपरोक्त विधि से पुस्तक ज्ञान रूपी भोजन करने वालेको यह पुस्तक लाभदायक होगी। अन्यथा बिना विधिसे खाया हुआ अन्न ज्यों का त्यों दुर्गंधित मल के रूप में मलद्वार से बाहर निकल जाता है।

जिस समाज को भोजन करने का भी पूरा ज्ञान नहीं है उसमें आध्यात्मिक तत्वों का पाचन करने की शक्ति कहांसे आवे? इतने व्याख्यान सुनने में आते हैं तो भी आत्मा में परिवर्तन होता हुआ नजरमें कम आता है। प्रायः श्रोता तथा वक्ता की स्थिति चलनी में दूध दुहने के समान है। वक्ता मुनिराज जिनवाणी-रूपी

कामधेनू का दूध, विषय-कषाय-तृष्णा-आरंभ-परिग्रह स्त्री-पुत्र-धनादि में ममत्व आदि छिद्रोंवाली समाज रूपी चलनी में, दुह रहे हैं। ऐसा करने में दोनों के समय एवं शक्ति का दुरूपयोग होता दिखाई देता है। मिट्टी के घट जैसे श्रोता विरल दिखते हैं यह भी संतोष की बात है। एक निशाने बाज निशाने को गिराने के लिये बंदूक के सैंकड़ो आवाज करता है। लेकिन आवाजो से वह निशा ने को नहीं गिरा सकता। निशाने को गिराने के लिये बंदूक में गोली का होना अनिवार्य है गोली रहित बंदूक की लाखों आवाजों में भी निशाना गिराने की ताकत नहीं है; किन्तु बंदूक की गोली में अनेक निशानों को गिराने की ताकत है। इसी प्रकार खाली बंदूक की मानिंद वक्ता का हृदय व्याख्यान में चाहे जितने जोरदार आवाज करे लेकिन उनसे होना जाना कुछ भी नहीं है। वक्ता की हृदय रूपी बंदुक ज्ञान एवं चारित्र रूपी गोली से भरी हुई होनी चाहिये। तभी उद्देश्य की सिद्धि हो सकती है। किन्तु ऐसा नहीं होने से ही समाज की ान में यह स्थिति दिखाई दे रही है।

श्री नंदी सूत्र में भगवान महावीर ने तीन प्रकार क श्रोता बतलाये हैं 'जाणीया' 'अजाणीया' और 'दुविअड्ढा'। शास्त्रकार फरमाते हैं कि गौतम सरीखे ज्ञानी का सुधार शीघ्र हो सकता है। परदेशी राजा के समान अज्ञानी का सुधार भी शीघ्र हो सकता

है। किंतु जो तत्वों को कुछ जानता है और कुछ नहीं जानता है ऐसे 'दुविअड्ढा' का सुधार करना मानों पत्थर की गाय को दुह कर दूध निकालनेके बराबर है। अथवा रेतीको पील कर उसमें से तेल की आशा रखनेके समान है। वर्तमान श्रोतृवर्ग कौनसी श्रेणीका है इसका विचार पाठक स्वयं ही करलें।

तीनसौ साठ दिन तक दिनमें तीन२ दफे व्याख्यान सुना जाता है किंतु जीवन, बुढिया द्वारा पीसी जाने वाली चक्की के समान अथवा घानीके वृद्ध बैल के समान, जहां का तहां ही नजर आता है। उसमे कुछ भी प्रगति नहीं दिखाई देती है।

जिनवाणी सुनकर उसका दुरुपयोग करने वाला जितना अपराधी है वैसे अयोग्य को जिन वाणी सुनाने वाले को भी ज्ञान का अतिचार लगता है। एक जौहरी-पिता अपने प्रिय बालक को खेलने के लिये हीरा देता है उस अबोध बालक से वह हीरा गुम जाता है। इस घटना में हीरा खो देने वाला अबोध बालक अपराध का पात्र है या मोहवश अनधिकारी बालक को हीरा सौंपदेने वाला पिता? ठीक प्रायः यही दशा वर्तमान में श्रोता एवं वक्ता की अनुभव में आ रही है।

आश्रव और संवर का विषय चल रहा था। बीचमें अनिच्छा से समाज की वर्तमान परिस्थिति का रेखा चित्र

खिंच गया; जिससे विषयांतर होगया है। किंतु यह विषयांतर भी मीठे भोजन के साथ नमकीन चीज के समान रुचिवर्द्धक मालूम होनेसे प्रक्षिप्त कर दिया गया है।

श्रोत्रेंद्रिय के दुरुपयोग एवं टेलीफोनके सदुपयोगका विवेचन ऊपर होचुका है। घोर अंधेरी रातमें भयानक स्थानमें बिजली की बैटरी काम में लाई जाती है। उसके प्रकाश की सहायता से सर्प, बिच्छु आदि विषारी प्राणियोंके विषसे शरीरकी रक्षाकी जाती है। कभी२ वह प्राणोंकी रक्षक भी बन जाती है। बैटरी की कीमत आठ या बारह आने के करीब होती है लेकिन वह हिफाजत से बरती जाती है। लेकिन चक्षु-इंद्रिय का उतना ही निकृष्ट दुरुपयोग किया जाता है। उससे विषय-विकार वर्द्धक नाटक, सिनेमा, चित्र, स्त्री वगैरा के अंगोपांग आदि देखे जाते हैं। चित्त की वृत्तियां मलिन की जाती हैं। निरर्थक पापाश्रव उपार्जन किया जाता है। ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती के जीव की दृष्टि पूर्व भवमें 'श्री देवी' पर पडी जिससे उसपर राग आया और चक्रवर्ती के जीवन को उसने धन्य माना। श्री देवीको सुख का साधन मान कर विषय सुख की इच्छा की। शास्त्रीय भाषा में इसे 'नियाणा' कहते हैं। नियाणे के फल स्वरूप चक्रवर्ती के भव में इच्छित भोग प्राप्त हुए जिन्हें भोगने पर उनके प्रायश्चित-स्वरूप उसे सातवीं नरक का अधिकारी बनना पडा।

फोनोग्राफ भी यथावसर ही बजाया जाता है। उसकी चूडियों तथा घिसी हुई सुइयों की गिनती भी की जाती है। लेकिन जिव्हासे कितने शब्द बोले जाते है क्यों बोले जाते हैं? इनका क्या परिणाम होगा? इत्यादि बातों का बिना विचार किये ही बे हिसाब बोला जाता है। मनुष्य के समान बकवादी प्राणी विश्व में ढूंढने पर भी दूसरा नहीं मिलता है।

ज्ञानी ने श्रावक के इक्कीस गुण बतलाये है। जिनमे सर्वप्रथम गुण में श्रावक को अल्प, मधुर, एवं सत्यभाषी होना बतलाया है। इस प्रकार की भाषा बोलने से ही विदेशों में गये हुए श्रावक एक दूसरे को पहिचान लेते थे कि यह शख्स श्रावक है और समदृष्टि है। इससे विपरीत भाषा बोलने वाला मिथ्यादृष्टि समझा जाता था। भाषा पर से ही मनुष्य की परिक्षा हो सकती है। वर्तमान समय में भाषा का संयम और उसकी कीमत की कद्र बहुत कम देखने में आती है।

वैज्ञानिक एक शब्द बोलने में पाव भर दूध की शक्तिका ह्रास बतलाते हैं। पूर्व के आर्य शरीरशास्त्रियों नें भी वचनपात और वीर्यपात को बराबर माना है। याने आर्य एवं अनार्य देशों के वैज्ञानिकों का मत एक हो जाता है। जैन शास्त्र में एक शब्द की आवाज चौदह राजलोक तक टक्कर खाती है ऐसा बतलाया है। यह बात वर्तमान के वैज्ञानिकों नें वायरलेस के आविष्कार से

सिद्ध भी कर दी है। इसी तरह समुद्र में एक कंकर गिरने पर पैदा होने वाली लहर की चक्राकार आकृति समुद्र के अंत तक पहुंच जाती है।

भाषा पर जितना संयम रखने का प्रभू का फरमान है उतने ही रूपमें उस पर असंयम देखने में आता है। निरर्थक दूसरों की निंदा एवं लघुता की जाती है। शास्त्र-कारने दूसरों की सच्ची या झूठी निंदा न करने के संबंधमें " पिट्ठीमंसं न खाएज्जा " यह सूत्र फरमाया है। याने परनिंदा करना मनुष्य की पीठ का मांस खाना है। अंग्रेजी भाषा में भी परनिंदा के लिये 'Back bite' शब्द है। बेक याने पीठ और बाइट याने दांतों से काटना अर्थात् बेक बाइट इस संपूर्ण शब्द का अर्थ हुआ पीठ काट कर खाना। जो पिट्ठी मांस खाने का समानार्थवाची है। भगवान् महावीर के तमाम सिद्धांत विज्ञान की तराजू पर तुले हुए हैं। लेकिन अफसोस यही है कि उनके ग्राहक विरले ही हैं। इसी के न होनेसे आज समाज में द्वेष, निंदा, ईर्षा और कलह का साम्राज्य र्वत्र दिखाई दे रहा है। भाषा पर संयम रखा जाय तो सब कलहों का मटियामेट हो जाय। दोषग्राही के स्थान पर सब गुणग्राही बने। गुणग्राही सत्ययुगी है और दोषग्राही कलयुगी।

पूर्व के महापुरुषों ने सत्य भाषा को जितना महत्व दिया है आज उनकी संतानों ने उस महत्व को उतनाही

घटा दिया है। वर्तमान में कोई आर्यकुलोत्पन्न व्यक्ति मांस भक्षण करले तो समाज से उसे बहिष्कृत कर दिया जाता है। इसी तरह प्राचीन काल में मृषावादी का भी बहिष्कार कर दिया जाता था। मृषावाद महान् पाप है। शास्त्रकारोंने अन्य पापोंको नदीके समान और मृषावादको समुद्र के समान बतलाया है। जिस प्रकार समुद्र में सब नदियां आकर मिलती हैं उसी तरह मृषावादी में विश्व-भर के दोष आकर इकट्ठे हो जाते हैं। परदेशी राजा के समान पापी को भगवान दीक्षा दे सकते हैं और उन्हें श्रावकत्व की दीक्षा दी थी। लेकिन मृषावादी को सम्यक्त्व, श्रावकत्व अथवा साधुत्व इनमें से किसी भी प्रकार की दीक्षा नहीं दी जा सकती है। अन्य किसी भी व्रत का भंग करने वाला एक उसी व्रतभंग का दोषी है लेकिन मृषावादी सब व्रतों का भंग करनेवाला होता है।

इसलिये जिस प्रकार यंत्र अथवा अन्य पदार्थों की हिफाजत एवं सदुपयोग किया जाता है उसी प्रकार पांचों इंद्रियों का भी सदुपयोग किया जाना चाहिये। इंद्रियों का दुरुपयोग नहीं होने बाबद पूरा लक्ष रखना चाहिये। इंद्रियों का दुरुपयोग ही आश्रव है और उनका सदुपयोग ही संवर। संवर नये कर्मों को आने से रोकता है और निर्झरा तप से पुराने संचित कर्मों का क्षय होता है। पुराने कर्मों का क्षय करना और नये कर्मों को आने से रोकना यही मोक्षप्राप्ति का साधन है।

एक डॉक्टर किसी नेत्र रोगी को कहता है कि पांच वर्ष तक अंधेरी कोठरी में रहना पडेगा और सूर्य का प्रकाश आंखों पर नहीं पडने देना होगा अगर ऐसा नहीं किया जाय तो आंखो को नुकसान होगा। रोगी ऐसे सलाहकार डॉक्टर का बहुत उपकार मानता है और सब सांसारिक कार्यों को तिलांजलि देकर उसकी आज्ञा पालन करता है। इसका कारण है डॉक्टर के वचन पर पूर्ण विश्वास का होना। उसका वचन सत्य, तथ्य एवं हित-कारक माना जाता है। लेकिन दूसरी ओर ज्ञानी के वचन उतने ही उपेक्षा के योग्य माने जाते है। नेत्र रोगी पांच वर्ष की अवधि तक जीवित रह सकेगा या नहीं यह निश्चित नहीं होते हुए भी डॉक्टर की आज्ञा का पालन किया जाता है। लेकिन निश्चय ही सुखी बनने के उपाय बतलाने वाले प्रभुवचनों पर दुर्लक्ष किया जाता हे और इसके लिये आत्मा को लेशमात्र भी चिंता नहीं होती। आत्मा की पतित दशा का यह परम प्रमाण है। डॉक्टर की आज्ञा की अपेक्षा ज्ञानी की आज्ञा का पालन अनंतगुणी सावधानी से करना चाहिये। वैसा रनेवाला व्यक्ति ही आस्तिक है।

लालाजी को उपदेश।

ब्यावर में बालिया के बंगले में लालाजी श्री ज्वा-लाप्रसादजी साहब ने मुनि श्री मोहनऋषिजी महाराज

साहब के प्रथम दर्शन किये थे । मुनिश्री का भी लालाजी साहब से मिलने का यह प्रथम ही प्रसग था । उस समय लालाजी साहब के साथ में उनके मुनिमजी तथा नौकर चाकर वगैरा थे । उसवक्त निम्न लिखित उपदेश दिया गया था ।

लालाजी ! पूर्व जन्म की पुण्याई के प्रताप से यह दुर्लभ मनुष्य भव तथा इतनी संपत्ति आपको प्राप्त हुई है । आप सेठ कहलाते हैं और आपके पास बैठेहुए मुनिमजी तथा अन्य लोग नौकर कहलाते हैं । आपके नोकर के हाथ में सौरुपये की भी अंगूठी नहीं है और आपके हाथ में दसहजार की अंगूठी का होना मामूली बात है । आपके नोकर किराये के साधारण मकान में रहते हैं और आपके लिये हैद्राबाद, महेन्द्रगढ तथा पंचकुला में विशाल बंगले और बगीचे मौजूद हैं । आपका नौकर बोझा उठाकर भी पैदल चलता है और आप खाली हाथ होकर भी मोटर में घूमते हैं । बीमार नौकर को रेल्वे के तीसरे दर्जे में, भीड़ भड़के में, मुसाफिरी करना पड़ती है और आप दूसरे दर्जे में सफर करते हैं जहां न भीड़ है न भड़का । नौकरों की अपेक्षा आपका खानपान, मकान, वस्त्र, पात्र, आभूषण आदि सब श्रेष्ठ है । इसी तरह आरंभ तथा परिग्रह में भी आप अपने नौकरों से सैकड़ों गुणा बढकर हैं । इस पापकार्य की विशेषता से भी आप सेठ तथा यह नोकर कहलाते हैं ।

अब यह बतलाइये कि आपकी संपत्ति की अधिकता के कारण आपके पाप बढ़ रहे हैं या घट रहे हैं! लालाजी ने उत्तर में निवेदन किया कि "महाराज श्री! यह हमारी सम्पत्ति नहीं है; यहतो विपत्ति प्रतीत होती है"। लालाजी! जो संपत्ति धर्म में साधक न हो वह संपत्ति संपत्ति नहीं किन्तु विपत्ती ही है। श्री दशाश्रुतस्कंध सूत्र में 'नियाणा' का अधिकार चलता है। उसमें बहुत से मुनिराजों ने गरीब कुल में उत्पन्न होने का नियाणा किया है। इसका यह मतलब है कि संपत्ति युक्त कुल में जन्म लेने से नाना प्रकार के विषय विलास में फंस जाते हैं जिससे विलासी प्रकृति बनजाती है। विलासी प्रकृति वाले को धार्मिक क्रियाएं प्रतिकूल दिखाई देती है लेकिन निर्धन के लिये धर्म आराधना करना सहज एवं सरल है। निर्धन मनुष्य को दुःखानुभव होने से वह धर्म के सन्मुख शीघ्र ही हो सकता है। धनवान् से धन का मोह छूटना मुश्किल है। अतएव धन जितना सुखप्रद है उतना ही दुःखदायक भी है, याने धनवान् जितना सुखी है उतना ही दुःखी भी है।

"धनंदुःख विवड्ढणं" अर्थात् धन दुःखों का बढाने वाला है। यह शास्त्र का कथन है अनुभवी इस तथ्य को समझ सकता है। आरंभ और परिग्रह से जब तक उदासीनता न हो तब तक जीव धर्म के सन्मुख नहीं होसकता है धर्म ही इसलोक और परलोक में सुख

का देने वाला है। धर्म विहीन प्राणी उभयलोक में दुःखी होता है।

नवी सुही देवना देवलोए, नवी सुही पुढवी पई राया।
नवी सुही सेठ सेनाओवइ, एगंत सुही मुगी वीतरागी ॥

न तो सुखी देवता स्वर्ग में हैं, नहीं सुखी है पृथ्वी पती भी।
नहीं सुखी सेठ सेना पती हैं, केवल सुखी है मुनि वीतरागी ॥

उपरोक्त गाथा में अल्प से लेकर अपरिमित धनवान् को भी सुखी नहीं बतलाया है केवल निर्ग्रंथ महात्मा को ही जो धनधान्यादि परिग्रह से विमुक्त हैं, सुखी बतलाया है। मनुष्य-संसार, पशु संसार तथा त्रस और स्थावर सब जीवों में धनवान् और निर्धन के भेद देखे जाते हैं।

पृथ्वीकाय—हीरे और पत्थर में हीरे को ही यंत्र पर चढाकर घिसते हैं, पत्थर को कोई नहीं घीसता।

अपकाय—खारे जलके कुए से पानी कम भरा जाता है और मीठे जल के कुए से ज्यादह। इस लिये मीठे कुए को घड़ों की अधिक मार सहनी पड़ती है।

तेऊकाय—घास की अग्नि पर कोई भोजन नहीं पकाता। लकड़ी और कंडे की तेज आग को ही इस काम में लिया जाता है।

वायुकाय—पाखाने की गंदी हवा में कोई पंखे नहीं चलाते। मकान की शुद्ध वायु को ही पंखों की मार खानी पड़ती है।

वनस्पतिकाय—अनार, अगूंर, आम अमरूद, सीताफल इत्यादि को सब लोग खाते हैं किन्तु धतूरे तथा थूहर आदि के फलें और कांटों को कोई नहीं खाता।

ईख, तिल, एरंडी, अलसी आदि ही घानी में पीले जाते हैं किन्तु गुवार वगैरह को यह तकलीफ नहीं दी जाती।

त्रसकाय—रेशम के कीड़ों को लोग उबलते हुए पानी में डाल देते हैं। किन्तु अन्य सामान्य कीड़ों को ऐसी यंत्रणा नहीं दी जाती है। तोते और मैना को लोग पींजरे में कैद कर देते हैं लेकिन कौए को कोई नहीं पालता।

धनवान के घर पर चोर और डाकू जाते है उनका धन लूटते हैं और धन न देने पर जान से भी मार डालते हैं लेकिन गरीब के घर पर कोई चोर नहीं जाता जिधर भी दृष्टि डालते हैं उधर धनवान को दुखी पाते हैं। जो निर्धन हैं वो सुखी हैं।

हाल में जो साधु साध्वियों की संख्या हैं उनमें करोड़ ि लखपति अथवा हजार पतियोंने दीक्षा ली हो ऐसे ...ने हैं ? तथा सामान्य स्थिती में से दिक्षित हुए हुए कितने हैं ? इसकी गिनती कीजिएगा। इस पर से सिद्ध होगा कि गरीबी तो अमीरी है और अमीरी गरीबी है यही कारण है कि गरीब होने का नियाणा प्रभू के समव-सरण में कई मुनीराजों ने किया था (श्री दशा श्रुत

स्कंध) गरीब के यहां आरंभ कम होता है और धनवान के यहां अधिक। धनवान् धनबल के कारण जीर्णावस्था में भी अनेक शादियां करके विषय वासना का पोषण करता है और गरीब का प्रथम लग्न ही बड़ी मुश्किल से होता है। दैव्यवशात् पहली स्त्री का प्राणान्त होजाय तो दूसरी मिलना असंभव हो जाता है।

गरीब के रहने के लिये झोंपड़ी होती है जो बहुत ही अल्प आरंभ से बनती है। धनवान के लिये विशेष मकान बनते हैं जिनके लिये गहरी नींव खोदी जाती है पत्थरों की खदाने खुदवाई जाती हैं तथा चूने की भट्टियां पकाई जाती है। इनमें अनेक स्थावर एवं त्रस जीवों की विराधना होती है कई मंजिले मकान बनने पर छतों पर से मनुष्य गिरकर मरने की भीति रहती है निर्धन का जीवन सादा होता है और धनवान् का अधिक विलास एवं विकारमय।

अब धर्मस्थानकों की तरफ दृष्टि डालिये। मुनी महात्माओं की सेवा भक्ति करने वाले व्याख्यान--वाणी श्रवण करने वाले तथा नवरंगी सप्तरगी एवं पचरंगी दया--पौषध करने वाले ज्यादहतर साधारण स्थिति के ही व्यक्ति मिलेंगे। ऐसी जगह धनवानों के तो दर्शन भी दुर्लभ रहते है। वे संवत्सरी आदि पर्वों पर आकर परिषद को सुशोभित कर देते है। समाज इतने ही को उपकार स्वरूप समझ लेती है। इस पर से यही जाहिर

वनस्पतिकाय—अनार, अंगूर, आम अमरूद, सीताफल इत्यादि को सब लोग खाते हैं किन्तु धतूरे तथा थूहर आदि के फलों और कांटों को कोई नहीं खाता।

ईख, तिल, एरंडी, अलसी आदि ही घानी में पीले जाते हैं किन्तु गुवार वगैरह को यह तकलीफ नहीं दी जाती।

त्रसकाय—रेशम के कीड़ों को लोग उबलते हुए पानी में डाल देते हैं। किन्तु अन्य सामान्य कीड़ों को ऐसी यंत्रणा नहीं दी जाती है। तोते और मैना को लोग पींजरे में कैद कर देते हैं लेकिन कौए को कोई नहीं पालता।

धनवान के घर पर चोर और डाकू जाते है उनका धन लूटते हैं और धन न देने पर जान से भी मार डालते हैं लेकिन गरीब के घर पर कोई चोर नहीं जाता जिधर भी दृष्टि डालते हैं उधर धनवान को दुखी पाते हैं। जो निर्धन हैं वो सुखी हैं।

हाल में जो साधु साध्वियों की संख्या हैं उनमें करोड़ [illegible] लखपति अथवा हजार पतियोंने दीक्षा ली हो ऐसे [illegible]ने हैं? तथा सामान्य स्थिती में से दिक्षित हुए हुए कितने हैं? इसकी गिनती कीजिएगा। इस पर से सिद्ध होगा कि गरीबी तो अमीरी है और अमीरी गरीबी है यही कारण है कि गरीब होने का नियाणा प्रभू के समव-सरण में कई मुनीराजों ने किया था (श्री दशा श्रुत

स्कंध) गरीब के यहां आरंभ कम होता है और धनवान के यहां अधिक। धनवान् धनबल के कारण जीर्णावस्था में भी अनेक शादियां करके विषय वासना का पोषण करता है और गरीब का प्रथम लग्न ही बड़ी मुश्किल से होता है। दैव्यवशात् पहली स्त्री का प्राणान्त होजाय तो दूसरी मिलना असंभव हो जाता है।

गरीब के रहने के लिये झोंपड़ी होती है जो बहुत ही अल्प आरंभ से बनती है। धनवान के लिये विशेष मकान बनते हैं जिनके लिये गहरी नींव खोदी जाती है पत्थरों की खदानें खुदवाई जाती हैं तथा चूने की भट्टियां पकाई जाती हैं। इनमें अनेक स्थावर एवं त्रस जीवों की विराधना होती है कई मंजिले मकान बनने पर छतों पर से मनुष्य गिरकर मरने की भीति रहती है निर्धन का जीवन सादा होता है और धनवान् का अधिक विलास एवं विकारमय।

अब धर्मस्थानकों की तरफ दृष्टि डालिये। मुनी महात्माओं की सेवा भक्ति करने वाले व्याख्यान--वाणी श्रवण करने वाले तथा नवरंगी सप्तरंगी एवं पचरंगी दया--पौषध करने वाले ज्यादहतर साधारण स्थिति के ही व्यक्ति मिलेंगे। ऐसी जगह धनवानों के तो दर्शन भी दुर्लभ रहते हैं। वे संवत्सरी आदि पर्वों पर आकर परिषद् को सुशोभित कर देते हैं। समाज इतने ही को उपकार स्वरुप समझ लेती है। इस पर से यही जाहिर

होगा कि धर्म की भावना धनवानों में बहुत अल्प मात्रा में रहती है। विरले धनवान ही धर्माराधना करने में तत्पर रहते हैं। एक अंग्रेज तत्त्व वेत्ता ठीक कहता है कि It is easier for a camel to pass Through the whole of a needle than for a rich man to enter into the Kingdom of God. भावार्थ—ऊंट के लिये सुई के नाके में से पार होना आसान है किन्तु धनवान मनुष्य के लिये भगवान के राज्य में प्रवेश करना मुश्किल है।

सुख में मनुष्य धर्म भावना को भूल जाते हैं। दुःख में धर्म भावना की जागृति होती है। श्री अनाथी मुनि, श्री नमीरायजी तथा श्री शालिभद्रजी आदि अनेक महा पुरुषों को दुःखानुभव होने पर ही वे आत्म साधनार्थ तत्पर हुए थे।

आप अब समझ गये होंगे कि नोकरो से आप धन में अधिक होने से आरंभ तथा परिग्रह मे भी उनसे कई गुणा बढकर हैं। क्या पाप में नौकरों से बढकर होने में आपकी श्रीमंताई है! ऐसी श्रीमंताई तो आत्मा के लिये हानि कारक है। जो मनुष्य धन में नौकरों से बढकर हैं उसी तरह वह धर्म आराधना में भी उनसे बढकर हो वही वास्तव में सेठ है। एसा सेठ ही द्रव्य तथा भाव दोनों में सच्चा सेठ है। वरना द्रव्य में वह सेठ रहेगा भाव में वह नोकर। इसके विपरीत नौकर अल्प आरंभी तथा अल्प परिग्रही होने के कारण भाव में

सेठ है और द्रव्य में नौकर। मुनिमजी प्रति दिन एक सामायिक करते हैं और आपभी एक ही करते हैं। ऐसी दशा में आप दोनों बराबर है।

श्रीमंत को पूर्व जन्म की पुण्याई के प्रताप से यथेष्ट धन प्राप्त हुआ है उसे खाने कमाने की बिलकुल चिंता नहीं है। अतएव सेठ रुप में नौकरी करने के बजाय सेठ की हैसियत से ही बचत का समय धर्मध्यान मे व्यतीत करने वाला सच्चा श्रीमंत है। और तभी उसकी श्रीमंताई सार्थक मानी जावेगी। अन्यथा उसका दुरुपयोग ही माना जावेगा।

मनुष्य जन्म भरत महाराज के अरीसा भवन के समान है। उस भवन में भरत महाराज केवल ज्ञान प्राप्त कर मोक्ष में पधारे थे। उसी में अगर किसी कुत्ते को छोड़ दिया जाता तो वह उस सारे भवन को खुद के प्रतिबिंबों के कारण कुत्तों से भरा हुआ मानकर अपने द्वेषी स्वभाव से भूंक २ कर और सिर पटक २ कर प्राणों को त्याग देता। याने जिस भवन में भरत महाराज केवल ज्ञान प्राप्त करते हैं उसी में एक कुत्ता अपने प्राण त्यागता है। इसी तरह मनुष्य जन्म रुपी अरिसा भवन को प्राप्त कर अनेक महापुरुषों ने इसमें मोक्ष की प्राप्ती की है और आत्म स्वरुप से अनभिज्ञ कई प्राणी आत्म साधन के स्थान में आत्म विराधना करके अनंत संसार की वृद्धि करते हैं। और चौरासी लक्ष जीवयोनि रुपी दावानल में

पड़ कर अनंत यातनाऐं भोगते हुए पश्चाताप करते हैं।

'राजेश्वर सो नरकेश्वर' यह सूत्र अनुभवी पुरुषो ने यथार्थ फरमाया है। राजेश्वर का अर्थ राजा या चक्रवर्ती ही नहीं है किन्तु अधिक संपत्तिशाली पुरुषों का भी उसमे समावेश है। ऐसे जो पुरुष अपनी संपत्ति का उपयोग केवल विषय सुख की प्राप्त्यर्थ करते हैं वे अवश्यमेव दुर्गति के अधिकारी हैं।

असंज्ञी पचेन्द्रि जीव पहली नरक का और संज्ञी पचेंद्रिय जीव सातवीं नरक तक का अधिकारी होता है अर्थात् आधिक संपत्तिशाली अधिक पाप कर्म करके अधिक नीची गति में जाता है और संपत्तीहीन, साधनों के अभाव में उतने अधिक पाप करने में असमर्थ होने की वजह से उतना नीचे नहीं जाता है। रबर की गेंद जमीन पर गिरते ही ऊंची उछलती है और लोहे के गोले की गति निचे की ओर ही होती है। लोहे का भारी पन ही उसकी नीच गति का कारण है। इसी तरह संपत्ति द्वारा अपनी आत्मा को विषय कषायादि से अधिक भारी बनाने वाला अधिक नीची गति में जाता है और संपत्ति रहित प्राणी उतनी नीची गति में जाने में सहसा समर्थ नहीं हो सकता है। संपत्ति का सदुपयोग सुख का और दुरुपयोग दुःख का साधन है। इसलिये सुख के लिये यत्न करना चाहिये सुज्ञेषु किं बहुना।

वचनामृत शतक

(१) निर्बल का शस्त्र विषय व कषाय है.

(२) बलवान का शस्त्र संयम व समभाव है ।

(३) विचार वायु मात्र है, व्यवहार चैतन्य है ।

(४) शरीर की सिरजोरी का मद स्वर्ग, नरक, पुन्य, पाप बंध और मोक्ष को आडम्बर समझता है ।

(५) आत्मवादी तीन लोक की विभूति का स्वामी है।

(६) शरीर वादी शरीर के मद में अंधा बनकर आत्म तत्व और धर्म क्रिया को भूल जाता है ।

(७) आत्मवादी आत्मा की मस्ती में मस्त होकर इन्द्र व चक्रवर्ती के भोग को भी रोग समझता है ।

(८) शरीर के मद से आत्म मद अनंत शक्ति शाली है ।

(९) शरीर मदांध धर्म तत्व को भूल जाते हैं तो आत्म मदांध शारीरिक सुख को दुःख क्यों न समझें ?

(१०) कर्म इतने प्रबल हैं तो आत्मा कितना प्रबल और शक्ति शाली होगा ? इसका विचार कीजियेगा ।

(११) ज्ञान रहित जीवन जड़ के समान है ।

(१२) ज्ञानी सागर के सदृश गंभीर होते हैं ।

(१३) निद्राधीन शरीर से बेभान हो जाता है तो ज्ञानी क्यों न आत्म रमन मे बेभान हों ? (शरीर से)

(१४) खुद को न पहिचानने वाला ज्ञानी या अज्ञानी ? जड या चैतन्य ?

(१५) हंस का भोजन बगूला नहीं पचा सकता उसी प्रकार ज्ञानी के ज्ञानमय वचन ज्ञानी ही समझते हैं।

(१६) शरीर (अश्व) पशु है. आत्मा सवार है।

(१७) जैसी जिसकी बुद्धि वैसी उसकी सृष्टि.

(१८) निश्चयात्मक बुद्धि ही सत्य बुद्धि है.

(१९) अज्ञानी, ज्ञानी और ज्ञान से दूर रहते हैं।

(२०) आत्मोद्धार के लिये मौन ही उत्कृष्ट मार्ग है।

(२१) आत्मज्ञान होने से वृति निवृति में परिणीत हो जाती है. (आत्म धर्म निवृत्ति है)

(२२) मारा हुआ विष मात्रा कहलाता है. सच्चा-विष सर्प विष से भी भयंकर है उसी प्रकार विषयेच्छा विष है और उसका संयम अमृत (संवर) है।

(२३) आत्मज्ञानी संसार को माया समझकर आत्मा में लीन रहता हैं यह शाश्वत नियम हैं

(२४) अज्ञानी का मन कुत्तों जैसा दिन रात भोकता रहता है पर ज्ञानी का मन सिंह जैसा शांत व गंभीर रहता है।

(२५) श्वासोश्वास लेते छोड़ते समय स्वाभाविक " सोहॅ " की आवाज होती है फिर भी अज्ञानी विषय कषाय में फंसते है ! (सोहॅ अर्थात् मैं सिद्धस्वरूप हूँ)

(२६) अध्यापकों की चापलूसी विद्यार्थियों को मूर्ख बनाती हे उसी प्रकार धर्म गुरुओं की चापलूसी भक्तों को नीचे गिराती है।

(२७) संसार अनंतकाल का जेलखाना है और सांसारी अनंतकाल के बन्दी हैं।

(२८) सांसारिक जेल को महल (Palace) समझ रखा है। जिससे अनंत कालसे कैद है.

(२९) बन्दी बंधन को ही मुक्ति समझ रहा है.

(३०) मानव-भव-महल स्त्री पुत्रादि के बंधन से बन्दीगृह बन गया है. और विशेष बनता जाता है।

(३१) सिंह, भेड़ से मित्रता नहीं रखता उसी-प्रकार ज्ञानी और अज्ञानी में स्नेह नहीं रह सकता।

(३२) मुर्दे को कौए व गिद्ध नोंच २ कर खा जाते हैं पर नव जीवन वालों से सिंह भी कांपता है उसी प्रकार अज्ञानी को स्वार्थी, संसारी लूट लेते हैं पर ज्ञानी मोक्ष मार्ग की ओर कदम बढ़ाये ही जाते हैं।

(३३) अजीर्ण वाले को मेवा, मिष्ठान्न विप रूप हैं उसी प्रकार जिन वचन के अजीर्ण वालों को उपदेश लाभ प्रद नहीं है.

(३४) देहदशा वहां आत्मदशा की हानि है.

(३५) राजपाट व रमणियों का त्यागना सरल है किंतु मान, सत्कार सन्मान, पूजा रूप राजपाट व रमणियों का त्याग कठिन है. यही भव भ्रमण का मूल है.

(३६) जिसे ज्ञान चक्षु नहीं है वह स्वर्ग. नरक, पुन्य, पाप, वंध व मोक्ष नहीं देख सकता

(३७) चर्म चक्षु वाला स्त्री, पुत्र व धन को ही मोक्ष मानता है। और उसमें ही लीन है.

(३८) बुद्धि मय श्रद्धा कांच है, हृदयकी श्रद्धा हीरा है.

(३९) धन पर ममता रखना ज्ञानियों की दृष्टि से अपराध है और धन की चोरी करना सरकारी कानून से अपराध है पर वास्तव मे दोनो ही अपराधी हैं।

(४०) चोर की निंदा की जाती है पर परिग्रह धारी की निन्दा कौन करता है? चोर जितना दयापात्र है उतना ही परिग्रह धारी दयापात्र है।

(४१) चोर एक की चोरी करता है पर धनवान सैकड़ो ग्राहकों से अनीति, अन्याय और असत्य के वल पर धन छीनते हैं।

(४२) धनवान चोर की निंदा करते हैं पर चोर धनवान की निंदा करते समय कहते हैं कि तुमने हम लोगों से अधिक व्याज लेकर हम को लूट लिया हमारे पास खाने तक को भी कुछ न रहा इसी से तो हम चोरी करते हैं। इसमें हमारा क्या दोष है?

(४३) सिर्फ धन से ही वर्तमान काल में खानदानी समझी जाती है। पूर्वमें धर्म से समझी जाती थी.

(४४) कौड़ियों की हार जीत जुआं और सट्टे में लाखों की हार जीत साहूकारी कहलाती है उसी प्रकार कृषिकार,, सुनार, लुहार, सुतार, व सिलावट के धंदे को पाप का धंदा कहते हैं और गरीबों से १० या १२ गुणा व्याज अधिक लेकर अपने धंदे को पवित्र मानते हैं।

(४५) राजा विलास के लिये प्रजा को लूटता है। साहूकार विलास के लिये गरीबों को लूटते हैं दोनों मे कितना अंतर है ?

(४६) मानवदेव नहीं किंतु देवों का भी देव है।

(४७) बुद्धिवाद यन्त्रालय के समान है और हृदय की श्रद्धा चैतन्य है।

(४८) बुद्धि में श्वान वृत्ति है. भोंकने की आदत है पर श्रद्धा में सिंह वृत्ति है वह चुपचाप कार्य किया करती है।

(४९) बुद्धिवादी कीड़ा है पर हृदय वादी गरुड़ पक्षी सा है।

(५०) बुद्धि ग्राह्य श्रद्धा मृतक श्रद्धा है और हृदय की श्रद्धा जीवित है।

(५१) बुद्धिवादी न तो धर्म को छोड़ सकता है और न धर्माराधन कर सकता है।

(५२) हृदय की श्रद्धा वाला धर्म सेवन करता है और धर्म मय हो जाता है।

(५३) मुनिराजों को बुरा न लगे इसीलिये प्रायः धर्म क्रियायें की जाती हैं।

(५४) व्याख्यान सभा कहीं२ उपालंभ सभा जैसी बन रही है।

(५५) बुद्धिवाद में सिर्फ शब्दों का आडम्बर है पर हृदय वाद में सत्य क्रिया का साक्षात्कार है।

(५६) चैतन्यवाद का ज्ञान हो जाय तो विश्व में परम शांति पैदा हो। जड़ वाद के कारण ही द्वेष, क्लेश, ईर्षा, व निन्दा का साम्राज्य फैला है।

(५७) सुख, दुःख केवल बुद्धि की कल्पना है।

(५८) ज्ञानी, विषय-कषाय-प्रवृत्ति को घटाते हैं।

(५९) अज्ञानी विषय-कषाय-प्रवृत्ति को बढ़ाते हैं।

(६०) असली सत्य का निवासस्थान हृदय है।

(६१) ध्यानियों की गुफा में सिंह व्याघ्र, व सर्पों ने डेरा डाला है। उसी प्रकार वर्तमान के कितनेक त्यागी वैरागी वर्ग में द्वेष, ईर्षा, निंदा, व कषाय रूपी मलीन वृत्ति का वास दिख रहा है।

(६२) प्रभु महावीर को गौतम पहिचान सकते हैं गौशाला नहीं पहिचान सका इसी प्रकार ज्ञानी को ज्ञानी ही पहिचानते हैं अज्ञानी नहीं पहिचान पाते।

(६३) बुद्धि और श्रद्धा में अनंत अंतर है फिर भी बुद्धि अपने को श्रद्धा के समान समझने का दावा है। बुद्धि पीतल और श्रद्धा सुवर्ण है।

(६४) बुद्धिचन्द्र के प्रतिबिम्ब के समान है। हृदय की श्रद्धाचन्द्र से साक्षात्कार है।

(६५) भोजन का पाचन न होना वमन और विरेचन करने के समान है उसी प्रकार जिन वानी का पाचन न होना उसको वमन व विरेचन करने के समान है।

(६६) मानव शरीर रूप मंदिर से विशेष महत्व-शाली मंदिर तीन लोक में नहीं हैं।

(६७) क्षमा-वस्त्र नहीं है किन्तु यह तो आभूषण है.

(६८) संयमी पुरुषों के लिये रात भी दिन है।

(६९) ज्ञानी का जीवन निर्दोष बालक से भी अनंत पवित्र है पर अज्ञानी का जीवन उतना ही मलीन है।

(७०) जैन शास्त्र इस जीवन को और अनंत जीवन को पवित्र बनाने वाला परमशक्तिशाली यंत्र है।

(७१) जैन शासन जगत को पवित्र बनाने वाला परम पवित्र पुरुषार्थि शाश्वत मंडल है।

(७२) अधोगति के कर्तव्य से छुड़ावे वही धर्म है।

(७३) खान पान में अविधि करने वाला तन्दु-रुस्ती गुमाता है। खान पान में विवेक रखने वाला तन्दु-रुस्त रहता है। उसी प्रकार ज्ञानी विवेक से अपना पवित्र जीवन व्यतीत करते हैं और अज्ञानी पाप मय जीवन बिताते हैं जिससे उनकी आत्मिक तन्दुरुस्ती बिगड़ जाती है।

(७४) परमात्मपद यह मानव का जन्म सिद्ध हक़ है। किन्तु अनंत काल से आत्मा भूल गया है।

(७५) धार्मिक जीवन तन्दुरुस्ती है तन्दुरुस्त मनुष्य स्वर्ग व मोक्ष में जाता है।

(७६) विषय कषाय मय जीवन रोगी जीवन है जिससे रोगी नरक निगोद के गड़हे में गिर जाता है।

(७७) अंग जितना सूक्ष्म है उसकी बीमारी रोग भी उतना ही सूक्ष्म होता है।

(७८) शरीर स्थूल है इसलिये इसकी बीमारी व रोग भी स्थूल है।

(७९) आत्मा अरूपी है जिससे इसकी बीमारी व रोग भी सूक्ष्म है।

(८०) सूक्ष्म रोग को ज्ञानी ही देख सक्ते हैं। अज्ञानी अंधा है और वह आत्मिक रोग को नहीं देख सकता वह तो शरीर का ही चिंता करता है।

(८१) उपालंभ देने व सुनने का श्रोता व वक्ता दोनों को अभ्याससा होगया है।

(८२) विज्ञान, वायरलेस, एरोप्लेन, बिजली, फोनोग्राफ, रेलवे तार, मोटर आदि का आविष्कार कर सका किन्तु चैतन्य तत्व को नहीं ढूंढ सका। चैतन्य का आविष्कार तो ज्ञानी ही कर सकता है। विज्ञानी से भी ज्ञानी के ज्ञान का चमत्कार अनंत गुना विशेष है।

(८३) धर्म स्थान यह शांति वैराग और वितरा-गता का झूला (हिंडोला--पालना) है।

(८४) जड के बजाय चैतन्य नेत्र से विश्व को देखो

(८५) स्थल से जल मार्ग और जल मार्ग से आकाश मार्ग में विशेष धोका है इससे भी आत्मिक मार्ग के लिये विशेष सावधान रहने की आवश्यकता है।

(८६) विषय--कषाय की मात्रा का नाश हो तो अधर्म घट जाय और सर्वत्र धर्म का प्रचार होजाय।

(८७) सेवा करने वाला दूसरों की नहीं किन्तु अपनी ही सेवा कर रहा है।

(८८) सेवा यही सच्चा स्वार्थ है शेष सब व्यर्थ हैं

(८९) सीधी व सुन्दर वस्तुओं को भी बांकी देखे वह वक्री। प्रायः पंचम आरेके जीव।

(९०) बुद्धि की तीक्ष्णता का अभाव यही जडता।

(९१) स्वयं की इच्छा से खाया जाय वही अन्न और ऐसा अन्न ही लाभदायी है उसी प्रकार स्वयं की इच्छा व समझ पूर्वक दिया जाय वह दान है। खाना परोपकार नहीं है उसी प्रकार धर्म ध्यान करना दान देना आदि भी परोपकार नहीं है किन्तु स्वोपकार ही है।

(९२) अज्ञानी ने शरीर को अपना मान रखा है किन्तु आत्मा को तो यह सर्वथा भूल गया है।

(९३) मनके विचार पूर्ण किये जाते हैं पर मनुष्यता के गुणों का नाश करते हैं।

(९४) धर्म कोई पर वस्तु नहीं है किन्तु यह तो आत्म-स्वभाव ही है। अज्ञानी परवस्तु मानता है।

(९५) वीरता सहित कष्ट सहन करता है वह साधु

(९६) आये हुए कष्टों को सहन करने का यत्न करता है वह श्रावक और समदृष्टि।

(९७) ज्ञानी दुःख को आमन्त्रण देता है, उदीरणा करता है तब अज्ञानी दुःखसे रोता है।

(९८) मुक्ति कोई वस्तु का नाम नहीं है किन्तु राग द्वेष से मुक्त होना ही मुक्ति है।

(९९) इच्छाका घटाना सुख और बढाना दुख है।

(१००) ज्ञान राहित मनुष्य यंत्र जैसा है।

कर्म बत्तीसी।

१ आत्मा और कर्म का अनादि से सम्बन्ध है।

२ यत्न किया जाय तो आत्मा कर्म रहित शुद्ध स्वरूपवान् होसकती है।

३ आत्मा अनंत बलवान है आत्मा के सामने कर्म की सत्ता अत्यन्त बलहीन है। क्योंकि कर्मजड है।

४ आत्मा के साथ कर्म बलात्कार नहीं करते।

५ कर्म प्रलोभन के साधन--संयोग प्राप्त कराता है।

६ निर्बल आत्मा प्रलोभनों में फंस जाती है और उसका पराजय होजाता है। सबल आत्मा प्रलोभनों में नहीं फंसती और कर्म का नाश कर देती है।

७ मोहनीय कर्म से कषायादि संयोग प्राप्त होते हैं किंतु वे कषाय करने के लिये आत्मा को प्रेरित नहीं करते अज्ञानी स्वयं कषाय करता है।

८ नाटक, सिनेमा होटलादि रूप, रंग व रसास्वाद के साधन हैं पर वे बलात्कार से मनुष्य को नहीं बुलाते उसी प्रकार मोहनीय कर्म भी कषाय के लिये जोर जुल्म नही करते। इच्छानुसार कषायी व वितरागी बनने देते हैं। सरागी या वितरागी बनना यह अपने स्वाधीन है।

९ बलवान आत्मा कर्म को नष्ट कर देती है और निर्बल आत्मा कर्म के स्वाधीन होजाती है।

१० मोहनीय कर्म सब कर्मों का मूल है।

११ कर्म के संयोगादि नष्ट करने वालों के समीप कर्म नहीं ठहर सक्ते और जो मोहनीयादि कर्मों का सत्कार करते हैं उन पर वे सवार हुए विना भी नहीं रहते।

१२ एक समय की विजय अनंत काल की विजय है और एक समय की हार अनंत काल की हार है।

१३ कर्मों के स्वाधीन होना ही कर्म वटवृक्ष को उत्पन्न करना है।

१४ कर्म बालक है और आत्मा पिता है, पिताको बालक से डरने की क्या जरूरत है?

१५ राग और द्वेष कर्म बंधन के कारण हैं।

१६ आयुष्य कर्म का बंध अकस्मात् जीवन में एक समय ही होता है इसलिये अशुभ कर्म से प्रत्येक समय में सावधानी रखनी चाहिये।

१७ कषाय से स्थिति और अनुभाग का बंध होता है।

१८ योग से प्रकृति और प्रदेश का बंध होता है।

१९ कृषिकार के योग व्यापारी के योग से विशेष चपल होते हैं पर कृषिकार की कषाय कितनेक धान्यादि व्योपारी वर्ग की कषाय से पतली होती है।

२० योग में पाप मानते हैं वैसा कषाय में भी पाप माननेवाले विरले ही दीखते हैं।

२१ योग की शांत दशा और कषाय की तीव्रता होना बगुला जैसा शांत ध्यानस्थ योगीमय जीवन बिताना है

२२ योग निरोध की चिंता होती है पर कषाय निरोध की उपेक्षा की जाती है। कषाय यही संसार है।

२३ योग की चपलता के सदृश कषाय की चपलता में पाप समझा जाय तो जीव जल्द मोक्ष गामी बन जाय किन्तु समझ विपरित हो रही है।

२४ योग की प्रवृत्ति केस के समान है पर कषाय की प्रवृत्ति सिर जैसी है, क्या केस की रक्षा कीजाय और सिर का छेदन किया जाय ? योग का निरोध किया जाता है पर कषाय के घोडे दौडाये जाते हैं।

२५ लकडी मारनेमें पाप समझा जाता है पर बुरा परिणाम में उतना भी पाप नहीं माना जाता।

२६ जागृत मनुष्य घोडे को सम्हालता हुआ इष्ट स्थानपर पहुंच जाता है पर निद्राधीन मनुष्य को घोडा गिरा देता है उसी प्रकार ज्ञानी कर्म--घोडे को वश कर लेते हैं और अज्ञानी जागृत न होने से नरक निगो-दादि गड्हे में गिर पडते हैं।

२७ आत्मा निज रूप में जागृत हो तो कर्म सत्ता का कुछ भी जोर नहीं चल सक्ता।

२८ क्रोध मान माया लोभ राग द्वेष सदा से जीव के शत्रु हैं जिन्हें मित्र मान बैठे हैं। अब भी उन्हें शत्रु समझकर उनका नाश कर देना चाहिये।

२९ कर्म के साथ लडने में आनन्द है पर गूंगे बनकर मार खाते रहना शरम की बात है।

३० ज्ञानी स्वाधीन है, अज्ञानी कर्माधीन है।

३१ अज्ञानी को कर्म तृणवत जहां तहां भटकाते हैं पर ज्ञानी मेरू ज्यों अडोल रहते हैं और कर्म वायु स्वयं परास्त हो नष्ट होजाते है।

३२ कर्म स्नेह की श्रंखला ज्ञानी क्षणभर में तोड डालते हैं, पर अज्ञानी कर्म श्रंखला को दृढ बनाते जाते हैं।

आत्मोपदेश।

१ मात पिता स्त्री और पुत्रादि तुझे श्मशान में ले जाकर जलावेगे, स्वर्ग, नर्क, पुण्य और पाप के फल का विश्वास हो तो आत्म आराधना कर, इस विषय में तेरी

निश्चींतता है, परन्तु पशु भी तो निश्चींत जीवन पूर्ण करते हैं। तेरेमें और पशुमें क्या अंतर ?

२ चौरासी लक्ष जीवा योनि में इस जीव ने प्रत्येक योनी में अनंतानंत जन्म और मरण किये हैं, फिर भी उन दुःखों से संतोष न मानते हुए वैसे ही दुःखदायी कर्मों के हेतु अनन्त पुरुषार्थ युक्त प्रयत्न करता है, यह नितान्त आश्चर्य की बात है।

३ ज्ञानी अज्ञानी को दया का पात्र समझता है। वैसी दशा में अज्ञानी भी ज्ञानी को दयनीय समझने लगता है। उनके वचन को बकवाद समझकर नित्य पाप प्रवृत्ति बढाता जाता है; और पश्चाताप के स्थान में प्रसन्न होता है। अपने पापमय जीवन को पवित्र मानता है, और स्वर्ग या अपवर्ग (मोक्ष) के सुख को नारकीय दुःख से भी विशेष घृणास्पद मानकर घृणा करता है।

४ ऐसा एक भी जीव नहीं है कि जिसके साथ अनंत वार शत्रु या मित्र रूपसे संबन्ध न हुआ हो। ऐसा होने पर भी मिथ्यात्वी उसे मिथ्या मान के यह मेरा और यह तेरा करके, राग द्वेष रूप कर्म संचय कर भारी होरहा है, जिससे वह अनंत संसारमें भटकता है।

५ वालाग्र रखने जितनी एक भी जगह नहीं है, जहां पर इस जीव ने अनंत वार जन्म और मरण न किये हों, तदपि वर्तमान में अपने को अजर और अमर मानकर पाप कर्म का बंधन करता है।

६ यह आत्मा अपने सिवाय और किसी को दुःखी अथवा सुखी नहीं बना सक्ती किन्तु रेल के पुल नीचे खडे हुए श्वान की तरह सर्व कुटुम्ब का भार अपने ऊपर मानकर व्यर्थ ही फूलाता है।

७ नित्य प्रति लाखों मनुष्य यमराज के घर पहुंच रहे हैं और पहुंचेगे। फिर भी इस संसार का कारोबार चल रहा है तो तू एकही व्यक्ति अपने आपके लिए क्यों इतना मिथ्या घमंड करता है?

८ स्त्री पुत्र और धनादि से मोह कम कर अन्यथा ये स्वयं तुझसे मोह कम कर देंगे।

९ स्वेच्छा पूर्वक संसार से उदासीन बनो अन्यथा किसी न किसी दिन तुम्हारे कुटुम्बी ही बलात्कार से तुम्हें तुम्हारे घर से उठाकर मरघर पर ले जाकर केवल हमेशा के वास्ते रख ही नहीं आवेंगे किन्तु दहन भी कर देंगे। यह अनादि कालका रिवाज है।

१० धनोपार्जन के वास्ते पाप की गांठ तू बांधता है पर उस धन में से दान देता नहीं अतएव मृत्यु पश्चात् तेरे कुटुम्बी उसका उपभोग करेंगे और पाप का भागीदार तू होगा। कैसी ही विचित्र बात है कि तर मर बाद भी तुझ पाप लगता ही रहेगा। वास्ते इस पापी पिशाची धन का तू इतना क्यों गर्व और मोह करता है?

११ स्त्री, पुत्र, धन और शरीर की जितनी चिंता तुम्हें है यदि उसका करोडवां अंश भी आत्मा के वास्ते

करते रहोगे तो तुम अपनी सफलता में विलम्ब न समझो अर्थात् जितनी चिंता तुमसे धनादि के वास्ते की जाती है उसके करोडवें भाग जितनी भी यदि आत्मा के वास्ते की जाय तो भी जीवन सफल है।

शरीर

१ यह शरीर एक जीर्ण कुटी है, इसका मोह कौन रखे ?

२ दूसरों के मृत शरीर अपनी आंखों से जलते हुए देखकर अपने शरीर का मोह नहीं छुटता है।

३ मनुष्य अगर शरीर के समान ही आत्मा की चिंता करे तो इसी भव में वह मोक्ष मार्ग के अत्यंत नजदीक पहुंच जाता है।

४ शारीरिक सुख पराधीन है परन्तु आत्मिक सुख स्वाधीन है।

५ शारीरिक सुख क्षणीक है परन्तु आत्मिक सुख शाश्वत है।

६ शरीर यह मिट्टी का एक पिंड मात्र है परन्तु आत्मा यह सूर्य के समान प्रकाशित है।

आप कैसे हैं ?

१ समदृष्टि विश्वमात्र से प्रेम करता है।

२ समदृष्टि विश्व के हित में अपना हित समझता है।

३ गुप्त से गुप्त विचारों को भी पवित्र रखियेगा ।

४ विचारों को शब्द से दरसाओ या मनमें छिपाओ तदपि विचारों का असर तो दूसरे पर होता ही है ।

५ अगर आपको सम्यक्त्व से प्रेम है तो दूसरे के दोष के स्थान पर गुण ग्रहण कीजिएगा ।

६ अगर आपको मिथ्यात्व से प्रेम हो तो दूसरे के गुणों की ओर लक्ष्य न कर केवल दोष देखियेगा ।

७ सम्यग्दर्शन और मिथ्यादर्शन इन दोनों में से जिनका व्यापार आपको पसंद और हितकर हो वही कीजियेगा । सुज्ञेषु किं बहुना--

८ भंगी विष्टा ढूंढता है और अत्तार अत्तर । वैसे ही दोषी दोष ढूंढता है और गुणी गुण ।

९ हंस मोती और कौआ सडा मांस खोजता है वैसे ही गुणी गुण और दोषी दोष ।

१० जैसे विचार वैसे आचार और जैसे आचार वैसी गति तथा मोक्ष भी मिल सक्ता है ।

११ गुणग्राहक द्वेषी को मित्र और दोषग्राहक मित्र को भी द्वेषी बनाता है ।

१२ आर्य की गुणदृष्टि और अनार्य की दोषदृष्टि होती है ।

१३ गुणदृष्टि स्वर्गीय और दोषदृष्टि नारकीय होती है

१४ गुणग्राहक विश्व का मित्र है, और दोष ग्राहक विश्व को अपना शत्रु बनाता है ।

१५ गुणग्राहकता वशीकरण मंत्र से विश्व वशीभूत होजाता है।

१६ गुणग्राहकता सद्गुण का निधि और दोषदृष्टि दुराचार का भंडार है।

१७ गुणदृष्टि सदाचार और दोषदृष्टि दुराचार है।

१८ गुणी शीलवान है दोषी व्यभिचारी है।

१९ गुणदृष्टि धर्म सम्मुख है और दोषदृष्टि विमुख है

अमूल्य विचार।

१ पाप करके प्रायश्चित करना यह कीचड़ में पैर डालकर के धोने के बराबर है।

२ जितने अंश में ब्रह्मचर्य की रक्षा विशेष की जाय उतने ही अंश में महत्वयुक्त कार्य करने की शक्ति प्रबल होती है। जीवन का यही सार है

३ वीर्य रक्षा करना, यह आत्मरक्षा करने के बराबर है। आत्म रक्षा यह विश्व रक्षा है

४ वीर्य रक्षा करनी, यह एक प्रजावत्सल, नीतिपरायण राजा की रक्षा करने के बराबर है, क्योंकि वीर्य यह शरीर का सच्चा राजा है।

५ इक्षु में से रस निकल जाने पर जैसे कूचा मात्र रहते हैं, वैसे ही वीर्य के नाश में शरीर सत्वहीन हाड पिंजर मात्र रहता है।

६ सर्वथा ब्रह्मचारी रहने वाले पुरुषों ने ऐसे संयोगों में कभी नहीं आना चाहिये, कि जिससे अपने ब्रह्मचर्य के भंग का प्रसंग आपडे।

७ नींव (बुनियाद) की दृढता पर ही जैसे सारे मकान की दृढता का आधार है वैसे ही वीर्य की रक्षा पर ही जीवन की दृढता का आधार है।

८ विशेष पुत्रोत्पत्ति करना, यह आर्थिक दृष्टि से देश की दुर्दशा करने के बराबर है।

९ जो मनुष्य अपनी स्त्री को छोडकर अन्य स्त्री के पास जाता है वह जानबूझकर अपनी स्त्री को दुराचारिणी बनाता है और खुद दुराचारी बनता है।

१० संसार में भिन्नता भले ही रहे परन्तु विरुद्धता मत करो स्पर्द्धा भले ही करो किन्तु ईर्षा मत करो।

११ रागी मनुष्यके उपदेशमें स्वार्थ का अंश अवश्य रहता है वीतराग का उपदेश एकान्त परमार्थोपदेश है।

१२ एक बोल और एक तोल यह व्यापारिक उन्नति के लिये सच्चा कारण है।

१३ लोह की जंजीर शरीर के बल से तोडी जा सकती है परन्तु मोह की जंजीर अन्य किसी शक्ति से नहीं तोडी जा सकती है सिवाय एक वैराग्य के।

१४ निंदा करने से अपनी शुद्ध क्रिया भी दूसरे की अशुद्ध क्रिया के बराबर होजाती है।

१५ जहां कदाग्रह होता है वहां धर्म नहीं हो सकता.

१६ जो मनुष्य लोभ को अपने आधीन करता है वही संसार में सच्चा स्वामी योगी और संसार से सर्वथा वियोगी है।

१७ क्षमा गुण के अभाव में अन्य गुण उतने ही निरर्थक है; जितने किसी अंक के रहित बिंदियां।

१८ जिस देश, जाति, किंवा समुदाय मे प्रेम का अभाव होता है, वह देश, जाति किंवा समुदाय अज्ञान से पूर्ण है अर्थात् मिथ्यात्वी है।

१९ परदोष को प्रकट करने का स्वभाव, यह स्वदोष की वृद्धि करने वाला है, और यह दुर्गति का असाधारण कारण है, और यही मिथ्यात्वी का लक्षण है।

२० आर्य वही है जो त्याग करने योग्य कार्यों से दूर रहता है। अनार्य उससे विपरीत है

२१ किसी के शरीर का नाश करना उसी का नाम हिंसा तो है ही किन्तु द्वेष बुद्धि से किसी को मानासिक दुःख देना वह भी हिंसा है।

२२ यदि सर्प के मुख से अमृत की वृष्टि होती हो तो दोषदृष्टिवाला समदृष्टि बन सके।

———

ज्ञान शतक

(१) मोह निद्रा से ज्ञान-चेतना का नाश होता है।

(२) भ्रमण करने से थकावट आती है और थकावट से नींद आती है उसी प्रकार चौरासी लाख जीवा योनि में भ्रमण करने से जीव को थकावट लगी है और इसको उतारने के लिये मोह निद्रा में यह पामर सोया है। ज्ञानी पुरुष जगाते हैं किंतु यह पामर नहीं जगता।

(३) मोह निद्रा से विचार शून्य हृदय बन जाता है।

(४) मोह पिशाच ज्ञानी के तत्वों पर विचार नहीं करने देता।

(५) जीवों के गले में काल की फांसी लगी है दौरी खींचते ही प्राण पक्षी उड़ जायेंगे।

(६) दूसरे के मृत्यु की चिंता होती है किंतु खुद की मृत्यु की चिंता नहीं होती।

(७) गर्भ में आते ही आयु घटने लगती है किंतु आयु घटने का न गर्भ में भान था और न वर्तमान में है।

(८) कुत्ता मरकर देव और देव मरकर कुत्ता, ब्राह्मण मरकर भंगी और भंगी मरकर ब्राह्मण होता है यह कर्म की विचित्रता है।

(९) मैं अकेला आया हूं और अकेला जाने वाला हूं इतना ही ज्ञान होतो काफी है।

(१०) जैसे पिता पुत्र के मुर्दे को उठाकर स्मशान में ले जाता है उसी प्रकार आत्मा शारीरिक मुर्दे को उठाकर संसार में परिभ्रमण कर रहा है।

(११) जन्म हुआ तब शरीर साथ न था और मरने पर भी शरीर साथ नहीं चल सकेगा शरीर तो यहीं पड़ा रहने वाला है जिसे जलाकर निकट के स्नेही प्रसन्न होंगे। यह अनादि का रिवाज है

(१२) स्त्री, पुत्रादि का सम्बन्ध तो थोड़े ही दिनों से हुवा है और वह भी छूट जायगा।

(१३) इस शरीर में प्रशंसा के योग्य कौन सा पदार्थ है ?

(१४) स्त्री और पुरुष का शरीर गटर खाना है पुरुष के गटर खाने में नौ नाले हैं और स्त्री के गटरखाने में ग्यारह नाले हैं।

(१५) शरीर रूपी गटर खाने में कृमि-कीडे-अलसिये कलवला रहे हैं।

(१६) असंख्य समुद्र के जलसे स्नान करने पर भी यह शरीर शुद्ध नहीं होगा किंतु असंख्य समुद्र के जल को यह शरीर गंदा बनायगा।

(१७) शरीर पर चमड़ी न होती तो कौऐ, मक्खी, मच्छर इस शरीर को खा जाते।

(१८) अनंत दुःख व भव भ्रमण का मूल यह एक शरीर का मोह ही है।

(१९) मनुष्य शरीर मिलना अत्यंत मुश्किल है उससे भी मनुष्यत्व मिलना अत्यंत कठिन है।

(२०) मनुष्यत्व मोक्ष जैसा पवित्र व महंगा है।

(२१) मनुष्य की तो सिर्फ चमडी है हृदय तो नरक व तिर्यंच का है। (अज्ञानी व विषय कषायी के लिये)

(२२) मनुष्यत्व के कार्य करने से मनुष्यत्व मिलता है भद्रता, विनय, दया, निराभिमानता के गुण न होतो वह मनुष्य होते हुए भी नरक या तिर्यंच का अवतार है।

(२३) मनुष्य जन्म अनंत वक्त मिल गया पर मनुष्यत्व प्राप्त होना अत्यंत दुर्लभ है।

(२४) मनुष्यत्व के गुण न होने से मनुष्य जानवर है और पशु में मनुष्यत्व के गुण होने से वह जानवर होते हुए भी मनुष्य है।

(२५) मोह आत्मा के लिये रोग है और मोह रहित दशा निरोग दशा है।

(२६) मोह निद्रा का साम्राज्य तीन लोक में है।

(२७) एक म्यान में दो तलवार का समावेश नहीं हो सकता उसी प्रकार देह ममत्व व आतम ज्ञान दोनों नहीं रह सकते।

(२८) देह भान भूल जाने से ही आतम ज्ञान होता है।

(२९) देह भान भुलने से निद्रा आती है और शरीर की थकावट दूर होती है वैसे ही देह भान भुलने से

ज्ञान दशा जागृत होती है और अनंत काल का कर्म बोझ दूर होता है और आत्मा शुद्ध होती है।

(३०) मोह रूप अग्नि से विश्व जल रहा है।

(३१) विपय वासना से विश्व अंधा बना है।

(३२) सुखी होने के लिये रेशम के कीड़ अपने शरीर पर रेशम पलेटते हैं किन्तु उससे वे दुःखी होते हैं वैसे ही पुत्र धनादि के बंधन से मनुष्य दुःखी होता है।

(३३) वनमें दावानल लगा अंधा सुखी होने के लिये दौड़ा किंतु दावानल में गिरकर मर गया इसीप्रकार अज्ञानी संसार दावानल में सुखी होने के लिये दौडते हैं किंतु दुःख दावानल में गिरकर भस्म हो जाते हैं।

(३४) जानवर हिताहित का विचार नहीं कर सकता। उसी प्रकार अज्ञानी भी पशुसा जीवन व्यतीत करके आत्मघात करता है।

(३५) विचारों सा आचार न रखना भी आत्म ठगाई है।

(३६) मोह-दृष्टि विष सर्प से भी विशेष भयंकर है।

(३७) मिथ्यात्व रूप पिशाच आत्मा का नाश करता है।

(३८) मोह निद्रा द्रव्य निद्रा से अनंत भयंकर है।

(३९) विषय कषाय प्रवृत्ति पाखंड वृत्ति है।

(४०) ज्ञान की बातें करने वाले बहुत हैं किंतु विचार सा आचार रखने वाले विरले हैं।

(४१) अज्ञानी ज्ञान गज की सवारी त्यागकर विषय कषाय रूप गधे की सवारी करके अपने आपको दुर्गति में ले जाता है।

(४२) तत्वों का ज्ञान यही सम्यक ज्ञान है।

(४३) तत्व की रुचि प्रतीति यह सम्यक दर्शन।

(४४) कषाय से निवृति यह सम्यक चारित्र.

(४५) आत्म शुद्धि यही सम्यक्त्व.

(४६) ज्ञानी शत्रु, मित्र स्व-पर का भेद भूलकर सबको भाई मित्र सा समझते हैं।

(४७) अज्ञानी जीव कुनबे रूपी पाषाण की नाव में बैठकर संसार समुद्र तैरना चाहते हैं।

(४८) मुख रूपी बिल में अप्रिय वचन बोलनेवाली जिन्हा रूपी नागिन रहती है वह अपना विष विश्व में फैलाती है।

(४९) लाखों रुपये इनाम मिलने पर भी किसी की निंदा न सुनो और न करो।

(५०) सत्य धर्म का नाश होता हो तो उसकी रक्षा के लिये बोलो अन्यथा मौन रहो।

(५१) बोलने में सौ टका हानि है और न बोलने में सौ टका लाभ है।

(५२) निन्दक के वचन नागिन से भी भयंकर है।

(५३) निरर्थक वचन नारकीय वचन हैं।

(५४) एक एक शब्द को मोती से भी महंगा समझो।

(५५) समभाव चन्द्रमा से शीतल है पर विषय कषाय के भाव अग्नि से भी भयंकर है।

(५६) विषय-कषाय की बात चीत श्रोता व वक्ता दोनों को नरक में ले जाती है तो उसका आचरण करने वाले की क्या दशा होगी?

(५७) संतोषी विश्व को पावन करता है।

(५८) लोभी विश्व में कलंक रूप है।

(५९) संतोषी संसार समुद्र तैर जाता है पर लोभी संसार समुद्र में डूब जाता है।

(६०) समभावी समुद्र जैसा गंभीर है उसमें सब गुण रूपी नदियां आकर मिलती हैं।

(६१) कषाय दावानल है उसमें सब गुण रूपी चंदनादि जलकर भस्म हो जाते हैं।

(६२) समभावी को देवता नमस्कार करते हैं। कषायी से नारकीके नेरिये भी घृणा करते हैं।

(६३) समभावी देवताओं का पूज्य है।

(६४) सब पापों का मूल एक कषाय है।

(६५) कषाय नरक निगोद की सीढ़ी है।

(६६) कषाय क्रोड पूर्व की तपस्या को नष्ट करती है।

(६७) कषायी खुद जलता है और औरों को जलाता है।

(६८) विषय-कषाय हलाहल विष से भी भयंकर है।

(६९) विषय-कषाय के विचार मात्र से जीव नरक में जाते हैं तो विषय-कषाय बढाने वालों का क्या होगा?

(७०) अनंतकाल तक विषय कषाय का सेवन किया फिर भी तृप्ति न हुई और न होगी।

(७१) विषय कषाय की मुर्छा से संसारी मूर्छित हैं।

(७२) विषय कषाय से बचने का उपाय एक विवेक है।

(७३) विषय कषाय का साम्राज्य तीन लोक में है।

(७४) चौरासी लाख जीव योनि में भटकाने वाला सिर्फ एक विषय-कषाय है।

(७५) विषय-कषाय ही संसार है।

(७६) विषय-कषाय दावानल में अज्ञानी शीतलता ढूंढते हैं किन्तु वे भस्म हो जाते हैं। (पतंगवत्)

(७७) विषय-कषाय अनंत ज्ञानी से निन्दित होने पर भी अज्ञानी पवित्र मानते हैं।

(७८) विषयी-कषायी विश्व का गुलाम है।

(७९) अज्ञानी को विषय कषाय का भूत लगता है।

(८०) विषय-कषाय का भूत अनंत पुण्य को नष्ट करता है।

(८१) पिचाश से भी मोहनीय कर्म अनंत भयंकर है।

(८२) अज्ञानी क्षणिक मिथ्या सुख के लिये अनंत दुःख उठाते हैं और दुःखको सुख मानते है।

(८३) कषाय आत्मधर्म का नाश करती है।

(८४) समभाव के शांत सरोवर में स्नान करीये।

(८५) कषायी अज्ञान अंधेरे में घूमते हैं।

(८६) कषाय राक्षस को भगाने के लिये समभाव रूपी मंत्र भज, समभाव सुख का सागर है।

(८७) कषाय रूप कीच में अज्ञानी फंसते हैं।

(८८) कषाय दुःखदायी शस्त्र समान है।

(८९) कषाय के अभाव से संसार का अभाव.

(९०) कषाय को न रोकने से वह अग्निवत् बढती जाती है।

(९१) क्रोध रत्न त्रय का नाश करता है।

(९२) मेरी भूल बताने वाला मेरा मित्र है उस पर क्रोध क्यों करूं ? ज्ञानी ऐसा विचारते हैं।

(९३) क्रोध करने वाला दूसरों को क्रोध करना सिखाता है।

(९४) परके हित के लिये परोपकारी अपना सर्वस्व दे देते हैं मुझे क्रोधी को कुछ भी नहीं देना है और क्षमा धन मुझे मेरे पास ही रखना है।

(९५) अज्ञानी क्रोध करके विष पीता है पर तू क्यों विष पीता है ? और नर्कगामी बनता है।

(९६) मेरे अशुभ कर्म काटने का यह साधन है।

(९७) क्रोध का विजय नहीं किया तो ज्ञान किस काम का ?

(९८) चन्दन काटने वाले को और कुल्हाडी को सुगंध देता है तो मुझे क्या (क्रोधी को) देना चाहिये ?

(९९) अपना अहित करके भी क्रोधी मुझे सुधारने की कोशिश करते हैं उनका उपकार मैं कैसे भूल सकता हूं, उपकार न मानना नीचता है।

(१००) मुझे अशाता का उदय न होता तो वह मुझ पर क्रोध क्यों करता ? उसका कुछ दोष नहीं है दोष केवल मेरी ही आत्मा का है। क्रोध करने से नये

कर्म बंधते हैं क्षमा रखने से नये कर्म नहीं बंधते। और पुराने कर्म क्षय होते हैं तो मैं ऐसा लाभ क्यों छोडूँ? इंद्रियां बंदर के समान हैं उन्हें ज्ञान पिंजरे में कैद कर आतम साधना कीजियेगा प्राण देकर भी क्षमा की रक्षा करो।

अध्यात्म-शतक

(१) पुद्गल की संगति से जीव के भव भ्रमण बढते हैं।
(२) संसार रूप नृत्यशाला में विषयी कषायी नृत्य करते हैं। (अनंत काल से)
(३) ज्ञान ज्योति की विलीनता ही भाव निंद्रा है
(४) चैतन्य सत्ता की तन्लीनता ही मोक्ष मार्ग है।
(५) आतमध्यान बिना सब ध्यान भयंकर हैं।
(६) स्वस्वरूप में लीन रहने वाला ही स्वाधीन है शेष सब पराधीन हैं और अनंत संसारी है।
(७) आत्म रमणता यही जीवन मुक्त दशा है।
(८) ज्ञान दर्शन का सार चारित्र और चारित्र का सार निर्वाण और यही आतमस्वभाव है।
(९) छोटी उम्र वाला व्यवहार में बाल है पर अज्ञानी युवक व वृद्ध निश्चय में महा बाल है।
(१०) रोग के समय कड़वी दवाई पीने में जिस प्रकार उदासीनता रहती है उसी प्रकार खान पान में ज्ञानी सदैव उदासीन रहते है।

(११) अज्ञानी जितने कर्म क्रोडों भवों में क्षय करते हैं उतने ही कर्म ज्ञानी अंतर्मुहूर्त में क्षय करते हैं।

(१२) ज्ञानी प्रत्येक श्वासोश्वास में जागृत है।

(१३) अशुचि पदार्थ से शरीर बना है तो ऐसे शरीर में सुंदरता कहां से आयगी ?

(१४) (१) मास में गर्भस्थ जीव खून व प्रवाही वीर्य वाला रहता है।

(२) मास में पानी के बुदबुदे जैसा आकार वाला होता है।

(३) मास में बुदबुदा कठिन होता है।

(४) मास में मांस की आकृति बनती है।

(५) मास में मांस में से ५ अंकूर फूटते हैं (१) सिर (२) हाथ (२) पांव.

(६) मास में आंख कान नासिका, ओष्ठ, अंगुलीये बनती है।

(७) मास में चमडी नख और केस आते हैं।

(८) मास में हलन चलन की क्रिया प्रारंभ होती है।

(९) मास में बाहर आने के योग्य बनता है।

(१५) माता की विष्टा चाहे कच्ची हो या पक्की वहीं जीव का निवास स्थान है।

(१६) खाया हुआ भोजन कच्ची विष्टा है और पाचन हुए बाद पक्की विष्टा है।

(१७) हवा व प्रकाश वाली व खुब चौडी गटर मे लाखों रुपये देने पर भी कोई रहना पसंद नहीं करता तो फिर गटर से भी अनंत दुर्गंध मय वह स्थान जहां न हवा है और न प्रकाश, वहां सवा नौ मास तक रहना पडता है उस समय की वेदना का पाठक ही अनुमान कर सकते हैं।

(१८) माता का खाया हुआ आहार पित्त व कफ मे मिलने से उलटी जैसा बनता है और वही आहार गर्भस्थ जीव करता है।

(१९) विषय कषाय पिशाच है वह मनुष्य को भी पिशाच बनाता है।

(२०) हाथ में शस्त्र व सिर पर रत्न का मुकुट धारण करके भिक्षा मांगने वाला दया पात्र है उसी प्रकार साधु व श्रावक का भेष धारण कर कषाय करने वाला दया पात्र है।

(२१) विषयी-कषायी बहुरुपिया जैसा है उसने सिर्फ साधु व श्रावक का स्वॉग लिया है।

(२२) अमृत विष के योग से विष बनता है उसी प्रकार विषय, कषाय से ज्ञानी भी अज्ञानी बनते हैं।

(२३) आत्मा के लिये विषय-कषाय कुपथ्य भोजन है।

(२४) मुर्दे को पक्षी नोचते हैं उसी प्रकार अज्ञानी-मुर्देको विषय कषाय रूप पक्षी नोच २ कर खा जाते हैं।

(२५) मुर्दे के हाथ में हथियार व्यर्थ है उसी प्रकार ज्ञानी ज्ञान का उपयोग न ले तो वह ज्ञान निरर्थक है।

(२६) गधे को चंदन भार रूप है वैसे ही चारित्रहीन की ज्ञान की बातें भार के समान है।

(२७) विषय-कषाय ज्ञान और दर्शन की दोनों चक्षु फोड कर अंधा बनाती है।

(२८) विषयी-कषायी का जीवन बगुले जैसा है।

(२९) पूर्व जन्म की अज्ञानतासे बांधे हुए पापोंके लिए पश्चात्ताप करो और वर्तमान जीवन को सुधारो।

(३०) शारीरिक मकान में प्रमाद सर्प घुस गया है वह ज्ञान को नष्ट कर अज्ञान विष फैलाता है।

(३१) रात दिन रूपी आग से यह शारीरिक मकान जल रहा है तो फिर ऐसे मकान में कौन वास करना पसंद करते हैं और कौन ऐसे शरीरसे मोह रखते हैं?

(३२) काल शत्रु तलवार लेकर खडा है फिर भी गाफिल होकर नींद ले रहा है। (अज्ञानी)

(३३) साता की इच्छा से अनंत असाता के कर्म बंधते हैं

(३४) यह आत्मा प्रतिदिन क्रोडों योजन की सफर करता है तो भी उसे अपना भान नहीं है आयु पूर्ण होता है और परलोक समीप आता है। नित्य परलोक की लंबी सफर हो रही है।

(३५) परिग्रह की वृद्धि होनेसे आरंभ, विषय, कषाय, व पाप की वृद्धि होती है।

(३६) आत्मा ही माता, पिता, पुत्र, बंधु, मित्र व स्नेही है आत्मा के सिवाय सब दूसरे हैं।

(३७) समस्त कषाय का नाश ही शुद्ध भाव है।

(३८) जैसे बिल्ली चूहे खाने में पाप नहीं मानती उसी प्रकार अज्ञानी आरंभ परिग्रह विषय और कषाय में पाप नहीं मानते।

(३९) चौदह राजु लोककी संपति अल्प है और अज्ञानीकी आशा अनंत है।

(४०) जैसे एक चूहे के पीछे कई बिल्लियां दौडती हैं उसी प्रकार एक आत्मा को सताने के लिए अनेक विषय-कषायी कर्म लगे रहते हैं। संयमी व ज्ञानी ही अपनी रक्षा कर सकते हैं।

(४१) अज्ञानी का एक क्षण भर भी ऐसा नहीं है कि जिस समय वह विषय-कषाय व कर्म न बांध रहा हो। समय २ पर वह सात या आठ कर्म उपार्जन कर रहा है और भारी हो रहा है।

(४२) संसार में सुख है ही नहीं। क्षुधा, तृषादि रोग हैं और खान पान इस रोग की दवा है पर अज्ञानी ऐसे रोग को भोग मानते हैं।

(४३) विषय-वासना रोग है और काम भोग खाज खनने के समान है। जिसे खाज न हो. वे स्वस्थ हैं

उसी प्रकार जो विषयी कषायी नहीं है वे निरोगी हैं।

(४४) संसार रूपी नाटक शाला में जीव स्त्री व पुरुष का भेष धारण कर नाच रहा है।

(४५) जीवन का बहुतसा भाग एकेन्द्रि के रूप में विताया.

(४६) सम्यक ज्ञान के विना त्रस, स्थावर, संज्ञी, असंज्ञी, नारकी देव मनुष्य व पशु सब समान हैं,

(४७) चारित्र मोहोदय के कारण स्थावर जीवों को भी प्रभुने तीव्र कषायी और तीन अशुभ लेशी वाले फरमाये हैं तो मनुष्य रात दिन तीव्र कषाय व अशुभ लेश्या में जीवन पूर्ण करता है उसकी क्या गति होगी ? भव्य विचारीएगा !

(४८) स्थावर जीवों में अल्प शक्ति होने पर भी चारित्र मोह के कारण अनंत कषाय हैं तो जो रात दिन आरंभी, परिग्रही, विषयी कषायी जीवन विता रहे हैं उन मनुष्यों की कौनसी गति होगी ?

(४९) त्रस काय की स्थिति पत्थर के आकाश में अधर रहने जितनी है और स्थावर काय की स्थिति पत्थर के जमीन पर रहने जितनी है। पाठक ! इस पर खुब ही मनन करें।-

(५०) नारकी के जीवों में परस्पर शत्रु बुद्धि है अगर मित्र बुद्धि होतो दुःख कम हो उसी प्रकार अज्ञानी ने पापोदय से धर्म क्रियाओं से शत्रुता मान रक्खी जिसमे दुःखी हो रहा है।

(५१) विषयाभिलाषी मरकर नरक में जाता है वहां सिर्फ नपुंसक वेद है और पशु योनि में जाता है तो वहां उपस्थेंद्रिय काट दी जाती है जैसे बैल घोडे आदि।

(५२) मनुष्य माता के मल मूत्रादि स्थान में जन्म लेता है विष्टा के कीडे को जंगल की शुद्ध हवा मिलती है किंतु गर्भस्थ जीव के लिये न हवा है न प्रकाश.

(५३) कषाय की मंदता ही सच्चा सुख और तीव्रता ही अनंत दुःख और संसार वर्धक है।

(५४) शरीर के लिये सोमल, अफीम. संखिया घातक वैसे ही आत्मा के लिये हिंसा, विषय घातक हैं।

(५५) पत्थर से मनुष्य अपना सिर फोडे तो उसमें पत्थर का क्या दोष है ? उसी प्रकार जीव विषय कषाय में फँसे तो उसमें विषय कषाय का क्या दोष है जैसे पत्थर निर्दोष है उसी प्रकार विषय कषायी संयोग भी निर्दोष है।

(५६) अज्ञानी को ससुराल की गालियां मीठी लगती है और माता पिता की हित शिक्षा कटु लगती है

उसी प्रकार जीव धर्माराधन में दुख मानता है और विषयी-कषायी पापी प्रवृत्ति में सुख मान रहा है।

(५७) पशु, पक्षियों को संतान साता नहीं देते हैं तदपि वे उनके लिये मिथ्या मोह रखते हैं उसी प्रकार मानव भी मिथ्या मोह रखता है।

(५८) सती स्त्री प्राण जाने पर भी पर पुरुष की इच्छा नहीं करती उसी प्रकार ज्ञानी विषय-कषाय में नहीं फंसते. और आत्म रमणता करते हैं।

(५९) आत्म घातक सब कृत्य आत्म व्यभिचार हैं।

(६०) तेल, बत्ती व बर्तन के योग के दीपक जलता है उसी प्रकार ज्ञान दर्शन व चारित्र के योग से आत्मा का शुद्ध स्वरूप प्रकट होता है।

(६१) अंधे के हाथ में दिया होने पर भी उसे कुछ नहीं सुझता उसी प्रकार अज्ञानी को चाहे जितने प्रत्यक्ष व परोक्ष प्रमाण बताये जाय तो भी उस पर कुछ असर नहीं होती।

(६२) भविष्यति इति भव्य जिसमें सम्यक् ज्ञान, दर्शन व चारित्र उत्पन्न होने की सत्ता है वह भव्य है। और जिस में इनका अभाव है वह अभव्य.

(६३) आंख के बिना शरीर निरर्थक उसी प्रकार धर्म बिना मानव जन्म निरर्थक है।

(६४) ज्ञान दर्शन का जिसमें गुण न हो वह अजीव.

(६५) आठ कर्मों की मार से आत्मा मूर्च्छित हो रही है.

(६६) मोहनीय कर्म हिताहित का बोध नहीं होने देता.

(६७) जीव की कर्म से मित्रता है जिससे दुष्ट मित्र अपना कर्तव्य बजाकर आत्मा को विशेष दुःखी बनाता है.

(६८) सज्जन शुभ राह पर ले जाते हैं पर दुर्जन दुष्ट मार्ग में ले जाते हैं उसी प्रकार अशुभ कर्म अशुभ कार्य कराते है और शुभ कर्म शुभ कार्य कराते हैं

(६९) आत्मा जैसा कर्म-बीज बोता है उसी प्रकार उसको फल मिलता है।

(७०) आत्मा और कर्म के बीच में अशुद्ध भाव सांकल ज्यों लगे हैं ये अशुद्ध भाव ही आत्मा और कर्म का संयोग कराते हैं.

(७१) शरीर में "अहं" कहने वाली ही आत्मा है.

(७२) सुख दुःख का अनुभव कर्म से होता है।

(७३) जोंक सड़े हुए खून का पान करके आनद मानती है उसी प्रकार अज्ञानी विषय कषाय में आनंद मानते हैं और भव भ्रमण करते हैं।

(७४) चोर तप्त लोहे के गोले पर पैर रखते ही पश्चात्ताप करता है और उदासिन रहता है उसी प्रकार समदृष्टि भोग को रोग समझ कर उससे उदासीन रहते हैं।

उसी प्रकार जीव धर्माराधन में दुख मानता है और विषयी-कषायी पापी प्रवृत्ति में सुख मान रहा है।

(५७) पशु, पक्षियों को संतान साता नहीं देते हैं तदपि वे उनके लिये मिथ्या मोह रखते हैं उसी प्रकार मानव भी मिथ्या मोह रखता है।

(५८) सती स्त्री प्राण जाने पर भी पर पुरुष की इच्छा नहीं करती उसी प्रकार ज्ञानी विषय-कषाय में नहीं फंसते, और आत्म रमणता करते हैं।

(५९) आत्म घातक सब कृत्य आत्म व्यभिचार हैं।

(६०) तेल, बत्ती व बर्तन के योग के दीपक जलता है उसी प्रकार ज्ञान दर्शन व चारित्र के योग से आत्मा का शुद्ध स्वरूप प्रकट होता है।

(६१) अंध के हाथ में दिया होने पर भी उसे कुछ नहीं सुझता उसी प्रकार अज्ञानी को चाहे जितने प्रत्यक्ष व परोक्ष प्रमाण बताये जाय तो भी उस पर कुछ असर नहीं होती।

(६२) भविष्यति इति भव्य जिसमें सम्यक् ज्ञान, दर्शन व चारित्र उत्पन्न होने की सत्ता है वह भव्य है। और जिस में इनका अभाव है वह अभव्य.

(६३) आंख के बिना शरीर निरर्थक उसी प्रकार धर्म बिना मानव जन्म निरर्थक है।

(६४) ज्ञान दर्शन का जिसमें गुण न हो वह अजीव.

(६५) आठ कर्मों की मार से आत्मा मूर्च्छित हो रही है.

(६६) मोहनीय कर्म हिताहित का बोध नहीं होने देता.

(६७) जीव की कर्म से मित्रता है जिससे दुष्ट मित्र अपना कर्तव्य बजाकर आत्मा को विशेष दुःखी बनाता है.

(६८) सज्जन शुभ राह पर ले जाते हैं पर दुर्जन दुष्ट मार्ग में ले जाते हैं उसी प्रकार अशुभ कर्म अशुभ कार्य कराते है और शुभ कर्म शुभ कार्य कराते हैं

(६९) आत्मा जैसा कर्म-बीज बोता है उसी प्रकार उसको फल मिलता है।

(७०) आत्मा और कर्म के बीच में अशुद्ध भाव सांकल ज्यों लगे हैं ये अशुद्ध भाव ही आत्मा और कर्म का संयोग कराते है.

(७१) शरीर में "अहं" कहने वाली ही आत्मा है.

(७२) सुख दुःख का अनुभव कर्म से होता है।

(७३) जोंक सड़े हुए खून का पान करके आनद मानती है उसी प्रकार अज्ञानी विषय कषाय में आनंद मानते हैं और भव भ्रमण करते हैं।

(७४) चोर तप्त लोहे के गोले पर पैर रखते ही पश्चात्ताप करता है और उदासनि रहता है उसी प्रकार समदृष्टि भोग को रोग समझ कर उससे उदासीन रहते हैं।

(७५) रोगी रोग मिटने पर रोग की इच्छा नहीं करता उसी प्रकार समदृष्टि भोग की इच्छा नहीं करते.

(७६) रोगी रोग से मुक्त होने की भावना करता है उसी प्रकार समदृष्टि भोग रुप रोग से मुक्त होने की भावना करते हैं।

(७७) हे भव्य आत्मा! आप में राग द्वेष न रहे ऐसी कृपा करें! यही आत्मा का सच्चा धर्म हैं।

(७८) मिथ्या दृष्टि भोग में इष्टानिष्ट बुद्धि रखते हैं पर समदृष्टि समभाव रखते हैं।

(७९) मिथ्यात्वी मृत्यु समय डरता है पर समदृष्टि मृत्यु को महोत्सव मानता है और परम आनंदित रहता है।

(८०) मिथ्यात्वी शरीर व कुटुम्ब को अपना मानते हैं पर समदृष्टिआत्मा ज्ञान दर्शन चारित्र और तपादि को अपना मानती है।

(८१) स्व गुरुता व पर की लघुता यही मिथ्या दृष्टि का लक्षण है। पर समदृष्टि स्व लघुता व पर की गुरुता करने में ही आनन्द मानते हैं।

(८२) समदृष्टि सब जीवों को कर्माधीन समझकर रागद्वेष न करते समभाव रखते हैं।

(८३) अरिहंत के जैसे गुण समदृष्टि में रहते हैं।

(८४) अनंत संसारी के गुण मिथ्यात्वी में होते हैं।

(८५) रसायन खाने वाले को पथ्य पालने की जरूरत रहती है उसी प्रकार ज्ञानी को चारित्र की जरूरत है पथ्य रहित रसायण लाभ दायक नहीं है उसी प्रकार चारित्र रहित ज्ञान विशेष लाभ दायक नहीं है.

(८६) शीतलता दूर करने के लिये अग्नि में गिरने वाला दुःखी होता है उसी प्रकार मिथ्यात्वी विषयेच्छा से भोग भोगने वाला इस लोक व परलोक में दुखी होता है। (अनंत काल तक)

(८७) दीपक में प्रकाश रहता है. उसी प्रकार समदृष्टि ज्ञान दीपक से सदा प्रकाशित है।

(८८) चोर को जिस प्रकार सिपाही मारते हैं उसी प्रकार वेदनीय कर्म रूप सिपाही भी विषयी कषायी को अनंत काल से मार मारते हैं।

(८९) सिपाही मार २ कर थक जाते हैं तब चोर को शांति मिलती है उसी प्रकार वेदनीय कर्म सजा देकर के थक जाते हैं तब आत्मा को शांति मिलती है.

(९०) आयुकर्म जेलर के समान है जो आत्मा को विविध जीवयोनि में अपने कर्तव्यानुसार कैद रखता है।

(९१) नाम कर्म बहु रूपीया जैसा है कि जो आत्मा के मूल स्वरूप को पलटा के विचित्र रूप अनंत काल से धारण करा रहा है।

(९२) जो हेय, ज्ञेय, उपादेय का मनसे विचार करते हैं वही मनुष्य है।

(९३) जीव रूपी कावडिया शरीर-रूप-कावड़ में कर्म रूप भार लेकर ८४-०००० योनि में भ्रमण करता है।

(९४) तीन लोक के पदार्थ भी ज्ञानी को नहीं डिगा सक्ते.

(९५) अज्ञानी ज्ञानी से द्वेष करते हैं।

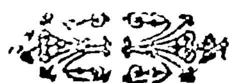
(९६) उल्लू सूर्य से द्वेष करके अंधकार को पसंद करता है उसी प्रकार अज्ञानी मिथ्यात्व से खुश रहते हैं।

(९७) कालरूप मणि धर के मुंह में तमाम विश्व का समावेश है। भारत में नित्य ४०,०००मनुष्य मरते हैं।

(९८) इंद्रिय रूपी पिशाच आत्मा की घात करता है। आत्म रमणता ही सच्चा सुख है।

(९९) जैसे शराबी अपने शरीर को भूल जाता है वैसे अज्ञानता के नशे में आत्मा खुद को भूल गया है. आत्मा सो परमात्मा।

(१००) सम्यक् प्रयत्न के अभाव में परमात्मा के स्थान पत्थर बनता है स्थावर जीव योनी में अनंत काल तक दुःख भोगता है आत्मज्ञान ही सब सुखों का मूल है। मैं कौन ? कहांसे आया ? कहां जा रहा हूं ? इस का भी जिसको ज्ञान नहीं है उससे ज्यादा अज्ञानी कौन ?



वीर-समोसरण ।

प्रभु महावीर के गादीधर और उनके उपासक इस समय श्री वीर प्रभु के समवसरण को आदर्श समझ अपने हृदय और दृष्टि के समक्ष वह दृश्य उपस्थित कर चलें तो कितना अच्छा हो ?

वीर भगवान के समवसरण की विचित्रता तो देखिये! सांप और बिल्ली के शरीर को चूहे के बच्चे अपनी माता का शरीर समझकर आनंद से नृत्य कर रहे हैं. और कूद रहे हैं. गाय का बच्चा सिंहनी को माता मानकर उसका दूध पीरहा है और उसके सामने प्रसन्न हो रहा है और सिंहनी उसे अपनी जीभ से चाटकर अपना प्रेम दिखा रही है. वीर के समवसरण में आने वाले हिंसक, क्रूर, भयंकर, पापी, प्राणियों में इतना परिवर्तन हो जाता है तो समवसरण के पूज्य साधु और श्रावकों के जीवन कितने पवित्र और परस्पर कितना प्रेम होगा ?

वीर समवसरण में सिंह बाघ, और सर्प आदि भयंकर प्राणी भी वीर से समतावान दृष्टि गत होते हैं। वीर का समवसरण जंगली प्राणियों के अंतः-करण से अनादि जात-बैर, द्वेष, जहर, इर्षा, शत्रुता और अभिमान को हटा देता है. वीर का समवसरण अनन्त काल का क्रोधी स्वभाव भुलाकर हिंसक प्राणी को भी परम क्षमा शील बना देता है। वीर के समवसरण से सर्वत्र निर्भयता और अभय के भाव फैलते हैं गाय सिंह के समीप,

भेड वाघके समीप, चूहा बिल्लीके समीप और सर्प मयूरके समीप अभयहो सबको अपने कुटुम्बीसे समझ उनके पास निर्भयता से खेलते और कूदते हैं। हिंसक प्राणियों की दृष्टि में से, वाणी में से और व्यवहार में इस प्रकार अमृत वर्षा होती है तो वीर शासन के साधु, श्रावकों के जीवन के प्रत्येक प्रसंग पर शरीर के कुल अवयवों में से अमृत का कितना स्वच्छ सुंदर चौधारी मूसलाधार वर्षाद होता होगा?

वीर के समवसरण के प्रताप से ही क्रूर प्राणी एसे दयालू वन जाते हैं तो वीर की वाणी फरमाने वाले साधु, महापुरुषों तथा उन्हीं वीर भगवान की वानी सुनने वाले पवित्र श्रावकों के जीवन कितने पवित्र होना चाहिये? वीर समवसरण के पशुओं में इतना अद्भुत परिवर्तन होता है तो वीर के पुत्रों में कितना अलौकिक समभाव का उदय होना चाहिये ? वीर समवसरण का ही इतना प्रभाव, तो उस पवित्र आत्मा की दिव्य ध्वनि का कितना प्रभाव होना चाहिये ? और अगर ऐसा प्रभाव न पडे तो श्रोता और वक्ता को कैसा समझना चाहिये ?

अहा ! वीर की वीरता, गाय, बकरी, चूहे, मृग और सियालों में आ गई कि जिससे वे सिंह-सिंहनी को अपने कुटुम्बी समझने लगे।

वीर की दया,—करुणा, माध्यस्थता सिंह, वाघ, रीछ और सर्प में आ गई कि जिससे उनके समीप चूहे, मेंढक जैसे भयभीत प्राणी भी अभय हो रहने लगे।

वीर का समभाव विश्व व्यापी हो गया।

बन को धुजाने वाला सिंह आज वीर समवसरण में वीर जैसा शांत दयालु करुणा मूर्ति दिखता है। बनका भक्षक सिंह आज बनका रक्षक बन गया है। सिंह जितना क्रूर था उतना ही आज दयालु होगया है॥ वितरागी की छाया में वितरागी ही वास करते हैं।

समभावी की छाया समभावी को ही मिल सकती है। विषम भावी-वैर भावी, ईर्षा और द्वेष के फुहारे जैसी वृत्तिवाले मनुष्य वीर के समसरण से,-वीर के शासन से, क्रोड़ों योजन दूर उल्लू की तरह अंधेरे में सडते रहते हैं।

वीर के समवसरण में सब जंगली, क्रूर, घातकी और हिंसक प्राणी भी अपने विषम स्वभाव को भूलकर कुटुम्ब भाव से परस्पर रहते हैं और एक दूसरे के संतान की प्रतिपालना करते हैं। सिंहनी गायके बच्चे को दुग्ध पान कराती है और गाय सिंहनी के बच्चे को दूध पिलाती है वीर समवसरण के जंगली जानवरों में भी कितनी उदारता? कितनी मैत्री भावना? और किसी काल में वीर शासन के प्रकाशमान साधु या श्रावक मेरे तेरे झगड़ों में पड़कर सम्प्रदायी भेद भाव वढाकर आपस में लड़ते झगड़ते हों तो वे वीर शासन में क्या कहलाने योग्य हैं?

जब पशुओं में इतनी सहिष्णुता और उदारता उत्पन्न हो जाती है तो वीर पुत्र साधु या श्रावक, अपनी सत्ता, अहमन्यता, धर्म सत्ता, या धनसत्ता समाज पर फहरायें

तो क्या वे वीर शासन की छाया मात्र के भी अधिकारी हैं ? वीर संतान का नाम धरकर आप साधु, या श्रावक के नाम से पुकारे जायँ और उनके जीवन मे क्रूर पशु जितना भी परिवर्तन न हो तो उन मनुष्यों को क्या मानव समझें जायँ ? वीर समवसरण की, वीर शासन की असर मानव तथा दानव के हृदय पर अवश्य हो अगर जो न हो तो वह सच्चे मानव या दानव नहीं है। फिर चाहे वह इंद्र हो या चक्रवर्ती।

वीर के समवसरण के हिंसक प्राणियों में भी ऐसी दया, नम्रता, समता, क्षमा, सहिष्णुता, उदारता या मित्रता दिखती है तो वीर शासन के वीर पुत्रों में कितने गुण होना चाहिये ?

वीर समवसरण मे सिंह, गाय, बाघ, बकरी, चूहा, बिल्ली मयूर-सर्प आदि परस्पर विरोधी प्राणी एक स्थान पर बैठें, खेलें, क्रीडाकरें, कूदें और खानपान करें तब वीर शासन के पूज्य साधु साध्वी अपने को पांच महाव्रत पांच समिति और तीन गुप्ति के धारक गिनने वाले एक दूसरे के साथ एक मकान में उतरने में, व्याख्यान देने में, शास्त्र की बातें पूछने में, बात चीत करने में, बिमार को शांति देने में, संथारेके समय क्षमा मांगनेमें या उन्हें धर्म वचन सुनानेमें भी संकोच रखे, तो ऐसे वीरपुत्र शासन के योग्य गिने जायँ या नहीं? इसका पाठक स्वयं विचार करें।

—=—

प्रभु महावीर के महलों में

भगवान् महावीर अपने लिये विशाल दिव्य महल छोड़ गये हैं, किन्तु क्या हमने उन महलों के प्रति कभी दृष्टिपात भी किया है ?

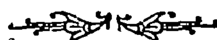
चलो, आज मैं आपको उन महलों में ले जाता हूं, थाड़ा लक्ष्य रखकर के देखो कि वहां क्या २ हो रहा है।

देखिए ! भगवान का बनाया हुआ संयम का पक्का कोट तो बिलकुल ही डिग गया है, और साधु साध्वी रूप दिवालें बहुत ही जीर्ण हो गई हैं, महलों क भीतर चारों दिशाओं में मतमतांतर, गच्छ, संघाडे, संप्रदाय और जड़क्रिया के चूहे दौड़ धाम मचा रहे हैं और उन दिव्य पवित्र महलों को खोखला कर रहे हैं। महलों के आंगन में ज्ञानरूप बगीचे की रसमय भूमि के सत्त्व को निर्मूल कर देने वाले बहम, अंधश्रद्धा, ईर्षा, द्वेष, निंदा, कलह भीरुता और ममत्वरूप बहुत ऊंचा घास आर कास उग गया है। अविवेकता स्वच्छंदता, मिथ्या मान्यता मंत्र तंत्र, विलास और लालसा रूप कुत्ते, बिल्लियां. चिड़ियां, चमगादिड आदि के निवाससे उस में दुर्गंध छा गई है, जरा ऊंची निगाह करके देखो तो सुशील, श्रावक व श्राविका रूप ऊपर का छप्पर तो बिलकुल ही चलना जैसा जर्जरित हो गया है। मिथ्याडंबर रूप मूसलधार जल के आघात से बहुत गहरे ऊंडे गड्ढे पड़ गये हैं।

मैत्री, प्रमोद, करुणा, माध्यस्थ और वात्सल्य रूप उसके कवेलू टूटफूट गये है और हजारों वर्ष हुए इन परम पवित्र महलों को किसी ने भी मानो सम्हाला ही न हो जिससे उनके आस पास उदासीनता और शोक का वातावरण छा रहा है। प्रभु महावीर के महलों की ऐसी शोचनीय दशा हो गई है इसलिये अब बहिनों को विवेक, सुशिक्षा नम्रता और मधुरता रूप पावडे, कुदाली, दरांते और खुरपियाँ दीजियेगा जिससे बहिनें जड़क्रिया और कुरुढियों का घास तथा वहमरूप कासका निकंदन करके हजारों वर्षों से महलों में जमा हुआ कूडा, कचरे का डूंगर उठाकर साफ़ स्वच्छ करदे और उसमें अहिंसा, सत्य, प्रेम, और सादगी के सुगंधित धूप रूपी धूंए से पहिले की दुर्गंध का नाश करें। पुरुषवर्ग! आप गुण ग्राहकता, साम्यता, क्षमा, विनय, सरलता. और संतोष आदि गुणरूप ईंट, चूना, सीमेंट तैयार कीजियेगा। साधु साध्वी! आप भी संयम के कोट को सम्यक् ज्ञान दर्शन, चारित्रादि से पक्का बांधने के लिये तैयार हो जाय जिससे महल पूर्व जैसा रत्नमय दिव्य ज्योति से झगमगाने लगे, और श्रावक श्राविका रूप नवीन छप्पर ढालकर उन भव्य पवित्र महेलों मे बिराजें और प्रभु महावीर संदेशको सुनें और ओरोको भी सुनावें।

(जैन प्रकाश)

श्री रत्नाकर पच्चीसी.



(हरिगीत)

मंदिर छो मुक्ति तणा, मांगल्य क्रीडाना प्रभु ।
ने इन्द्र नर ने देवता, सेवा करे तारी विभु ॥
सर्वज्ञ छो स्वामी वळी, शिरदार अतिशय सर्वना ।
जय पाम तुं जय पाम तुं, भंडार ज्ञान कळा तणा ॥ १ ॥
त्रण जगतना आधार ने, अवतार हे करुणा तणा ।
वळी वैद्य हे दुर्वारआ, संसारना दुःखो तणा ॥
वितराग वल्लभ विश्वना, तुज पास अरजी उच्चरुं ।
जाणो छतां पण कही अनेआ, हृदय हुं खाली करुं ॥ २ ॥
शुं बाळको मावाप पासे, बाळ क्रीडा नव करे ।
ने मुख मांथी जेम आव्युं, तेम शुं नव उच्चरे ॥
तेमज तमारी पास तारक, आज भोला भावथी ।
जेवुं बन्युं तेवुं कहुं, तेमां कशुं खोटुं नथी ॥ ३ ॥
मैं दान तो दीधुं नहि, ने शियळ पण पाळ्युं नहिं ।
तपथी दमी काया नहि, शुभ भाव पण भाव्यो नहिं ॥
ए चार भेदे धर्म मांथी, कंइ पण प्रभु मैं नव कर्युं ।
म्हारुं भ्रमण भवसागरे, निष्फल गयुं, निष्फल गयुं ॥४॥
हुं क्रोध अग्निथी बळ्यो, वळी लोभ सर्प डस्यो मने ।
गळ्यो मानरूपी अजगरे, हुं केम करी ध्यावुं तने ?

मन मारुं माया जाळमां मोहन ? महा मुंझाय छे ।
चडी चार चोरो हाथमां, चेतन घणो चगदाय छे ॥ ५ ॥
में परभवे के आभवे पण, हित कांइ कर्युं नहिं ।
तेथी करी संसारमां, सुख अल्प पण पाम्यो नहिं ॥
जन्मो अमारा जिनजी, भव पूर्ण करवाने थया ।
आवेल बाजी हाथमां, अज्ञानथी हारी गया ॥ ६ ॥
अमृत झरे तुज मुखरूपी, चंद्रथी तो पण प्रभु ।
भींजाय नहि मुज मन अरेरे, ! शुं करुं हुं तो विभु ? ॥
पत्थर थकी पण कठण मारुं, मन खरे क्यांथी द्रवे ?
मर्कट समा आ मन थकी, हुं तो प्रभु हार्यो हवे ॥ ७ ॥
भमता महा भवसागरे, पाम्यो पसाये आपना ।
जे ज्ञान दर्शन चरण रूपी, रत्नत्रय दुष्कर घणा ॥
ते पण गया परमाद्दना, वशथी प्रभु कहुं हुं खरुं ।
कोनी कने किरतार आ, पोकार हुं जइने करुं ? ॥ ८ ॥
ठगवा विभु आविश्वने, वैराग्यना रंगो धर्या ।
ने धर्म नो उपदेश रंजन, लोकने करवा कर्या ॥
विद्या भण्यो हुं वाद माटे, केटली कथनी कहुं ? ।
साधु थई ने ब्हारथी, दांभीक अंदरथी रहुं ॥ ९ ॥
में मुखने मेलुं कर्युं, दोषो पराया गाइने ।
ने नेत्रने निंदित कर्या, परनारीमां लपटाई ने ॥
चित्त ने दोषित कर्युं, चींती नठारुं परतणु ।
नाथ ! म्हारुं शुं थशे ? चालाक थइचुक्यो घणु ॥१०॥
करे कालजाने कतल पीडा, कामनी बीहामणी

ए विषयमां बनी अंधहुं, विडंबना पाम्यो घणी ॥
ते पण प्रकाश्युं आज लावी, लाज आप तणी कने ।
जाणो सहु तेथी कहुं, कर माफ मारा वांकने ॥११॥
नवकार मंत्र विनाश कीधो, अन्य मंत्रो जाणी ने ।
कुशास्त्रनां वाक्यो वडे, हणी आगमोनी वाणी ने ॥
कुदेवनी संगत थकी, कर्मो नकामां आचर्यां ।
मति भ्रमथकी रत्नो गुमावी, काच कटका में ग्रह्या ॥१२॥
आवेल दृष्टि मार्गमां, मुकी महावीर आपने ।
में मूढ धिये हृदयमां, ध्याया मदनना चापने ॥
नेत्र बाणो ने पयोधर, नाभिने सुंदर कटी ।
शणगार सुंदरीओ तणां, छटकेल थई जोयां अति ॥१३॥
मृगनयणी समनारी तणां, मुखचन्द्र निरखवा वती ।
मुजमन विषे जे रंग लाग्यो, अल्प पण गुढो अति ॥
ते श्रुत रूप समुद्रमां, धोया छतां जातो नथी ।
तेनुं कहो कारण तमे, बचुं केम हुं आ पाप थी ॥१४॥
सुंदर नथी आ शरीर के, समुदाय गुण तणो नथी ।
उत्तम विलास कळा तणो, देदिप्यमान प्रभानथी ॥
प्रभुता नथी तो पण प्रभु, अभिमान थी अक्कड फरुं ।
चोपाट चार गति तणी, संसारमां खेल्या करुं ॥१५॥
आयुष्य घटतुं जायतो पण, पाप बुद्धि नव घटे ।
आशा जीवननी जायपण, विषयाभिलाषा नव घटे ॥
औषध विषे करुं यत्न पण, हुं धर्म ने तो नव गणु ।
बनी मोहमां मस्तान हुं, पाया विनाना घर चणु ॥१६॥

आत्मा नथी परभव नथी, वली पुण्य पाप कशुं नथी ।
मिथ्यात्वीनी कटु वाणी में, धरी कान पीधी स्वाद थी ॥
रवि समहता ज्ञाने करी, प्रभु आप श्री तो पण अरे ।
दीवो लइ कुवे पड्यो, धिक्कार छे मुजने अरे ॥१७॥
में चित्त थी नहीं देवनी के पात्रनी पुजा चही ।
ने श्रावको के साधुओ नो, धर्म पण पाल्यो नहीं ॥
पाम्यो प्रभु नर भव छतां, रणमां रडया जेवुं थयुं ।
धोबी तणा कुत्ता समुं, मम जीवन सहु एळे गयुं ॥१८॥
हुं कामधेनु कल्पतरु, चिंतामणी ना प्यारमां ।
खोटा छतां झंख्यो घणुं, बनी लुब्ध आ संसारमां;
जे प्रकट सुख देनार त्हारो, धर्म ते सेव्यो नहिं ।
मुज मूर्ख भावोने निहाली, नाथकर करुणा कंई ॥१९॥
में भोग सारा चिंतव्यापण, रोगसम चिंत्या नहिं ।
आगमन इच्छयुं धन तणुं, पण मृत्युने प्रीछयुं नाहि ।
नहिं चिंतव्युं में नरक, काराग्रह समी छे नारीओ,
मधु बींदुनी आशा महीं, भयमात्र हुं भूली गयो ॥२०॥
हुं शुद्ध आचारो वडे, साधु हृदयमां नव रह्यो,
करी काम पर उपकारनां, यशपण उपार्जन नव कर्यो;
वली तीर्थनां उद्धार आदि, कोइ कार्यो नवकर्यां ।
अरे आ लक्ष चौरासी, तणां फेरा कर्यां ॥२१॥
वाणीमां वैराग्य केरो, रंग लाग्यो नहिं अने ।
दुर्जन तणां वाक्यो महीं, शांति मले क्यांथी मने ॥
तरुं केम हुं संसार आ, अध्यात्म तो छे नहिं जरी ।

तुटेल तलीआनो घड़ो, जलथी भराये क्येम करी ॥२२॥
मैं परभवे नथीं पुण्य कीधुं, ने नथी करतो हजी।
तो आवता भवमां कहो, क्यां थी थशे हे नाथजी ?
भूत, भावि ने सांप्रत त्रणे, भवनाथ हुं हारी गयो।
स्वामी त्रिशंकु जेम हुं, आकाशमां लटकी रह्यो ॥२३॥
अथवा नकामुं आप पासे, नाथ शुं बकवुं घणुं।
हे देवताना पूज्य ! आ चारित्र मुज पोता तणुं॥
जाणो स्वरूप त्रण लोक नुं तो, माहरुं शुं मात्रआ ?
ज्यां क्रोड़नो हिसाब नहीं त्यां, पाइनी तो वात क्यां ॥२४॥

(शार्दुल)

ताराथी न समर्थ अन्य दीननो, उद्धारनारो प्रभु।
म्हाराथी नहिं अन्य पात्र जगमां, जोतां जडे हे विभु,
मुक्ति मंगल स्थान तोय मुजने, इच्छा न लक्ष्मी तणी।
आपो सम्यग् रत्न श्याम जीवने, तो तृप्ति थाये घणी ॥२५॥

—=—

ब्रह्मचर्य विषे सुभाषित दोहे

निरखीने नवयौवना, लेश न विषय निदान।
गणे काष्टनी पूतली, ते भगवान समान ॥ १ ॥
आ सघळा संसारनी, रमणी नायक रूप।
ए त्यागी, त्याग्युं बधुं, केवल शोक स्वरूप ॥ २ ॥
एक विषयने जीततां, जित्यो सौ संसार।
नृपति जिततां जितिये, दळ, पुरने अधिकार ॥ ३ ॥

तुं आपजे मुज मोह कापी, आदशा करुणा निधि ॥ ३ ॥
तुज चरण कमलनो दीवडो, रुडो हृदयमां राखजो ।
अज्ञान मय अंधकारनो, आवास तुरत बालजो ॥
तद्रूप थइते दीवडे, हुं स्थिर थई चित्त बांधतो ।
तुज चरण युग्मनी रजमहिं, हुं प्रेमथी नित्य डूबतो ॥ ४ ॥
प्रमादथी प्रयाण करीने, विचरता प्रभु अहीं तहीं ।
एकेन्द्रियादि जीवने, हणतां कदी डरतो नहिं ॥
छेदी विभेदी दुःख दई, में त्रास आप्यो तेमने ।
करजो क्षमा मुज कर्महिंसक, नाथ विनवुं आपने ॥ ५ ॥
कषायेने परवश थई बहु, विषय सुख में भोगव्या ।
चारित्रना जे भंग विभु, मुक्ति प्रतिकूल थई गया ॥
कुबुद्धिथी अनिष्ट किंचित, आचरण में आदर्युं ।
करजो क्षमा सौ पापते, मुज रंकनुं जेजे थयुं ॥ ६ ॥
मन वचन काय कषाय थी, कीधां प्रभु में पाप बहु ।
संसारनां दुःख बीज सौ, वाव्यां अरे हुं शुं कहुं ॥
ते पापने आलोचना, निंदा अने धिक्कार थी ।
हुं भस्म करतो मंत्र थी, जेम विष जातुं वादीथी ॥ ७ ॥
मुज बुद्धिना विकारथी, के संयमना अभावथी ।
बहु दुष्ट दुराचार में, सेव्या प्रभु कुबुद्धिथी ॥
करवुं हतुं ते ना कर्युं, प्रमाद केरा जोरथी ।
सौ दोष मुक्ति पामवा, मांगु क्षमा हु हृदय थी ॥ ८ ॥
मुज मलीन मन जो थायतो, ते दोष अतिक्रम जाणतो ।
वली सदाचारे भंग बनतां, दोष व्यतिक्रम मानतो ॥

ते अतिचारी समजशो, जे विषय सुखमां म्हालतो।
अति विषय सुख आसक्त ने, हुं अनाचारी धारतो॥ ९॥
मुज वचन वाणी उच्चारमां, तलभार विनिमय थाय तो।
जो अर्थ मात्रा पद महीं, लवलेश वधघट होयतो॥
यथार्थ वाणी भंगनो, दोषित प्रभुहुं आपनो।
आपी क्षमा मुजने बनावो, पात्र केवल बोधनो॥१०॥
प्रभु वाणी ? तुं मंगलमयी, मुज शारदा हुं समझतो।
वली इष्ट वस्तु दानमां, चिंतामणीहुं धारतो॥
सुबोधने परिणाम शुद्धि, संयम ने वरसावती।
तुं स्वर्गनां दिव्य गीत सुणावी, मोक्षलक्ष्मी अर्पती॥११॥
स्मरण करे योगी जनो, जेनुं घणा सन्मान थी।
वली इंद्र नर ने देवपण, स्तुति करे जेनी अति॥
ए वेदने पुराण जेना, गाय गीतो हर्षमां।
ते देवना पण देव व्हाला, सिद्ध वसजो हृदयमां॥ १२॥
जेनुं स्वरूप समजाय छे, सद्ज्ञान दर्शन योगथी।
भंडार छे आनंद ना जे, अचल छे विकार थी॥
परमात्मानी संज्ञाथकी ओलखाय जे शुभ ध्यानमां।
ते देवनापण देव व्हाला, सिद्ध वसजो हृदयमां॥ १३॥
जे कठिन कष्टो कापता, क्षणवारमां संसारनां।
निहालता जे सृष्टि ने जेम बोरने निज हस्तमां॥
योगी जनोने भासता, जे समझना सौ वातमां।
ते देवनापण देव व्हाला, सिद्ध वसजो हृदयमां॥१४॥
जन्मो मरणना दुःखने, नहिं जाणता कदी जे प्रभु।

जे मोक्षपथ दातार छे, त्रिलोकने जोता विभु ॥
कलंक हिन दिव्य रूपजे, रहेतु नहिं पण चन्द्रमां ।
ते देवना पण देव व्हाला, सिद्ध वस जो हृदयमां ॥१५॥
आ-विश्वना सौ प्राणी पर, शुद्ध प्रेम निस्पृह राखता ।
नहिं राग के नहिं द्वेष जेने, असंग भावे वर्तता ॥
विशुद्ध इंद्रिय शुन्य जेवा, ज्ञानमय छे रूपमां ।
ते देवना पण देव व्हाला, सिद्ध वसजो हृदयमां ॥१६॥
त्रिलोकमां व्यापी रह्या छे, सिद्ध ने विबुद्ध जे ।
नहिं कर्म केरा बंध जेने, धूर्त सम धूती शके ॥
विकार सौ सलगी जता, मन मस्तथातां ध्यानमां ।
ते देवना पण देव व्हाला, सिद्ध वसजो हृदयमां ॥१७॥
तिमिर केरो स्पर्श तलभर, थाय नहिं ज्यम सूर्यने ।
तेम दुष्कलंको कर्मना, अड़की शके नहिं आपने ॥
जे एकने बहुरूप थई, व्यापी बधे विराजतो ।
तेवा सुदेव समर्थनुं, साचुं शरण हुं मागतो ॥१८॥
रवि तेज विण प्रकाश जे, त्रण भवनने अजवालतो ।
ते ज्ञानदीप प्रकाश तारा, आत्ममां शुं दीपतो ॥
जे देव मंगल बोध मीठा, मनुजने नित्य आपतो ।
तेवा सुदेव समर्थनु साचुं शरण हुं मांगतो ॥१९॥
जो थाय दर्शन सिद्धनां, तो विश्वदर्शन थायछे ।
जेम सूर्यना दीवा थकी, सौ स्पष्टता देखायछे ॥
अनंत अनादि देव जे, अज्ञान तिमिर टालतो ।
तेवा सुदेव समर्थनुं, साचुं शरण हुं मागतो ॥२०॥

जेणे हण्या निज बल वडे, मन्मथ अने वली मानने ।
जेणे हण्या आलोकना, भय शोक चिंता मोहने ॥
विषादने निंद्रा हण्या, ज्यम अग्नि वृक्षो बालतो ।
तेवा सुदेव समर्थनुं साचु शरण हुं मागतो ॥२१॥
हुं मागतो नहीं कोई आसन, दर्भ पत्थर काष्टनुं ।
मुज आत्मना निर्वाण काजे, योग्य आसन आत्मनुं ॥
आ आत्म जो विशुद्ध ने, कषाय दुश्मन विण जो ।
अमूल्य आसन थाय छे, शुभ साधवा समाधितो ॥२२॥
मेला बधा मुज संघना, नहिं लोक पूजा कामनी ।
जग बाह्यनी नहिं एक वस्तु, कामनी मुज ध्याननी ॥
संसारनी सौ वासनाने, छोडव्हाला वेगथी ।
अध्यात्ममां आनंद लेवा, योग बल ले होंशथी ॥२३॥
आजगत्नी को वस्तुमांतो, स्वार्थ छे नहिं मुज जरी ।
वली जगत नीपण वस्तुओनो, स्वार्थ मुजमां छे नहीं ॥
आतत्त्व ने समझी भला, तुं बाह्यनो मोह छोडजे ।
शुभमोक्षनां फल चाखवा, निज आत्ममां तुं स्थिरथजे ॥२४॥
ज्ञानमय विशुद्ध आत्म, स्वआत्मथी जोवायछे ।
शुभ योगमां साधु सकलने, अनुभव आथायछे ॥
निज आत्ममां एकाग्रता, स्थिरता वली निज आत्ममां ।
अखंड सुखने साधवा तुं, आत्मथी जो आत्ममां ॥२५॥
ना आत्ममारो एकने, शाश्वत निरंतर रूपछे ।
शुद्ध निज स्वभावमां, रमी रह्यो छे नित्यते ॥
विश्वनी सहु वस्तुनो, निज कर्म उद्भव थायछे ।

निज कर्मथी वळी वस्तुनो, विनाश विनिमय थायछे ॥२६॥
जे आत्म जोडे एकता, आवी नहिं आ देहनी ।
ते एकता शुं आवशे, स्त्री पुत्र मित्रो साथनी ॥
जो थाय जुदी चामडी, आशरीर थी उतारतां ।
तो रोम सुंदर देहपर, पामें पछीशुं स्थिरता ॥२७॥
आविश्वनी को वस्तुमां, जो स्नेह बंधन थाय छे ।
तो जन्म मरणना चक्रमां, चेतन वधु भटकाय छे ॥
मुज मन, वचनने कायनो, संयोग परमां छोडवो ।
शुभ मोक्षना अभिलाषनो आ मार्ग साचो जाणवो ॥२८॥
संसार रूपी सागरे, जे अवनतिमां लई जती ।
ते वासनानी जाल प्यारा, तोड संयम जोरथी ॥
वली बाह्यथी छे आत्म जुदो, भेद मोटो जाणवो ।
तल्लीन थई भगवानमां भवपंथ विकट कापवो ॥२९॥
कर्मो कर्या जे आपणे, भुतकालमां जन्मोलई ।
ते कर्मनुं फल भोगव्या विण, मार्ग एकेछे नहिं ॥
परनुं करेलुं कर्म जो, परिणाम आपे मुजने ।
तो मुज करेला कर्मनो, समजाय नहिं कंई अर्थने ॥३०॥
संसार नां सौ प्राणीओ, फल भोगवे निज कर्मनुं ।
निज कर्मना परिपाकनो, भोक्ता नहिं को आपणुं ॥
लइ शकेछे अन्यतेने, छोड एं भ्रमणा बुरी ।
प्रभुध्यानमां निमग्न था, तुज आत्मनो आश्रय करी ॥३१॥
श्री अमित गति अगम्य प्रभुजी, गुण असीमछे आपना ।
हृदयथी आदास तो, गुण गाय तुज सामर्थना ॥

प्रकटता जो गुण बधा, मुज आतममां सद्भावथी ।
शुभ मोक्षने वरवा पछी, प्रभुवार क्यांथी लागती ॥३२॥
बत्रीस चरण नुं आवन्युं, मंगल सुंदर काव्य ।
अनुभवतां एक ध्यानथी, मोक्षगति जीव जाय ॥३३॥

सांभरे त्यारे.

(गजल)

मुकुं पग महेलमां ज्यारे, स्मरण श्मशानना त्यारे ।
मुकुं पग पुष्पशय्यामां, चितापण सांभरे त्यारे ॥ १ ॥
धरुं तन शाल दुशाला, कफन पण सांभरे त्यारे ।
सुणुं संगित स्वजननुं, रुदन पण सांभरे त्यारे ॥ २ ॥
चडुं सुखपालमां ज्यारे, ननामी सांभरे त्यारे ।
जमुं मिष्टान फल ज्यारे, मरणपिंड सांभरे त्यारे ॥ ३ ॥

अमूल्य तत्त्व विचार.

(हरिगीत)

बहु पुण्यकेरा पुंजथी शुभ देह मानवनो मल्यो,
तोये अरे ! भवचक्रनो आंटो नहिं एके टळ्यो,
सुख प्राप्त करतां सुख टळे छे, लेश ए लक्षे लहो,
क्षण क्षण भयंकर भाव मरणे कां अहो ! राची रहो ?॥१॥
लक्ष्मी अने अधिकार वधतां शुं वध्युं ते तो कहो ?
शुं कुटुंब के परिवारथी वधवापणुं ए नय ग्रहो,
वधवापणुं संसारनुं नर देहने हारी जवो,
एनो विचार अहोहो; एक पळ तमने हवो, ॥ २ ॥

निर्दोष सुख निर्दोष आनंद, ल्यो गमे त्यांथी भले,
ए दिव्य शक्तिमान; जेथी जंजीरे थी नीकले ?
पर वस्तुमां नहीं मुंझवो एनी दया मुजने रही,
ए त्यागवा सिद्धांत के पश्चात् दुःखते सुख नहिं, ॥ ३ ॥
हुं कोण छुं, क्यांथी थयो, शुंस्वरूप छे मारु खरुं ?
कोना संबंधी वलगणा छे राखुं के ते परहरुं ?
एना विचार विवेक पूर्वक शांत भावे जो कर्या ?
तो सर्व आत्मिक ज्ञाननां, सिद्धांत तत्त्व अनुभव्यां,
ए प्राप्त करवा वचन कोनुं सत्य केवळ मानवुं,
निर्दोष नरनुं कथन मानो, 'तेह' जेणे अनुभव्युं, ॥ ४ ॥
रे ! आत्म तारो, आत्म तारो, शीघ्र एने ओळखो,
आं समदृष्टि द्यो, आवचनने हृदये लखो, ॥ ५ ॥

—×—

गुणस्थान–क्रमारोह

अपूर्व अवसर एवो क्यारे आवशे ?
क्यारे थइशुं बाह्यांतर निर्ग्रंथ जो ॥
सर्व संबंधनु बंधन तिक्षण छेदीनें ।
विचरीशुं कव महत्पुरुष ने पंथ जो ॥अपूर्व० ॥१॥
सर्व भावथी औदासीन्यवृत्ति करी ।
मात्र देह ते संयम हेतु होय जो ॥
अन्य कारणे अन्य कशुं कल्पे नहीं ।
देहे पण किंचित् मूर्छा नव जोय जो ॥अपूर्व० ॥२॥

प्रकटता जो गुण बधा, मुज आत्ममां सद्भावथी ।
शुभ मोक्षने वरवा पछी, प्रभुवार क्यांथी लागती ॥३२॥
बत्रीस चरण नुं आबन्युं, मंगल सुंदर काव्य ।
अनुभवतां एक ध्यानथी, मोक्षगति जीव जाय ॥३३॥

सांभरे त्यारे.

(गजल)

मुकुं पग महेलमां ज्यारे, स्मरण श्मशाननां त्यारे ।
मुकुं पग पुष्पशय्यामां, चितापण सांभरे त्यारे ॥ १ ॥
धरुं तन शाल दुशाला, कफन पण सांभरे त्यारे ।
सुणुं संगित स्वजननुं, रुदन पण सांभरे त्यारे ॥ २ ॥
चडुं सुखपालमां ज्यारे, ननामी सांभरे त्यारे ।
जमुं मिष्टान फल ज्यारे, मरणपिंड सांभरे त्यारे ॥ ३ ॥

अमूल्य तत्त्व विचार.

(हरिगीत)

बहु पुण्यकेरा पुंजथी शुभ देह मानवनो मळ्यो,
तोये अरे ! भवचक्रनो आंटो नहिं एके टळ्यो,
सुख प्राप्त करतां सुख टळे छे, लेश ए लक्षे लहो,
क्षण क्षण भयंकर भाव मरणे कां अहो ! राची रहो ?॥१॥
लक्ष्मी अने अधिकार वधतां शुं वध्युं ते तो कहो ?
शुं कुटुंब के परिवारथी वधवापणुं ए नय ग्रहो,
वधवापणुं संसारनुं नर देहने हारी जवो,
एनो विचार अहोहो; एक पळ तमने हवो, ॥ २ ॥